अंक-3

कृषि चेतना

2020

भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान

लुधियाना-141004

वार्षिक पत्रिका

अंक: 3 वर्ष: 2020

कृषि चेतना

भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान
लुधियाना-141004

संपादक मंडल:
बी. एस. जाट
प्रदीप कुमार
दीप मोहन महला
मनेश चन्द्र डागला
भारत भूषण

प्रकाशक:
निदेशक
भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान
पी.ए.यू. परिसर, लुधियाना -141004
दूरभाष: 0161-2440047
फैक्स: 0161-2430038
ई-मेल: pdmaize@gmail.com
वैबसाइट: iimr.icar.gov.in

नोट: इस पत्रिका में प्रकाशित सभी लेख, रचनायें तथा उनमें व्यक्त विचार एवं चित्र लेखकों के निज़ी हैं, संपादक अथवा प्रकाशक इसमें प्रकाशित किसी भी विचार अथवा चित्र के लिए उत्तरदायी नहीं हैं।

आवरण पृष्ठ पर दिए गए चित्रों का योगदान:
डॉ. प्रदीप कुमार, डॉ. भूपेन्द्र कुमार एवं श्री दीप मोहन महला

मुद्रक:
प्रिंटिंग सर्विस कंपनी,
मॉडल टाउन, लुधियाना-141001
दूरभाष: 0161.2410896, 09888021624
ई-मेल: decentpublish@gmail.com

निदेशक की कलम से .....

प्रिय साथियों,

हमारे संस्थान की वार्षिक हिंदी पत्रिका "कृषि चेतना" का तीसरा अंक आप सभी के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे हर्ष की अनुभूति हो रही है। भाषा या बोली किसी भी राष्ट्र की संस्कृति, सभ्यता एवं संस्कारों के सृजन एवं सामंजस्य की महत्वपूर्ण कड़ी होती है। इसी श्रृंखला में, "कृषि चेतना" हमारे संस्थान का वह मंच है जो अपने स्वरूप, सामग्री और प्रस्तुति से कृषि से सम्बंधित अनुसंधान एवं तकनीकियों को किसानों तक पहुँचाने का सुअवसर प्रदान करता है।

पत्रिका के इस अंक के माध्यम से मैं आप सभी को अवगत कराना चाहूँगा कि हमारा प्रतिष्ठित संस्थान अपने अथक प्रयासों के फलस्वरूप भारत में मक्का अनुसंधान, समन्वयन और प्रबंधन के लिए प्रयत्नरत है। मक्का सम्पूर्ण विश्व में एक महत्वपूर्ण फसल है और भारत में भी अनाज वाली फसलों की श्रेणी में चावल और गेहूं के बाद मक्का तीसरे नंबर की सबसे महत्वपूर्ण फसल है। इसे खाद्य, चारा और औद्योगिक कच्चे माल के रूप में भी उपयोग किया जाता है। इसके अलावा विशेष प्रकार के मक्का जैसे– बेबी कार्न, पापकार्न एवं स्वीट कार्न को निर्यात करके विदेशी मुद्रा अर्जित की जा रही है। संस्थान के कर्मठ वैज्ञानिकों एवं सक्रिय कर्मचारियों के समन्वित प्रयासों व सहयोग से ही संस्थान का आज का साकार रूप है तथा इनके प्रयासों से संस्थान आज मक्का में उच्च स्तरीय शोध और प्रशिक्षण का केंद्र बन सका है।

मैं विशेष रूप से संपादक मण्डल एवं लेखकों का आभार प्रकट करता हूँ जिनके प्रयत्नों और अथक प्रयासों से "कृषि चेतना" आज अपनी वर्तमान स्थिति पर पहुंची है। "कृषि चेतना" के निरंतर प्रकाशन के लिए संपादकीय मंडल विशेष रूप से बधाई के पात्र हैं। मुझे विश्वास है कि भविष्य में भी संस्थान में हिंदी भाषा के क्षेत्र में भी प्रयास जारी रहेंगे। मेरा पाठकों से विशेष निवेदन है कि इस पत्रिका में यदि कोई सुधार की गुंजाइश महसूस हो तो आप हमें निसंकोच बताएं, जिससे इस पत्रिका की उपयोगिता और सार्थकता को बढ़ाया जा सके। इसमें आपका व हमारा संगठित प्रयास रहेगा। मैं इस पत्रिका के सृजन में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप सभी सहयोगियों का आभार व्यक्त करता हूँ और पत्रिका के उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ।

सुजय रक्षित

सम्पादकीय

प्रिय पाठकगण,

"कृषि चेतना" की इस श्रंखला की यह तीसरी कड़ी आपके हाथों में है। इससे पहले, अंक पहला एवं दूसरा आपने अवश्य पढ़ा होगा। इस प्रकाशन का मुख्य उद्देश्य कृषि एवं मक्का सम्बंधित सूचनाओं को एकत्रित कर आप तक पहुचना एवं हमे आशा है कि आपके द्वारा इन सूचनाओं को उपयोग कर कृषि को लाभदायक बनाया जायेगा।

वर्तमान परिवेश में जलवायु परिवर्तन का फसल उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। जिससे विभिन्न प्रकार के जैविक व अजैविक तनाव बढ़ रहे है जिसमे कहीं सुखा, उच्च एवं निम्न ताप, बाढ़ इत्यादि आवृति में घट–बढ़ रही है। तथा साथ में विभिन्न कीटों एवं बीमारियों का प्रकोप भी बढ़ रहा है इसके लिए कृषि वैज्ञानिक नित नये आयाम विकसित कर रहे है। इसी संदर्भ में भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान अपना उत्तरदायित्व समझाता है कि कृषि में विकसित नये आयाम आप तक अपनी भाषा में पहुचं सके। इसी उद्देश्य के साथ "कृषि चेतना" का प्रकाशन निरंतर जारी है। इस अंक में मक्का एवं अन्य फसलों से सम्बंधित विभिन्न पहलुओं जैसे–प्राकृतिक संसाधन, मृदा की उपजाऊ क्षमता, जिनोम एडिटिंग, मृदा कार्बन प्रच्छादन, जलवायु परिवर्तन का प्रभाव, संरक्षित खेती, जैविक खेती, फसल उत्पादन में जीवाणुओं की भूमिका, प्रमाणित बीज, जंगली प्रजातियों का बदलते परिवेश में उपयोगिता आदि को सम्मलित किया गया है, जो कि किसानों को फसल उत्पादन के लिए एक नया आयाम प्रदान करेंगे एवं उनकी आय वृद्धि में कारगार सिद्ध होंगे।

संपादक मंडल सभी लेखकों एवं पाठकों का आभार व्यक्त करता है जिनके अथक प्रयासों एवं सहयोग से "कृषि चेतना" का तृतीय अंक प्रस्तुत हो रहा है। संपादक मण्डल संस्थान के निदेशक महोदय का भी आभारी है जिनके प्रोत्साहन एवं सतत् मार्गदर्शन से "कृषि चेतना" का सफलतापूर्वक संपादन हो पा रहा है। आशा है कि पाठक गणों को पत्रिका का यह अंक अवश्य पसंद आएगा। आपके सुझाव एवं मनोभाव से यह और भी समृद्ध होगी। इस मनोकामना के साथ आगामी अंकों को और उपयोगी बनाने का संकल्प लेते हैं।

संपादक मण्डल

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	विवरण	पृष्ठ संख्या
	निदेशक की कलम से	iii
	सम्पादकीय	v
1.	**लक्षित उपज आधारित मक्का की उन्नत खेती** यद वीर सिंह, एस.के. सिंह एवं प्रदीप डे.	1–4
2.	**बदलते जलवायु परिदृश्य में फसल विविधीकरण हेतु मक्का में सम्भावनाएं** अभिजित कुमार दास, दीप मोहन महला, मनेश चन्द्र डागला, चिकप्पा जी. के., संतोष कुमार, रमेश कुमार, यतीश के आर. सी. एम. परिहार एवं सुजय रक्षित	5–7
3.	**बिहार में एकल संकर मक्का बीज उत्पादन की संभावनाऐं एवं समस्याऐं** श्याम बीर सिंह, संतोष कुमार एवं अजय कुमार	8–13
4.	**छत्तीसगढ़ में बेबी कार्न की खेती की संभावनाये** अखिलेश कुमार लकड़ा, दिनेश कुमार ठाकुर, अमित कुमार सिन्हा एवं संतोश कुमार सिन्हा	14–17
5.	**पश्चिम बंगाल में मक्का की वर्तमान स्थिति और भविष्य की संभावनाएँ** सरबनी देबनाथ, सोनाली विश्वास एवं संजोग छेत्री	18–21
6.	**कम समय में अधिक लाभ के लिए करें बेबी कॉर्न की खेती** विशाल त्यागी, मोना नगरगड़े, कल्याणी कुमारी एवं गोपी किशन	22–24
7.	**मोमी मक्काः एक परिचय** संतोष कुमार, एस. बी. सिंह, नितीश रंजन प्रकाश, यतीश के. आर., चिक्कप्पा जी. के.बी. एस. जाट, प्रदीप कुमार, अभिजित कुमार दास, सुमित कुमार अग्रवाल एवं प्रीति सिंह	25–28
8.	**पोषण संबंधी खाद्य सुरक्षा के लिए क्वालिटी प्रोटीन मक्का महत्व** भूपेंद्र कुमार, कृष्ण कुमार, सी. एम. परिहार, पूजा शर्मा, बृजेश कुमार सिंह, मीनाक्षी, सोनू कुमार, पुष्पेंदर एवं सुजय रक्षित	29–32
9.	**मक्का का चारकोल वृन्त सडन रोग और प्रबंधन (मैक्रोफोमिना फेजोलिना)** सुमित कुमार अग्रवाल, कर्मबीर सिंह हुड्डा, मोहित, धीरेन्द्र सिंह औलख, प्रवीण कुमार बगडिया रमनदीप कौर, संतोष कुमार एवं दीप मोहन महला	33–35
10.	**मक्का में कीट प्रतिरोध प्रजनन के लिए जंगली प्रजातियाँ एक मूल्यवान स्रोत** अंजलि जोशी, स्नेहा अधिकारी, स्मृतिश्री साहू एवं नरेंद्र कुमार सिंह	36–42
11.	**मक्का की जैविक खेती** दीप मोहन महला, एस. एल. जाट, अमित कुमार, सी. एम. परिहार, शांति देवी बाम्बोरिया, ए.के. सिंह, प्रदीप कुमार एवं सुमित कुमार अग्रवाल	43–46
12.	**जैव उर्वरक एवं फसल उत्पादन में इनका महत्व** गोविन्द कुमार यादव, चिरंजीव कुमावत एवं दीप मोहन महला	47–49

13.	फसल उत्पादन में मूल परिवेष्णीय (राइजोस्फेरिक) जीवाणुओं की भूमिका चेतन कुमार जी., अमित कुमार, अमृत लाल मीणा, प्रकाश चन्द घासल, ललित कृष्ण मीणा, देबाशीष दत्ता, सुनील कुमार, जयराम चौधरी एवं रंजना	50–53
14.	मृदा की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने के लिए संतुलित उर्वरको के प्रयोग का महत्व निधि कम्बोज एवं दिनेश चौधरी	54–56
15.	फसलों में उपज बढ़ाने के जरूरी नुक्शे सतपाल सिंह, विपुल बेनिवाल एवं नवीन राव	57–58
16.	संरक्षित खेतीः टिकाऊ कृषि उत्पादन एवं स्वस्थ मृदा के लिए एक बेहतर विकल्प सी.एम. परिहार, दीप मोहन महला, बी.एस.जाट, मुकेश चौधरी एवं एस.एल. जाट	59–61
17.	जलवायु परिवर्तनः विनाश की ओर बढ़ते कदम राघवेन्द्र कुमार एवं संगीता श्रीवास्तव	62–63
18.	फसलों की जंगली प्रजातियां एवं जलवायु परिवर्तन अनुकूलन ममता सिंह एवं विकेंदर कौर	64–65
19.	प्राकृतिक संसाधन नियोजनः कृषक आय बदोतरी में सहायक रजनी जैन, सोनिया चौहान एवं मंगल सिंह चौहान	66–67
20.	मृदा कार्बन प्रच्छादन : जलवायु परिवर्तन की स्थिति में खाद्य सुरक्षा हेतु समाधान अमरेश चौधरी, अल्का रानी एवं योगेश्वर सिंह	68–72
21.	कुशल प्रक्षेत्र प्रबन्धन के आयाम राघवेन्द्र कुमार एवं संगीता श्रीवास्तव	73–76
22.	गेहूँ की फसल में लगने वाले मुख्य कीट तथा उनका प्रबंधन दिनेश चौधरी, निधि कम्बोज एवं आर. एस. छोकर	77–79
23.	प्रमाणित बीज : सुदृढ खेती का आधार पवन कुमार, जीत राम चौधरी, दिनेश कुमार, दिनेश कुमार जींगर, मुकेश चौधरी, प्रदीप कुमार, बी. एस. जाट, मनेश चन्द्र डागला, अनुराग त्रिपाठी एवं भारत भूषण	80–84
24.	फ्लोराइड एवं इसके प्रभाव प्रियंका रानी एवं अम्लान कुमार घोष	85–89
25.	फसल सुधार के लिए नई प्रजनन तकनीक ''जीनोम एडिटिंग'': अनुप्रयोग, क्षमता और चुनौतियाँ संगीता श्रीवास्तव	90–93
26.	विविध	94–104

लक्षित उपज आधारित मक्का की उन्नत खेती

यद वीर सिंह, एस.के. सिंह एवं प्रदीप डे.
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)
*संवादी लेखक का ई–मेलः yvsingh59@rediffmail.com

मक्का को दुनिया में चावल और गेहूँ के बाद तीसरी सबसे महत्वपूर्ण अनाज फसल के रूप में माना जाता है। यह अनाज ग्रेमीनी कुल के अन्य सदस्यों की तुलना में अपनी उच्च उत्पादकता क्षमता के कारण 'चमत्कार फसल'' या ''अनाजों की रानी'' के नाम से जानी जाती है। यह एक मौसमी फसल है और सालाना तीन बार यानी, खरीफ, रबी और बसंत के मौसम में उगाया जाता सकता है। मक्का आमतौर पर एक शुद्ध फसल के रूप में उगाया जाता है. कुछ मामलों में यह गन्ना, कपास, सब्जियों, फली फसलों आदि जैसे विभिन्न प्रकार की फसलों के संयोजन के साथ एक अंतःफसल के रूप में उगाया जा सकता है। इसका उपयोग इथेनॉल उत्पादन, स्टार्च, खाद्य उद्योग, दवा व मानव खपत में किया जाता है।

भारत का मक्का उत्पादन में दुनिया में छठा स्थान (28 मिलियन टन) है तथा लगभग 90 लाख हेक्टेयर में बोया जाता है। उत्तर प्रदेश में देश के कुल उत्पादन का 9 % पैदा होता है तथा 0.78 लाख हे. क्षेत्र में बोया जाता है। प्रदेश में मक्का का 1.31 लाख टन उत्पादन होता है जो देश कुल उत्पादन का 6.06 % है।

मृदा एवं पोषक तत्व प्रबंधन :

अधिकतम बढ़वार और पैदावार के लिए अधिक ऊपजाऊ दोमट भूमि जिसमें वायु संचार अच्छा हो, पानी का निकास समुचित हो तथा जीवांश पदार्थ काफी मात्रा में पाया जाता हो; उत्तम होता है। मक्का की खेती ऐसी भूमियों में जिनका पी.एच.6.0 से 7.0 हो, की जा सकती है।

फसल की अच्छी उपज प्राप्त करने और मृदा स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए प्रत्येक 3–4 वर्ष में 10 से 15 टन प्रति हैक्ट्येर की दर से अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर या कम्पोस्ट खाद खेत में डाले। जिन क्षेत्रों में गर्मियें में तापमान अधिक होता है और वर्षा का अभाव रहता है ऐसी परिस्थितियों में 3–4 वर्ष में एक बार जैविक खाद की अधिक मात्रा के उपयोग के स्थान पर प्रतिवर्ष 5 टन/है. की दर से गोबर या कम्पोस्ट खाद का प्रयोग करना चाहिए। रासायनिक उर्वरकों का उपयोग भी मक्का की उपज बढ़ाने में सहायक होता है। सामान्यतः पूरे जलवायु खण्ड या राज्य के लिए प्रमुख पोषक तत्वों (नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश) की एक ही मात्रा अनुकरण की जाती है, और किसान उसी मात्रा का अनुकरण करते है। इससे कुछ क्षेत्रों में तो (जहॉ मृदा उर्वरता स्तर अधिक है) आवश्यकता से अधिक मात्रा में उर्वरक उपयोग होता है और कुछ क्षेत्रों में (जहाँ मृदा उर्वरता स्तर कम है) आवश्यकता से कम मात्रा में उर्वरक उपयोग होता है।

कृषि फार्म, कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में ''मृदा परीक्षण फसल अनुक्रिया सहसम्बन्ध परियोजना'' द्वारा मक्का की फसल पर किये गये प्रयोगों के आधार पर अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए उर्वरकों का प्रयोग किया। मृदा परीक्षण मानों के आधार पर मक्का की एक क्वि. उपज प्राप्त करने के लिए लगभग 1.94 किग्रा. नत्रजन 0.57 किग्रा. फॉस्फोरस एवं 1.84 किग्रा. पोटाश की आवश्यकता होती है। इसके लिए निम्नलिखित उर्वरक समायोजित समीकरण का उपयोग किया जा सकता हैः–

उर्वरक नत्रजनः	12.69×लक्षित उपज–1.27×सुलभ मृदा नत्रजन– 0.59×गोबर की खाद में उपलब्ध नत्रजन।
उर्वरक फॉस्फोरसः	3.92×लक्षित उपज–4.25×सुलभ मृदा फॉस्फोरस–0.67×गोबर की खाद में उपलब्ध फॉस्फोरस।
उर्वरक पोटाशः	6.25×लक्षित उपज–0.76×सुलभ मृदा पोटेशियम–0.39×गोबर की खाद में उपलब्ध पोटाश।

उर्वरको द्वारा दी जाने वाली नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश की दक्षता बढ़ाने हेतु जैविक खाद का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। बुवाई से 20–25 दिन पहले जैविक खाद को खेत में बिखेर कर जुताई करके मिट्टी में भली प्रकार मिला देना चाहिए। विभिन्न स्तरों पर किये गये मृदा के नमुनों के परीक्षण से यह पाया गया है कि कृषि जलवायु का औसत सुलभ नत्रजन स्तर लगभग 200 किग्रा./है.। औसत सुलभ फॉस्फोरस स्तर लगभग 15 किग्रा./है. और औसत सुलभ पोटाश स्तर 180 किग्रा./है.। इस आधार पर 10 टन/है. गोबर की खाद के साथ 30 क्वि./है. की उपज प्राप्त करने के लिए 97 किग्रा. नत्रजन, 34 किग्रा. फॉस्फोरस और 35 किग्रा. पोटाश और 35 क्वि./है. की उपज प्राप्त करने के लिए 161 किग्रा. नत्रजन, 53 किग्रा. फॉस्फोरस और 66 किग्रा. पोटाश प्रति है. की दर से उपयोग करना चाहिए।

बुवाई के समय आधी नत्रजन, पूर्ण फॉस्फोरस तथा पोटाश कूंडों में बीज के नीचे डालना चाहिये । शेष नत्रजन को दो बार में बराबर–बराबर मात्रा में छिड़ककर (टॉप ड्रेसिंग) प्रयोग करें। पहली टॉप ड्रेसिंग बोने के 25–30 दिन बाद (निराई के तुरन्त बाद) एवं दूसरी मंजरी निकलते समय करें। यह अवस्था संकर मक्का में बुवाई के 50–60 दिन बाद एवं संकुल में 45–50 दिन बाद आती है।

प्रयोगो द्वारा यह पाया गया है कि जहाँ गोबर की अच्छी सड़ी हुई खाद का लगातार उपयोग होता है, और पोटाश पोषक तत्व की आपूर्ति की जाती है, वहाँ कीड़ो एवं रोगों का पनपना भी कम होता है।

खेत की तैयारी :

खरीफ की फसल लेने के लिए एक गहरी जुताई (15–20 सेमी.) मिट्टी पलटने वाले हल से कर देनी चाहिए। अगर खेत गर्मियों में खाली है तो जुताई गर्मी में करना अधिक लाभदायक होता है। इस जुताई से खरपतवार, कीट–पतंगे व बीमारियों की रोकथाम में काफी सहायता पहुँचती है। बोने से पहले 2–3 जुताई हैरो या कल्टीवेटर या देशी हल से कर देना लाभदायक है। नमी बनाये रखने के लिए पाटा लगाया जा सकता है।

सघन खेती के लिए जुताई की संख्या कम करके खेत में ढेले तोड़कर भुरभुरापन व वायु संचार ठीक कर दिया जाये जिससे अंकुरण अच्छा हो सके। जुताई की अधिक संख्या बढ़ाने पर अधिक लाभ नहीं होता है।

उन्नत किस्मे :

मक्का में देशी, संकुल वं संकर आदि अनेक किस्में विकसित की गई हैं जिनमें उच्च उपज वाली संकर किस्में गंगा–1, गंगा–101, रंजीत, डैकन, गंगा–5, एवं कम्पोजिट या संकुल में विजय, अम्बर, सोना, किसान, जवाहर एवं विक्रम उल्लेखनीय है। पोषण की दृष्टि से अच्छी किस्में ओपेक–2, शक्ति, रतना व प्रोटिना है जिनमें आवश्यक अमीनों अम्ल मुख्य रूप से लाइसिन व ट्रिप्टोफेन तत्व मौजूद है। कुछ संकर किस्में अभी हाल में विकसित की गई है। राजेन्द्र हाइब्रिड मक्का–1 व 2, के. एच..528ए डी.एच.एम..109 व के. एच.. 598ए हाइब्रिड आशा आदि।

उत्तर प्रदेश में प्रचलित किस्में संकर मक्का– गंगा–2, गंगा–5, गंगा–11, संकुल मक्का– तरूण, नवीन, कंचन, डी–765, सूर्या, आजाद, उत्तम, माही, नवज्योति, देशी, मेरठ, पीली व जौनपुरी।

बीज दर :

देशी छोटे दाने वाली प्रजाति के लिए 18–20 किग्रा0 प्रति है0 तथा संकर व संकुल प्रजातियों के लिए 20–22 किग्रा0 प्रति है0 बीज पर्याप्त रहता है।

बुवाई का समय :

खरीफ मक्का – खरीफ मक्का की बुवाई जून के अन्तिम सप्ताह तक अवश्यकर देनी चाहिए।

रबी मक्का – रबी मक्का मुख्य रूप से बिहार कुछ उत्तर प्रदेश के भागों में, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडू, कर्नाटक तथा महाराष्ट्र में उगाया जाता है। मक्का की बुवाई का उपयुक्त समय अक्टूबर के अन्त से नवम्बर के मध्य तक है।

सिचाई :

पौधों की प्रारम्भिक अवस्था तथा सिल्किंग से दाना पड़ने की अवस्था पर पर्याप्त नमी आवश्यक है। अतः आवश्यकतानुसार यदि वर्षा न हो रही हो तो सिंचाई अवश्य करनी चाहिये। लेकिन ध्यान रहे पानी भरा नहीं रहना चाहिये।

निराई–गुड़ाई व खरपतवार नियंत्रण :

मक्का की खेती में निराई–गुड़ाई का अधिक महत्व है। निराई–गुड़ाई से खरपतवार नियंत्रण के साथ ही मृदा में वायु संचार बढ़ता है। पहली निराई जमाव के 15 दिन बाद तथा दूसरी 35–40 दिन बाद करनी चाहिए।

मक्का के खरपतवारों को नष्ट करने के लिए एट्राजीन 1.5 किग्रा. घुलनशील चूर्ण का 800–1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर बुवाई के दूसरे या तीसरे दिन अंकुरण से पूर्व प्रयोग करने से चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार नष्ट हो जाते हैं अथवा एलाक्लोर 50 ई.सी. 4 से 5 लीटर बुवाई के तुरन्त बाद जमाव से पूर्व 800–1000 लीटर पानी में घोलकर भी प्रयोग किया जा सकता है। यदि मक्का के बाद आलू की खेती करनी हो तो एट्राजीन का प्रयोग न करें।

मक्का की बीमारियाँ एवम् उनकी रोकथाम :

तुलासिता रोग : इस रोग में पत्तियों पर पीली धारियाँ पड़ जाती है। पत्तियों के नीचे के सतह पर सफेद रूई के समान फफूंदी दिखाई देती है। ये धब्बे बाद में गहरे अथवा लाल भूरे पड़ जाते हैं। रोगी पौधों में भुट्टे कम बनते हैं या बनते ही नहीं है। इसकी रोकथाम हेतु जिंक मैंगनीज कार्बामेट 2.5 किग्रा. प्रति हे. की दर से छिड़काव आवश्यक पानी की मात्रा में घोलकर करना चाहिए।

पत्तियों का झुलसा रोग : इस रोग में पत्तियों पर बड़े लम्बे अथवा कुछ अण्डाकार भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। रोग के उग्र होने पर पत्तियाँ झुलसकर सूख जाती हैं। इसकी रोकथाम हेतु जिनेब या जिंक मैंगनीज कार्बामेट 2 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

तना सड़न : यह रोग अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में लगता है। इसमें तने की पोरियों पर जलीय धब्बे दिखाई देते हैं जो शीघ्र ही सड़ने लगते हैं और उनसे दुर्गन्ध आती है। पत्तियाँ पीली पड़कर सूख जाती है। रोग दिखाई देने पर 10 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लीन अथवा 50 ग्राम एग्रीमाइसीन अथवा 100 ग्राम प्लान्टोमाइसीन प्रति हे. की दर से छिड़काव करने से अधिक लाभ होता है। रोग रोधी किस्में दक्कन, रणजीत व गंगा–2 लगानी चाहिए तथा जल निकास का उचित प्रबन्ध हो।

कंडुआ : प्ररोह के विभिन्न भागों में पहले गाँठे बनती हैं जो बाद में फूटने पर काले–विजाणु बिखेरती हैं । खेत को गंदगी एवं खरपतवार रहित रखना एवं रोग ग्रसित पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए।

गेरूई रतुआ : पत्तियों पर जंग के रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। जिनके फटने पर गेरूई रंग के बीजांड बिखरते हैं। प्रतिरोधी किस्में दक्कन, रणजीत, जवाहर बोनी चाहिये। 0.25% डाइथेन जेड 78 या डाइथेन एम 45 का घोल छिड़कना चाहिये।

कटाई–मड़ाई :

फसल के पकने पर भुट्टों को ढंकने वाली पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं। इस अवस्था पर कटाई करनी चाहिये। भुट्टों की तुड़ाई करके उसके डंठल को छिलकर धूप में सुखाकर हाथ या मशीन द्वारा निकाल देना चाहिए।

अन्य आवश्यक क्रियाएँ:–

1. वर्षा में पानी और तेज हवा से बचाने के लिए मिट्टी चढ़ाना चाहिए।
2. कौओं, चिड़ियों तथा जानवरों से रक्षा हेतु रखवाली आवश्यक है।

मृदा परीक्षण के आधार पर मक्का की लक्षित उपज के लिए उर्वरकों की अनुषंसा अन्य विधियों से बेहतर कैसे?

1. इस पद्धति द्वारा उर्वरकों का संतुलित प्रयोग होने के कारण फसलों से अधिक लाभ मिलता है।

2. फसल की आवश्यकतानुसार मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों के आधार पर उर्वरकों का उचित प्रयोग किया जाता है।
3. इस पद्धति को अपनाने से किसान अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार तथा बाजार में उर्वरक की उपलब्धता के अनुसार निम्न एवं उच्च उपज लक्ष्य निर्धारित कर अधिक से अधिक लाभ ले सकते हैं। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि फसल की लक्षित उपज कभी भी प्रजाति की उपज क्षमता का 90 प्रतिशत से अधिक न हो।
4. इस पद्धति द्वारा संतुलित मात्रा में उर्वरकों का निरन्तर प्रयोग करते रहने से निर्धारित लक्षित उपज प्राप्त करने के लिए आवश्यक उर्वरकों की मात्रा में निरन्तर कमी होती जाती है जिससे अधिक शुद्ध लाभ प्राप्त होता है।

हिन्दी को आप हिन्दी कहें या हिन्दुस्तानी
मेरे लिए तो दोने ही एक है।
हमारा कर्तवय यह है कि हम अपना
राष्ट्रीय कार्य हिन्दी भाषा मे करें।

- महात्मा गाँधी

बदलते जलवायु परिदृश्य में फसल विविधीकरण हेतु मक्का में सम्भावनाएं

अभिजित कुमार दास[1], दीप मोहन महला[1], मनेश चन्द्र डागला[1], चिकप्पा जी. के.[1], संतोष कुमार[1], रमेश कुमार[1], यतीश के. आर.[1], सी. एम. परिहार[2], एवं सुजय रक्षित[1]

[1]भाकृअनुप –भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब)

[2]भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली

*संवादी लेखक का ई–मेलः das-myself@gmail-com

दुनिया में गेहूं और चावल के बाद मक्का तीसरी महत्वपूर्ण खाद्य फसल है। मक्का का न केवल एक खाद्य फसल के रूप में बल्कि इसका फीड, चारे तथा औद्योगिक फसल के रूप में भी काफी महत्व है। विश्व में, मक्का की खेती 170 से अधिक देशों में लगभग 185 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल पर 5.62 टन/हेक्टेयर की उत्पादकता के साथ की जाती है। यूएसए और चीन का कुल वैश्विक उत्पादन में क्रमशः 35 और 21 प्रतिशत का योगदान है। मक्का के कुल क्षेत्रफल और उत्पादन के दृष्टिकोण से भारत का विश्व में क्रमशः चौथा तथा छठा स्थान है। एशिया के फसल प्रणालियों में मक्का का महत्व हाल के वर्षों में तेजी से बढ़ा है तथा कई देशों ने मक्का उत्पादन और उत्पादकता में प्रभावशाली वृद्धि दर दर्ज की है। फसल सुधार, प्रबंधन और विविधीकरण में नवाचारों के साथ विश्व एवं विशेषकर भारत में मक्का के क्षेत्र के और विस्तार होने की सम्भावना है। मक्का अनुसंधान और विकास में लगे अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय संस्थान क्षमता विकास के माध्यम से प्रौद्योगिकी के लक्ष्यीकरण तथा सभी हितधारकों को शामिल करने की ओर प्रयासरत हैं। नवाचार जैसे एकल संकर मक्का, गुणवत्ता युक्त प्रोटीन मक्का (क्यूपीएम), संरक्षण कृषि (सीए), कृषि यंत्रीकरण, प्रत्यारोपित मक्का, सर्दियों और वसंत ऋतु हेतु मक्का, बेबी कॉर्न, स्वीट कॉर्न, पॉपकॉर्न जैसी प्रौद्योगिकियों ने मक्का के विकास के लिए नई राह तैयार की है।

देश में मक्का के क्षेत्र के विस्तार तथा उत्पादन तकनीक में सुधार जैसे संकर किस्मों को अपनाना और बेहतर फसल प्रबंधन के कारण हाल ही के दशकों में मक्का के उत्पादन में तीव्र वृद्धि हुई है। भारत में मक्का का उपयोग मुख्य रूप से भोजन, फीड (मुर्गियों के दाना), चारे और औद्योगिक कच्चे माल के रूप में किया जाता है। भारत में मक्का का वर्तमान उत्पादन लगभग 28 मिलियन टन है, जिसका लगभग 62 प्रतिशत फीड के रूप में, औद्योगिक उद्देश्यों के लिए 18 प्रतिशत, निर्यात के लिए लगभग 10 प्रतिशत, भोजन के रूप में 6 प्रतिशत और बीज सहित अन्य प्रयोजनों के लिए 4 प्रतिशत उपयोग में लाया जाता है। विशेषकर फीड उद्योग में बढ़ती मांग के कारण मक्का उत्पादन के साथ साथ बाजार मूल्य में भी वृद्धि दर्ज की गयी है। वर्तमान में, लगभग 15 मिलियन टन मक्का का उपयोग पशु आहार के रूप में किया जाता है और 2025 तक भारत को लगभग 32 मिलियन टन की आवश्यकता होगी। भारतीय स्टार्च उद्योग भी तेजी से बढ़ रहा है जिसमें मक्का की मांग वर्तमान में 4.25 मिलियन टन से बढकर 2025 तक 15 मिलियन टन होने की संभावना है। भारत 80 के दशक के अंत तक मक्का का शुद्ध आयातक था। हालांकि, यह हाल ही में मक्का अनाज निर्यातक के रूप में उभरा है और 2025 तक भारत को लगभग 10 मिलियन टन मक्का निर्यात के अवसर मिलने की सम्भावना है।

कृषि उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में सबसे ज्यादा होने के अनुमान हैं। उष्णकटिबंधीय जलवायु परिस्थितियों के कारण दक्षिण एशिया विशेषकर भारत के प्रभावित होने के अनुमान हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण भारत में मौसम की अनपेक्षित घटनाओं जैसे बाढ़, उच्च तापमान, सूखा आदि के कारण कृषि काफी प्रभावित हुई है। ऐसी परिस्थिति में मक्का एक महत्वपूर्ण अकालनाशी फसल साबित हो सकती है। मक्का के परिदृश्य में खरीफ मक्का महत्वपूर्ण है, जिसका 80 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र बारानी है। सूखा बारानी क्षेत्रों की एक व्यापक समस्या है। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अनाज की फसलें, अर्थात, गेहूं, चावल और मक्का लगभग 50 प्रतिशत से ज्यादा मानव खाद्य कैलोरी के स्त्रोत हैं। इनमें, चावल (2100

मि.मी.) और गेहूं (650 मि.मी.) की तुलना में मक्का की पानी की आवश्यकता सबसे कम (500 मि.मी.) है। इसके अलावा, पंजाब जैसे मुख्य अनाज उत्पादक राज्य में पिछले पांच दशकों की अवधि में खरीफ के दौरान चावल की खेती के कारण भूजल में लगातार गिरावट एक चिंता का विषय है। इसलिए, पंजाब कृषि की दीर्घकालिक स्थिरता की चुनौती का सामना कर रहा है जिसका चावल के साथ मक्का के विविधीकरण के माध्यम से निस्तारण किया जा सकता है। कम पानी की मांग वाली फसल होने के नाते, चावल को मक्का द्वारा स्थानांतरित करने से तुरंत गिरते भूजल स्तर की समस्या का समाधान हो सकता है। चावल की कटाई और गेहूं की बुवाई के बीच बहुत कम समय उपलब्ध होने के कारण चावल की पराली को जलाना एक प्रमुख मुद्दा है। जिसे भी चावल से मक्का की खेती में स्थानांतरित करके हल किया जा सकता है। खरीफ मक्का बाहुल्य राज्य जैसे राजस्थान (1.6 टन/हेक्टेयर) और गुजरात (1.6 टन/हेक्टेयर) में मक्का की उत्पादकता काफी कम है। इन क्षेत्रों में कंपोजिट और स्थानीय किस्मों की खेती कम पैदावार का एक मुख्य कारण है। एकल क्रॉस संकर मक्का की उपज क्षमता कंपोजिट, सिंथेटिक्स और स्थानीय किस्मों की तुलना में बहुत अधिक है। इस प्रकार किसानों को बेहतर मुनाफा पाने के लिए एकल क्रॉस संकर का प्रयोग करना चाहिए। बेहतर बीज की समय पर उपलब्धता अभी भी एक महत्वपूर्ण मुद्दा है क्योंकि, सार्वजनिक और निजी क्षेत्र सहित बीज कंपनियां केवल 50–60 हजार टन एकल क्रॉस संकर बीज का उत्पादन कर रहीं हैं, जो कि मक्का के लगभग 25–30 प्रतिशत क्षेत्र के लिए पर्याप्त हैं। इसलिए किसानों द्वारा संकर मक्का का बीज उत्पादन एक अच्छा विकल्प हो सकता है जो न सिर्फ बीज उत्पादक किसानों की आय को बढ़ाएगा बल्कि संकर मक्का बीज के बाजार मूल्य को कम करने तथा समय पर बीज की उपलब्धता में मददगार साबित हो सकता है। जलवायु परिवर्तन के साथ, पीएफएसआर और बीएलएसबी जैसे रोग और तना छेदक जैसे कीट–रोग का प्रकोप बढ़ रहा है। अतः कृषि वैज्ञानिको के समक्ष जलवायु अनुकूलता के साथ–साथ रोगों, कीटों और विभिन्न अजैविक तनावों के लिए प्रतिरोधी और सहिष्णुता के साथ उच्च उपज देने वाले संकर किस्मों का विकास एक महत्वपूर्ण चुनौती है। इसके अलावा, मक्का एक सी4 पौधा है, यह चावल और गेहूं जैसी सी3 फसलों की तुलना में अधिक कार्बन डाई ऑक्साइड को आत्मसात कर सकता है और मौजूदा चावल–गेहूं फसल प्रणाली में उत्तर–पश्चिमी भारतीय राज्यों में फसल विविधीकरण के लिए प्रेरक शक्ति बन सकता है।

वर्तमान में ऊर्जा की मांग को पूरा करने के लिए भारत कच्चे तेल का आयात करता है। जैव–इथेनॉल उत्पादन के लिए दुनिया भर में मक्का का उपयोग किया जा रहा है। इथेनॉल स्वच्छ ऊर्जा का स्त्रोत है तथा ये भारत के ऊर्जा आयात को कम करने में सहायक हो सकता है। वर्ष 2019–20 के लिए तेल विपणन कम्पनियों ने 511 करोड़ लीटर इथेनॉल की मांग की है, जो की गत वर्ष से 55 प्रतिशत अधिक है। वर्ष 2019 में भारत में ईंधन में इथेनॉल का मिश्रण 6.23 प्रतिशत था जबकि सरकार की योजना पेट्रोल में 22.5 फीसदी और डीजल में 15 फीसदी तक इथेनॉल मिलाने की है। इथेनॉल के बढ़ती मांग और कच्चे तेल के आयात बिलों को कम करने के उद्देश्य से, सरकार ने कई कदम उठाए हैं, जिसमें विभिन्न कृषि उत्पादों से इथेनॉल का उत्पादन शामिल है। आने वाले वर्षों में इथेनॉल की मांग और उसके परिणामस्वरूप मक्का की मांग तेजी से बढ़ेगी। भारत को आयात स्थानापन्न वस्तुओं के उत्पादन पर ध्यान देना चाहिए और इथेनॉल उत्पादन से आयात में कटौती, किसान की आय में वृद्धि और स्थानीय उद्योग को बढ़ावा देने में मदद मिलेगी।

इसके अलावा, मक्का की खेती पारिस्थितिक संतुलन को बढ़ावा देने के साथ–साथ पर्यावरणीय स्थिरता भी लाती है। मक्का आधारित संरक्षण कृषि मिट्टी की उर्वरता और पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने में मदद करती है। संरक्षण खेती से तात्पर्य संसाधन संरक्षण की ऐसी तकनीक से है, जिसमें अच्छी फसल की पैदावार का स्तर बने रहने के साथ–साथ संसाधनों की गुणवत्ता भी बनी रहे ताकि वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ–साथ भावी पीढ़ियों के लिए भी एक बेहतर वातावरण सुनिश्चित किया जा सके। संरक्षण खेती मुख्यतः तीन सिद्धांतों– क) न्यूनतम जुताई. ख) फसल अवशेषों का मृदा सतह पर स्थायी आवरण एवं ग) फसल चक्र विविधीकरण पर आधारित है। संरक्षण कृषि में फसल अवशेषों का मृदा की सतह पर स्थायी आवरण मृदा की नमी में उतार–चढ़ाव, पानी के वाष्पीकरण एवं

अपवाह को कम करता है और अवशेषों का आवरण बना होने से मृदा सतह का वातावरण लाभकारी मृदा सूक्ष्म जीवों के लिये अनुकूल हो जाता है जिससे उनकी संख्या में वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप फसल अवशेषों का विघटन होता है और जिससे मृदा में कार्बनिक पदार्थों का स्तर बढ़ता है। कम जुताई मृदा कार्बनिक पदार्थों को बेहतर रखरखाव प्रदान करती है, जिसके परिणामस्वरूप मृदा उर्वरता एवं मृदा संरचना में सुधार तथा फसलों में गहरी जड़ों का विकास होता है। मक्का की खेती में शून्य जुताई को अपनाने से ग्रीनहाउस गैस के उत्सर्जन को कम करके पर्यावरण की गुणवत्ता में सुधार हो सकता है। मक्का को कृषि विविधता के लिए वैकल्पिक फसल के रूप में बढ़ावा देने के लिए उपयुक्त उच्च उपज देने वाले एकल क्रॉस संकर मक्का की खेती, कुशल खरपतवार प्रबंधन प्रणाली, मशीनरी आवश्यक हैं।

हालांकि, जलवायु परिवर्तन के गंभीर प्रभावों से निपटने के लिए, अनुसंधान और नीतिगत बदलावों के साथ–साथ व्यवस्थित और चरणबद्ध रणनीति की आवश्यकता होती है, ताकि भोजन, दाना, चारा एवं उद्योगों के लिए कच्चे माल के लिए मक्का की हमारी भविष्य की मांग को पूरा किया जा सके। देश की जलवायु परिवर्तन की चपेट में आने वाले क्षेत्र जहाँ पानी की कमी है या निकट भविष्य में आ सकती है, को चिह्नित करके अनुशंसित उच्च उत्पादकता वाले सूखा सहिष्णु एकल क्रॉस संकरों का प्रयोग चावल जैसी अधिक पानी की मांग वाली फसलों को बदलने के लिए किया जा सकता है। कई बार किसानों के खेत में मक्का की संभावित और वास्तविक उपज में अंतर होता है जो किसानों द्वारा मक्का को व्यापक रूप से अपनाने में बाधा उत्पन्न करता है। इसका कारण कम पौधों की संख्या हो सकती है, अतः उच्च घनत्व के रोपण के लिए पौधों की बनावट वैज्ञानिकों के लिए एक लक्ष्य है। संकर मक्का दो अन्तर्जात लाइनों के बीच क्रॉस का एक उत्पाद है। डबल अगुणित (डीएच) तकनीक जैसे त्वरित प्रजनन दृष्टिकोण का उपयोग करके उपयुक्त अन्तर्जात लाइनों के विकास से मक्का की उपज को कम समय में अन्य फसलों की तुलना में अधिक करने में तथा किसानों को अच्छी आमदनी को बेहतर किया जा सकता है।

सरकार की ओर से नीतिगत हस्तक्षेप निश्चित रूप से मक्का के माध्यम से फसल विविधीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। किसानों द्वारा व्यापक रूप से अपनाए जाने के लिए मक्का कृषि के लाभों को सभी हित धारकों को प्रभावी ढंग से बताने की आवश्यकता है। मक्का में किसानों की रूचि बढ़ाने के लिए चावल और गेहूं की तरह सरकार मक्का की न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खरीद सुनिश्चित कर सकती है। देश में विशेष मक्का जैसे स्वीट कॉर्न, बेबी कॉर्न और पॉपकॉर्न की दिन–प्रतिदिन बढती मांग को देखते हुए, उचित बुनियादी ढाँचे का विकास फसल विविधीकरण को बढ़ावा दे सकता है। मक्का से तैयार की जाने वाली साइलेज अन्य फसलों के साइलेज से उत्तम गुणवत्ता तथा पशुओं द्वारा अत्यधिक पसंद की जाती है। इसलिए, फसल विविधीकरण के द्वारा चारे और साइलेज मक्का की खेती एक अच्छा अवसर प्रदान कर सकती है। डेयरी फार्मों एवं विशेष मक्का (बेबी कॉर्न और स्वीट कॉर्न), साइलेज वाले किसानों के बीच आपसी तालमेल से पशुधन उद्योग को और बढ़ावा मिल सकता है। मक्का की खेती में एक बड़ी कमी चावल और गेहूं की तुलना में कम मशीनीकरण का होना है। सामुदायिक स्तर पर मशीनरी की व्यवस्था के माध्यम से मक्का की खेती में मशीनीकरण को बढ़ावा दिया जा सकता है। खाद्य, फीड और स्टार्च उद्योगों और भंडारण उद्योगों की स्थापना निश्चित रूप से उद्यमशीलता को प्रोत्साहित करेगी और कृषि में निवेश को आकर्षित करेगी।

राष्ट्रीयता का भाषा और साहित्य के साथ बहुत ही घनिष्ठ और गहरा संबंध है।

– डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

बिहार में एकल संकर मक्का बीज उत्पादन की संभावनाऐं एवं समस्याऐं

श्याम बीर सिंह, संतोष कुमार एवं अजय कुमार
क्षेत्रीय मक्का अनुसन्धान व बीज उत्पादन केंद्र (भाकृअनुप–भामअनुस) विष्णुपुर, बेगुसराय (बिहार)
*संवादी लेखक का ई–मेल: sb-singh@icar.gov.in

परिचय

मक्का उत्पादन के क्षेत्र में बिहार राज्य की एक विषेष पहचान है। बिहार राज्य 24°20'10'' से 27°31'15'' उत्तरी अक्षांश और 83° 19'50'' से 88° 17'40'' पूर्वी रेखांश के बीच स्थित है। यह राज्य उत्तर में नेपाल, पश्चिम में उत्तर प्रदेश व् मध्य प्रदेशए दक्षिण में झारखण्ड व पूर्व में पश्चिम बंगाल से घिरा हुआ है। इसका भौगोलिक क्षेत्र 9.416 मिलियन हेक्टेयर है। बिहार राज्य को गंगा नदी ने लगभग दो भागों उत्तरी बिहार तथा दक्षिणी बिहार में बांटा हुआ है। जहां 103.8 मिलियन आबादी (भारत की कुल आबादी का 8.6%) निवास करती है। क्षेत्रवार, बिहार का भारत में 12 वां स्थान है। बिहार की मुख्य अर्थव्यवस्था कृषि है, जिसमें करीब राज्य के 77% लोग कार्यरत है और राज्य के घरेलू उत्पाद में कृषि का 35% योगदान है। राज्य के 88% लोग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हैं जहाँ आजीविका में सुधार तथा गरीबी को कम करने के लिए उन्नत कृषि उत्पादन तकनीक, वैकल्पिक खेती और संबंधित ग्रामीण गैर–कृषि गतिविधि में सुधार करना महत्वपूर्ण है। बिहार में उगाए जाने वाली प्रमुख फसलें चावल, गेहूं, मक्का, चना, गन्ना, आलू और अन्य राब्जियां हैं। बिहार राज्य भारत के कृषि जलवायु क्षेत्र I (मध्य–गंगा मैदानी क्षेत्र) के अंतर्गत आता है। बिहार को देश में दूसरी हरित क्रांति का केंद्र माना जाता है। 2006–07 तक मुश्किल से 40–50 रेल रेक (प्रत्येक में 2600 टन का भार) मक्का का निर्यात होता था जो खगड़िया, मानसी और नौगछिया में तीन मंडियों से सालाना लोड होता था। लेकिन अगले 6–7 वर्षों में ये रेक 500–550 तक बढ़ गए थे, जो बिहार में आयी संकर मक्का उत्पादन क्रांति को दर्शाता है। मक्का आधारित उद्योगों से रोजगार की भी अपार संभावनाएं हैं जो कि बिहार के मजदूरों के पलायन को कम कर सकती है। विशेष प्रकार के मक्के को निर्यात करके विदेशी मुद्रा भी अर्जित की जा सकती है।

जलवायु

बिहार राज्य भारत के कृषि जलवायु क्षेत्र I (मध्य–गंगा मैदानी क्षेत्र) के अंतर्गत आता है। बिहार राज्य को अलग–अलग मौसमों के अनुसार चार जलवायु क्षेत्रों में बांटा गया है। राज्य का उत्तरी भाग का तापमान हिमालय के निकट होने के कारण दक्षिणी भाग की तुलना में कम रहता है, पूर्वी भाग का जलवायु हिमालय के निकटता के कारण आर्द्र है जबकि पश्चिमी भाग में महाद्वीपीय प्रभावों के कारण शुष्क मौसम होता है। इसलिए बिहार की जलवायु को संशोधित मॉनसून जलवायु भी कहा जाता है। बिहार में औसतन 1205 मिलीमीटर वार्षिक वर्षा होती है जो कि अधिकांश वर्षा ऋतू में जून से सितंबर के दौरान होते हैं। बिहार का औसत दैनिक उच्च तापमान गर्मियों में 36 डिग्री सेंटीग्रेड होता है जिसके कारण जलवायु बहुत गर्म होता है। लेकिन वर्ष के केवल कुछ ही उष्णकटिबंधीय और आर्द्र होते हैं। बिहार में दिसंबर व जनवरी महीनों में काफी सर्दियां होती है तथा रात का तापमान 10 डिग्री सेंटीग्रेड से कम होकर 4 डिग्री तक भी पहुँच जाता है। अप्रैल से जून माह में तापमान अधिक होता है तथा मौसम में शुष्कता बनी रहती है। मौसम की अनुकूलता के कारण ही बिहार में मक्का की खेती वर्ष भर तीनो ऋतुओं रबी, बसंत तथा खरीफ में की जाती है।

बिहार में संकर मक्का व बीज उत्पादन की वर्तमान स्थिति

2006–07 के आसपास, कारगिल के नेतृत्व वाले बहुराष्ट्रीय कंपनियों के व्यापारियों ने इंडोनेशिया, मलेशिया और वियतनाम को आपूर्ति के लिए बिहार से मक्का की

सोर्सिंग शुरू की, जो पारंपरिक रूप से दक्षिण अमेरिका से मक्का का आयात करता था। बिहार का लाभ यह था कि इसका मक्का मई के प्रारंभ से बाजारों में आ जाता था और मई के अंत तक विशाखापत्तनम या काकीनाडा बंदरगाहों से भेजा जा सकता था, जबकि दक्षिण अमेरिकी फसल मध्य जून से पहले तुड़ाई के लिए तैयार नहीं होती थी। 2012–13 तक, बिहार का वार्षिक मक्का निर्यात 10 लाख टन (6.5 दक्षिण–पूर्व एशिया और 3.5 बांग्लादेश और नेपाल) तक पहुंच गया था। पूर्णिया, कटिहार और भागलपुर से मधेपुरा, सहरसा, खगड़िया और समस्तीपुर (गंगा के उत्तर) में कोसी के दोनों ओर – एक मक्का बेल्ट के रूप में उभरा जहां कई किसानो को, बड़े और छोटे, प्रति एकड़ 50 क्विंटल या उससे अधिक उपज प्राप्त हुई। यह अमेरिका के इलिनोइस, आयोवा और इंडियाना के मिडवेस्ट हार्टलैंड में 180–200 बुशल पैदावार के बराबर था (एक बुशल 25.4 किग्रा के बराबर)। खगड़िया, सहरसा, समस्तीपुर और कटिहार के बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में, रबी मक्का प्रमुख और कुछ मामलों में, एकमात्र फसल बन गया। वर्ष 2016–17 में बिहार का कटिहार जिला संकर मक्का उत्पादन में 11.9 टन प्रति हेक्टेयर उत्पादन लेने वाला जिला बन गया जो कि एक कीर्तिमान बना।

बिहार ने 2018–19 में कुल खाद्यान्न उत्पादन (16.31 मिलियन टन) और मक्का (3.19 मिलियन टन) का उत्पादन किया है। बिहार में मक्का तीसरी सबसे महत्वपूर्ण खाद्य फसल है। मक्का "अनाज की रानी के रूप में भी मशहूर है। वर्तमान में बिहार भारत में मक्का का तीसरा सबसे बड़ा उत्पादक राज्य है। मक्का में मनुष्यों एवं पशुओं दोनों के पोषण के स्तर में सुधार तथा उद्योगों पशुधन अर्थव्यवस्था तथा समग्र ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास को बढ़ावा देने की अच्छी क्षमता है। बिहार भारत में पारंपरिक मक्का उगाने वाले राज्यों में से एक है। हालांकि, लगभग सभी जिलों में और बिहार के सभी प्रकार के कृषि–पारिस्थितिक क्षेत्रों में तथा वर्ष भर मक्का पैदा की जाती है। राज्य के कुल उत्पादन का तीन चौथाई से ज्यादा उत्पादन मुख्यतः रबी मौसम में 13 जिले (जो मुख्य रूप से कृषि–जलवायु क्षेत्र I और II) से होती है। इसके अलावा रबी मौसम के दौरान केवल सात जिलों, बेगूसराय, खगरिया, पूर्वी चंपारण, भागलपुर, मधेपुरा, सहरसा और समस्तीपुर में राज्य के कुल मक्का क्षेत्र का लगभग आधा से ज्यादा क्षेत्र है और छह जिले मधेपुरा, खगरिया, सहरसा, भागलपुर, पूर्वी चंपारण एवं कटिहार राज्य के कुल मक्का उत्पादन का 50 प्रतिशत से अधिक का उत्पादन करता है। ये जिले गंगा के उत्तर में स्थित है जो बरसात के मौसम के दौरान बाढ़ प्रभावित रहते हैं।

राज्य के आर्थिक व सांख्यकी निदेशालय द्वारा जारी 2018–19 के आंकड़ों के अनुसार बिहार में 0.669 मिलियन हेक्टेयर में 3.19 मिलियन टन मक्का का उत्पादन किया गया। बिहार राज्य के सीड रोलिंग प्लान के अनुसार 2020–21 में संकर मक्का उत्पादन के लिए लगभग 1.16 लाख टन संकर बीज की आवश्यकता होगी। बिहार में लगभग 95 प्रतिशत मक्का के क्षेत्र में संकर मक्का का उत्पादन किया जाता है। बिहार संकर मक्का बीज का एक बड़ा बाजार है। बिहार में आज अनुमानित 25–लाख पैकेट रबी संकर मक्का का बीज बाजार है। जिसकी कीमत औसतन 1000 रुपये प्रति पैकेट 4 किलोग्राम के हिसाब से 250 करोड़ रुपये है। इसका एक बड़ा हिस्सा बहुराष्ट्रीय कंपनियों ड्यूपॉन्ट पायनियर (36–37 प्रतिशत), मोनसेंटो (29–30 प्रतिशत), लीमाग्रेन (10 प्रतिशत) और सिनजेन्टा (5 प्रतिशत) के पास जाता है। शेष राशि हिंदुस्तान की कंपनियों जैसे नुजिवेदु और कावेरी सीड्स द्वारा लिया जाता है। बिहार में संकर मक्का का बीज उत्पादन नगण्य है। राज्य में केवल दो कृषि विश्वविद्यालय हैं जिनमे से केवल राजेंद्र प्रसाद कृषि विश्विद्यालय पूसा समस्तीपुर में केवल शक्तिमान 5 का संकर बीज उत्पादन किया जाता है। राज्य की केवल एक बीज उत्पादन कंपनी "मेहसीना सीड्स" ही कुछ मात्रा में संकर मक्का का बीज उत्पादन करती है जो कि केवल कुछ किसानो की आवश्यकता को पूरा कर सकती है। यह कंपनी भी ज्यादातर सफेद मक्का की किस्मो का उत्पादन करती है जिसको किसान चारे के रूप में खरीफ में उगाते हैं। राज्य में कुल संकर मक्का बीज का लगभग 98% अन्य दक्षिण राज्यों से आयात किया जाता है। इन संकर बीजों की किस्मों में अधिकांश प्राइवेट कंपनियों द्वारा बिक्रीधविपणित किये जाते हैं। ये कंपनियां इन संकर मक्का किस्मों का बीज उत्पादन दक्षिणी राज्यों जैसे आंध्र प्रदेश, कर्नाटक इत्यादि में बीज उत्पादन करती है तथा बिहार में बिक्री करती है। इसके अतिरिक्त नेशनल सीड्स कारपोरेशन भी कुछ संकर मक्का की किस्मो का बीज विपणन करती है, लेकिन बिहार राज्य बीज निगम द्वारा

कोई भी संकर मक्का का बीज उत्पादन नहीं किया जाता है। भारतीय मक्का अनुसन्धान संस्थान के क्षेत्रीय मक्का अनुसंधान व बीज उत्पादन केंद्र बेगुसराय द्वारा भी संकर मक्का किस्मो HQPM –1, DHM –117, DMRH –1301 आदि का प्रजनक बीज उत्पादन किया जाता है। जिसकी आपूर्ति देश के संकर बीज उत्पादन करने वाले संस्थानों, NSC, WBSSDC, बीज उत्पादन कंपनियों, कृषक उत्पादन समूहों इत्यादि को की जाती है। जो कि प्रजनक बीज से संकर मक्का बीज उत्पादन करते है। कृषि विज्ञान केंद्र (KVK) आमतौर पर कुछ प्रदर्शनों का आयोजन करतें है, लेकिन किसानों को सार्वजनिक क्षेत्र की किस्मों का उपयोग करने के लिए सफलतापूर्वक आकर्षित करने के लिए पर्याप्त नहीं है।

संकर मक्का बीज उत्पादन की समस्याएँ व् उनका निराकरण हेतु सुझाव

विपणन की समस्याः बिहार में संकर मक्का बीज उत्पादन का बड़े पैमाने पर न अपनाये जाने के कई कारण हैं, जिनमें प्रमुख कारण उत्पादित बीज का संगठित विपणन व्यवस्था न होना है। राज्य में कोई बड़ी कंपनी बीज उत्पादन व् विपणन में सक्रीय नहीं है। किसान बीज उत्पादन तो करना चाहते हैं परन्तु उनका यही कहना है कि उत्पादित बीज की वे बिक्री कहाँ करें। इस दिशा में राज्य की इकाई बिहार राज्य बीज निगम को सक्रिय भूमिका निभानी होगी जो किसानो से उत्पादित बीज का विक्रय कर विपणन करे तथा राज्य को भी बिहार में उत्पादित बीज को प्रथमिकता देनी होगी।

भण्डारण की समस्याः संकर मक्का का बीज उत्पादन में बीज के उचित भंडारण का विशेष महत्त्व है। उत्पादित बीज का भण्डारण शुष्क व् शीत भंडार गृह में किया जाना चाहिए। बिहार राज्य में जून से अक्टूबर तक अधिक आद्रता व् तापमान वाला मौसम होता है। इस वातावरण में शुष्क व् ठंडे भंडार गृह न होने पर संकर मक्का का बीज का अंकुरण प्रभवित होता है। इसके लिए सामुदायिक शुष्क व् शीत भंडार गृह की व्यवस्था की जा सकती है।

संकर मक्का बीज उत्पादन में यंत्रीकरण की कमीः संकर मक्का बीज उत्पादन में यंत्रीकरण का उपयोग करके अधिक लाभ लिया जा सकता है। बिहार राज्य में अभी भी मक्का कटाई मशीन, सीड ड्रायर तथा अंतःशस्य क्रियाओं के उपकरण का आभाव है। कटाई के उपरांत असमय वर्षा होने पर या कटाई के बाद दानो में नमी का स्तर कम करने के लिए सीड ड्रायर का उपयोग बहुत आवश्यक है। यह बीज उत्पादन फसल में ही नहीं बल्कि सामान्य मक्का उत्पादन के लिए भी आवशयक है।

संकर मक्का बीज उत्पादक किसानो का प्रशिक्षणः राज्य में संकर मक्का बीज उत्पादन करने के लिए उचित किसानो का चयन कर उन्हें विस्तृत प्रशिक्षण की आवश्यकता है। इन किसानों को प्रशिक्षण के लिए बिहार राज्य के अतिरिक्त संकर मक्का बीज उत्पादन करने वाले दक्षिणी राज्यों में भी भ्रमण पर भेजना चाहिए। किसानों को संकर मक्का बीज उत्पादन का प्रशिक्षण देने के उपरांत उनके द्वारा उत्पादित बीज की "बाई बैक प्रणाली" से खरीद की व्यवस्था की जानी चहिये।

संकर मक्का बीज उत्पादक कृषक समूह का गठनः बिहार राज्य में अभी कोई भी संकर मक्का बीज उत्पादक कृषक समूह नहीं है। प्रशिक्षण के उपरांत इन किसानो का एक संकर मक्का बीज उत्पादक कृषक समूह बनाया जाय। इस बीज उत्पादक कृषक समूह का निबंधन संकर मक्का बीज की बिक्री तथा विपणन करने वाली कंपनियों से कराया जाये। आवश्यकता पड़ने पर यह समूह स्वयं संकर मक्का बीज का विपणन भी कर सकता है।

संकर मक्का बीज विपणन कंपनियों को बिहार में बीज उत्पादन के लिए प्रेरित करनाः बिहार में संकर मक्का बीज की बिक्री करने वाली लगभग सभी कंपनिया अपनी संकर किस्मों का बीज उत्पादन भारत के दक्षिणी राज्यों जैसे आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक आदि में कराती है तथा उत्पादित बीज का विक्रय बिहार में करती हैं। बीज का वितरण ज्यादातर निजी कृषि–डीलरों द्वारा किया जाता है। कंपनियों के पास अपने स्वयं के प्रतिनिधि (एजेंट) होते हैं या कृषि–डीलरों के माध्यम से बेचते हैं, जो कई किस्मों और ब्रांडों का स्टॉक करते हैं। निजी कंपनियों का बाजार में बड़ा हिस्सा होने के कारणों में से एक है, क्योंकि वे सार्वजनिक क्षेत्र की तुलना में अपनी मार्केटिंग में बेहतर और अधिक आक्रामक हैं। वे यह भी सुनिश्चित करते हैं कि बीज सही समय पर विक्रय स्थल और किसानों तक पहुंचे राज्य सरकार के स्तर पर इन कंपनियों को बिहार राज्य में बीज उत्पादन करने के

लिए प्रेरित किया जाना चहिये। ताकि भविष्य में बिहार राज्य संकर बीज उत्पादन कर इसका निर्यात करने की स्थिति में पहुँच सके।

सांकर बीज के बजाय सांकर बीज उत्पादन पर अनुदान व्यवस्थाः राज्य सरकार प्रतिवर्ष संकर बीज खरीदने के लिए किसानों को अनुदान के रूप में एक बड़ी राशि का भुगतान करती है। राज्य सरकार को अनुदान की यह राशि बिहार राज्य में उत्पादित संकर मक्का बीज पर देनी चाहिए। इससे राज्य के किसान संकर मक्का बीज उत्पादन के लिए प्रेरित होंगे तथा राज्य में संकर मक्का बीज की उपलब्धता कम मूल्य पर अपेक्षित होगी।

एकल संकर मक्का बीज उत्पादन की तकनीकी

मक्का में संकर बीज उत्पादन करने के लिए कुछ जानकारीयों का होना बहुत आवष्यक हैं। किसान भाई मक्का का बीज उत्पादन करके सामान्य फसल से ज्यादा लाभ प्राप्त कर सकते हैं। एकल संकर मक्का का बीज उत्पादन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण तकनीकी जानकारी इस प्रकार है

प्रथक्करण दूरी

जहां तक संभव हो आनुवंषिक शुद्धता को बनाए रखने के लिए संकर बीज का उत्पादन या तो ऐसे क्षेत्र में करना चाहिए जहां बीज उगाये जाने वाले खेत के आसपास मक्के की कोई अन्य किस्म न उगाई जा रही हो या दो मक्का प्रतिरूपों (जीनोटाइप) के बीच कम से कम 400 से 500 मीटर की दूरी हो। इसे "बीज ग्राम अवधारणा'' से संभव बनाया जा सकता है जिसके तहत एक गांव में केवल एक संकर बीज का उत्पादन किया जाए जो कि उत्तम बीज उत्पादन के लिए सबसे आसान तरीका है।

नर मादा अनुपातः यह अनुपात निम्नलिखित बातों पर निर्भर करता है

अ) नर जनक की पराग गिरान की क्षमता तथा ब) नर मादा समकालिकता (सिंक्रोनी): अच्छी बीज सेटिंग के लिए मादा पौधों में पुष्पन नर पौधों से पहले होना चाहिए या नर परागों का स्फुटन (डेहिसंस) मादा सिल्किंग के साथ साथ होना चाहिए। सामान्यतः नर मादा का अनुपात 1:2 या 1:4 होना चाहिए।

1 **खेत का चयनः** बीज उत्पादन कार्यक्रम को ऐसी जगह अपनाना चाहिए जहां भूमि में पानी निकास की अच्छी व्यवस्था हो एवं खरपतवारों और रोग मुक्त मिट्टी हो तथा प्राथमिकता ऐसे खेतों को देनी चाहिए जिसमें बीज उत्पादन से पूर्व मक्कें की फसल न ली गई हो इससे आनुवंशिक शुद्धता के साथ साथ अनचाहे पौधों को कम किया जा सकता है

2 **बुवाई का समयः** बुवाई के सही समय का ध्यान रखना फसल की अच्छी बढ़त के लिए सबसे महत्वपूर्ण होता है। भारत के अधिकतर भागों में खरीफ के मौसम में जुलाई के प्रथम सप्ताह तथा रबी मौसम में नवम्बर का प्रथम सप्ताह बुवाई के लिए सर्वोत्तम समय है क्योंकि इससे खरीफ में भारी बर्षा से तथा ठंडे में कम तापमान या पाला से पुष्पण अवस्था को बचाया जा सकता है। अच्छे पोलीनेशन (परागण) के लिए वर्षा तथा कम तापमान को पुष्पण अवस्था के साथ साथ नहीं घटित होना चाहिए। खरीफ में पुष्पण के दौरान वर्षा से परागकण धुल जाते हैं तो वहीं ठंडी के मौसम में कम तापमान के कारण पौधे मर जाते हैं या परागकोष (एंथर) जीवित नहीं रह पाते।

3. **बुवाई की विधिः** बीज को मेड़ों पर बोना चाहिए। बुवाई, पूर्वी–पश्चिमी रिजों के दक्षिणी भाग में करनी चाहिए इससे अच्छा अकुरण होता है। बुवाई के समय बीज में उचित दूरी बनाए रखनी चाहिए। पंक्ति से पंक्ति तथा पौधे से पौधे की दूरी क्रमशः 60 तथा 20 सें0 मी0 रखना चाहिए। उचित दूरी बनाए रखने से टेस्ट भार को सुधारने में भी मदद मिलती है। सिंगल क्रॉस हाइब्रिड बीज उत्पादन में नर एवं मादा जनको की जरूरत पड़ती हैं। बुवाई के समय सावधानी रखनी चाहिए कि दोनों बीज आपस में न मिलें। अलग–अलग पंक्तियों में नर एवं मादा अनुपात के अनुसार जनकों की बुवाई करनी चाहिए। नर तथा मादा पंक्तियों में अंतर के लिए पहचान टैग लगाया जाना चाहिए। इससे बाद मे किए जाने वाले सभी कार्यो में सुविधा रहती हैं।

4. **बीज दरः** नर मादा अनुपात सामान्यतरू उपयुक्त बीज दर मादा पैधों के लिए 15 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर तथा नर पौधों के लिए 10 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है तथा बीज का न्यूनतम जमाव 80 प्रतिशत होनी चाहिए।

5. **बीज उपचारः** बीज को बीज तथा मृदा जनित रोगों एवं कीट–व्याधियों से बचाने के लिए बुवाई से पहले कवकनाषियों से उपचारित करना चाहिए। 1. टर्सीकम लीफ ब्लाईट, बैंडेड लीफ एवं शीथ ब्लाईट,मेडिस लीफ ब्लाईट आदि के लिए बाविस्टीन, केप्टान 1:1 के अनुपात में। 2. दीमक तथा प्ररोह मक्खी के लिए इमिडाक्लोरपिड 4 ग्राम/किलोग्राम या फिप्रोनिल 4 मि.ली./किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करना चाहिए।

6. **पोषण प्रबंधनः** सामान्यतः अंतःजात पौधे धीमी गति से वृद्धि करते हैं तथा स्वभावतः कमजोर होने के साथ साथ इनकी पोषण ग्रहण क्षमता भी कमजोर होती है। अतः अंतःजात को अधिक उर्वरकों की आवष्यकता होती हैं। बुवाई के 15 दिन पूर्व प्रति हेक्टेयर 15 टन गोबर की खाद का प्रयोग करना चाहिए। अंतःजात पौधो के लिए प्रति हेक्टेयर 180 से 200 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 80 कि.ग्रा. फास्फोरस, 80 कि.ग्रा. पोटाश तथा 25 कि.ग्रा. जिंकसल्फेट की आवश्यकता होती है। 1. फास्फोरस, पोटाश और जिंक की पूरी खुराक बुवाई के समय दें। 10 प्रतिशत नाइट्रोजन बुवाई के समय दें। 20 प्रतिशत नाइट्रोजन चार पत्ती की अवस्था में दें। 30 प्रतिशत नाइट्रोजन आठ पत्ती की अवस्था में दें। 30 प्रतिशत नाइट्रोजन पुष्पन की अवस्था में दें। 10 प्रतिशत नाइट्रोजन दाना भरने की अवस्था में दें।

7. **जल प्रबंधनः** अंतःजात (इनब्रेड) जनको के लिए हल्की और बार–बार सिंचाई की जरूरत होती है। सिचाई की संवेदनशील अवस्थाये –

1. यंग सिडलिंग 2. घुटनों तक उॅचाई 3. पुष्पण्न का समय 4. दाना भरने का समय 5. दाना भरने के दस दिन बाद है।

8. **खरपतवार प्रबंधनः** एट्राजीन एक चयनित और ब्रॉड स्प्रेक्ट्रम खपतवारनाषी होने के कारण चौड़ी पत्ती वाले खरपतावारों के साथ अन्य प्रमुख घासों को नियंत्रित करता है। बुवाई के बाद और खरपतावार के निकलने के पूर्व 600 लीटर पानी में 1.0–1.5 कि.ग्रा. अट्राजीन घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

9. **मिट्टी चढ़ानाः** मिट्टी चढ़ाने से एक दिन पहले, नाइट्रोजन की तीसरी खुराक डालनी चाहिए तथा इसके पश्चात निराई गुड़ाई करना चाहिए। अगले दिन मिट्टी चढ़ाने का कार्य पूरा कर लिया जाना चाहिए।

10 **कीट प्रबंधनः** मक्का में तना भेदक एक गंभीर समस्या है। बीज जमने के 10 दिन और 20 दिन पश्चात कार्बोरिल या साइपरमेथलीन 1.5–2.0% की दर से छिडकाव से तना भेदक की रोकथाम की जा सकती है। गोभ में फोरेट 106 का उपयोग करना चाहिए। छिड़काव पौधे के गोभ में करनी चाहिए। फॉल आर्मीवार्म भारत में एक नया तथा खतरानक कीड़ा है जो मक्का की फसल को भारी क्षति पहॅचा रहा है। फॉल आर्मी वर्म को एकीकृत या समेकित कीट प्रबंधन द्वारा प्रबंधित किया जा सकता है। इस कीट को विभिन्न रासायनिक कीटनाषकों के उपयोग से विकास के विभिन्न चरणों में प्रबंधित किया जा सकता है। यदि संक्रमण 5% से कम हो तो 5% नीम बीज कर्नेल इमल्शन यछैज्ञम्द्ध या एजेडिराक्टिन 1500 पीपीएम/5 मिली/लीटर पानी का छिड़काव करें। दि इस स्तर पर सक्रमण 10% से अधिक हो तो सचीबद्ध किसी भी रासायनिक कीटनाशक का छिडकाव करें। अ) स्पाइनोटर्म 11.7% 0.5 ml/लीटर पानीय। ब) क्लारेन्ट्रानिलिप्रोएल 18.5 बब 0.4ml/लीटर पानी। स) थियोमथेक्सान 12.8ः लैम्डासाइक्लोथीन 9.5% ZC/0.25 ml/लीटर पानी का स्प्रे करें।

11. **रोग प्रबंधनः** फसल में रोगों द्वारा उत्पादकता पर प्रतिकूल असर पड़ता है। मक्का में लगने वाले प्रमुख रोग और उनका प्रबंधन निम्नलिखित है–

a) टर्सीकम लीफ ब्लाईटः 8 से 10 दिनों की अन्तराल पर जिनेबध्मानेब का 2 ग्रा./लीटर पानी की दर से छिड़काव करना चाहिए।

b) मेडिस लीफ ब्लाईटः डाइथेन एम. 45 का 2 ग्रा./लीटर पानी की दर से 15 दिन के अन्तराल पर तीन बार छिड़काव करना चाहिए।

c) बैंडेड लीफ एवं शीथ ब्लाईटः पौधे के निचले भाग के 2 से 3 पत्तों को शीथ सहित निकाल कर फेंक देना चाहिए

तथा पीट आधारित स्युडोमोनास फ्लोरीसेंस संयोजन 16 ग्रा./कि.ग्रा. बीज की दर से बीज उपचार करना चाहिए या राइजोलैक्स 50 डब्ल्यू पी 10 ग्रा./10 लीटर पानी की दर से पर्णीय छिड़काव करना चाहिए।

d) जीवाण्विक तना सडन 10 किलोग्राम ब्लीचिंग पाउडर प्रति हेक्टेयर का इस्तेमाल करना आवश्यक है।

12. **अवांछनीय पौधों को निकालना तथा पौध सघनता को कम करना:** अवांछनीय पौधें जैसे भिन्न पौधें, रोगग्रस्त पौधें, अतिरिक्त पौधें इत्यादि को कम से कम तीन बार निकालना जरूरी होता है। 1. शुरूआती दौर में अर्थात् बुवाई के 12 से 15 दिन पश्चात अलग से दिखने वाले पौधों तथा साथ लगे कई पौधों को हटा देना चाहिए तथा एक पौधें से दूसरे पौधें के बीच 20 से 25 से. मी. दूरी रखी जानी चाहिए ताकि प्रत्येक पौधे को वृद्धि एवं विकास के समान अवसर मिल सकें। 2. पौधे के घुटने तक की ऊँचाई की अवस्था में 3. जब फूल निकल रहे हों अर्थात् पुष्पन अवस्था से पहले

13 **नरमंजरी निकालना:** हाईब्रिड बीज बनाने के लिए नर जनक के पराग, (पोलेन) द्वारा मादा जनक के सिल्क का परागित होना जरूरी है। यदि मादा जनक पौधों की टेसल से निकला पराग उसी जनक पौधों के सिल्क को परागित करता है तो हाईब्रिड बीज नही बनता है। अतः खेत में दो जनकों में से मादा जनक की टेसल निकाल देना आवश्यक है तभी इस पौधें का सिल्क दूसरे के पराग से परागित होगा और संकर बीज बनेगा। जब मादा पौधों के पर्णच्छेद से बिल्कुल बाहर निकल आती है, परन्तु परागकोष से पराग झरना (एंथेसिस) प्रारम्भ नही हुआ होता, उस समय नर मंजरी निकालने का कार्य प्रारम्भ करना चाहिए। हटाए गए नर मंजरो को एकत्रित करके पशुओं के पोषक चारे के रूप् में उपयोग किया जाना चाहिए।

14. **भुट्टों की तुड़ाई:** मादा की अपेक्षा नर जनकों के भुट्टों की तुड़ाई पहले की जानी चाहिए और इन्हें अलग रखना चाहिए। मादा जनक के भुट्टें से प्राप्त बीज संकर बीज होता है। तोड़े गए भुट्टे को इक्ट्ठा करने के बजाय फैला देना चाहिए।

15. **शैलिंग (दाना निकालना):** किसी प्रकार के यांत्रिक मिलावट से बचने के लिए नर की बजाय मादा जनको (पैरेंट) की शेलिंग का कार्य पहले किया जाना चाहिए। इसे मानव द्वारा या बिजली चालित मेज शेलर द्वारा किया जा सकता है। बीज में अधिक नमी रहने पर शेलिंग नहीं करना चाहिए क्योकि इससे बीज तथा भ्रूण को चोट पहुँचने का खतरा रहता हैं। भडारण के समय काफी नुकसान हो सकता है।

16 **भंडारण तथा विपणन:** बीजों को सुखाने का कार्य तब तक जारी रखना चाहिए जब तक की बीज में नमी का अंश 8 प्रतिशत तक न हो जाए। इसके बाद बीज को वायरूध जूट के बोरो में रखना चाहिए। बीजों का ठंडे व शुष्क स्थान पर भंडारित करना चाहिए तथा कोल्ड स्टोरेज को प्राथमिकता देनी चाहिए। खराब भंडारण के स्थिति में दानों में शक्ति (विगर) की कमी तथा कम अंकुरण की संभावनाएं रहती है।

छत्तीसगढ़ में बेबी कॉर्न की खेती की संभावनायें

अखिलेश कुमार लकड़ा, दिनेश कुमार ठाकुर, अमित कुमार सिन्हा एवं संतोश कुमार सिन्हा
राजमोहिनी देवी कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र, अम्बिकापुर (छत्तीसगढ़)
*संवादी लेखक का ई–मेलः santoshksingha@yahoo.co.in

बेबी कॉर्न एक प्रकार का अनिशेचित भुट्टा है जो सिल्क की 1–3 से.मी. लम्बाई वाली अवस्था तथा सिल्क आने के 1–3 दिन के अन्दर मौसम के अनुसार पौधे से तोड़ लिया जाता है। अच्छे बेबी कॉर्न की लम्बाई 6–10 से.मी. तथा व्यास 1–1.5 से.मी. होती है जिसका रंग हल्का पीला होता है। वर्षा भर में बेबी कॉर्न की 3 से 4 फसलें ली जा सकती है। इसका उत्पादन विश्व के कई देशों में किया जाता है। बेबी कॉर्न की तुड़ाई के बाद बचा हुआ भाग पशुओं के भोजन के रूप मे उपयोग लाया जाता है। बेबी कॉर्न के अत्यधिक पौष्टिक महत्व होने के कारण इसकी मार्केटिंग हेतु ज्यादा समस्या नहीं होती है, इसमें प्रचुर मात्रा में फॉस्फोरस पाया जाता है, इसके अलावा प्रोटीन, कैल्शियम, लोहा, कार्बोहाइड्रेट व विटामिन आदि भी उपलब्ध होते है।

बेबी कॉर्न से फायदे :–

1. किसानों को रोजगार प्रदान करता है।
2. कम अवधि का होने के कारण फसल विविधिकरण हेतु उपयोगी होता है।
3. कम समय में अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।
4. बेबी कॉर्न की तुड़ाई के बाद बचे हरे डंठल को पशु आहार के रूप में उपयोग किया जा सकता है।
5. इन्टरक्रॉपिंग के द्वारा अधिक आय प्राप्त की जा सकती है।
6. बेबी कॉर्न से अनेकों व्यंजन जैसे– सब्जियां, पकोड़ा, भुजिया, खीर, सलाद, आचार, कैंडी, जैम, मुरब्बा इत्यादि बनाया जा सकते है।

बेबी कॉर्न की उत्पादन तकनीक :–

बेबी कॉर्न की उत्पादन तकनीक सामान्य मक्के की ही तरह होता है, लेकिन इनके उत्पादन में कुछ विभिन्तायें भी है, जो निम्न है :–

1. कम समय में तैयार होने वाले एकल क्रोस संकर मक्का की किस्मों का चयन करना।
2. पौधे की संख्या का अधिक होना।
3. नर मंजरी को हटाना।
4. सिल्क आने के 1–3 दिन के अन्दर बेबी कॉर्न की तुड़ाई करना।

भूमि का चुनाव :–

बेबी कॉर्न की अधिकतम पैदावार के लिए अच्छी जल निकास वाली बलुई दोमट मृदा उत्तम होता है। सामान्यतः बेबी कॉर्न की खेती सभी प्रकार की मृदा, बलुई मृदा से चिकनी मृदा तक सफलतापूर्वक की जा सकती है।

हल्की मिट्टी वर्षाधीन फसल तथा भारी मिट्टी सिंचित फसल के लिए अच्छा होती हैं। खेतों मे जल भराव से फसल को बहुत नुकसान होता है, इसलिये खेतों में वायु का संचार व पानी का उचित जल निकास अत्यंत जरुरी है। भूमि में लवणता एवं क्षारीयता की स्थिति नहीं होना चाहिए एवं पी. एच. मान 6.0 से 7.0 के बीच होना चाहिए।

भूमि की तैयारी :–

बेबी कॉर्न की फसल खरीफ, रबी एवं जायद तीनों ही मौसम में ली जा सकती है। अतएव मौसम के अनुसार भूमि की तैयारी अलग–अलग तरह से की जाती है। खेत को एक बार मिटटी पलटने वाले हल से जुताई करने के बाद 2 से 3 बार कल्टीवेटर से आड़ी– खड़ी जुताई करके भूमि को भुरभुरी कर पाटा चलाकर भूमि को समतल करके बुवाई करना चाहिए जिससे अंकुरण अच्छा होता है।

उपयुक्त प्रजाति का चुनाव :–

बेबी कॉर्न की खेती हेतु मध्यम उंचाई की कम अवधि में पकने वाली प्रजाति एवं एकल क्रोस संकर का चयन करना आवश्यक होता है, इसकी एक प्रजाति एच.एम. 4 है, जिसमे सभी लक्षण मौजूद है। निजी कंपनियों द्वारा विकसित प्रमाणित बीजों का भी उपयोग कर अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

बुवाई का समय :–

बेबी कॉर्न की बुवाई तीनों सीजन (मौसम) में की जा सकती है। मुख्यतः इसकी बुवाई जुलाई माह के प्रथम सप्ताह में करना उपयुक्त होता है इसके साथ साथ रबी मे नवम्बर माह के प्रथम सप्ताह में और जायद में जनवरी माह के अंतिम सप्ताह पर करनी चाहिए। खेतों की अच्छी तरह से तैयारी के बाद ही बीजों की बुवाई करना उपयुक्त होता है। बेबी कॉर्न की बाजार मे मांग को ध्यान में रखते हुए बुवाई करने से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

बेबी कॉर्न की बुवाई का तरीका :–

बेबी कॉर्न की बुवाई भी सामान्य मक्के की ही तरह की जाती है, जिसके अंतर्गत कतार से कतार की दूरी 50–60 से.मी. और पौधे से पौधे की दूरी 10 से.मी. रखी जाती है।

बीज की मात्रा एवं बीजोपचार :–

बुवाई पूर्व अच्छी प्रजाति के बीजों का चयन कर उसे उपचारित करना चाहिए। जिससे बीज और मिटटी से होने वाली बीमारी से बचा जा सकता है। बीज बुवाई हेतु प्रति एकड़ 10 किलो ग्राम बीज की आवश्यकता होती है। इसके बीजोपचार हेतु बुवाई से पूर्व 1 किलो ग्राम बीज में 01 ग्राम बाविस्टीन को अच्छे से मिला कर बुवाई करनी चाहिए।

बेबी कॉर्न मे रासायनिक प्रबंधन :–

किसी भी फसल के बुवाई पूर्व मृदा परिक्षण करवा कर उसमें उपस्थित पोषक तत्वों की जानकारी प्राप्त करने के पश्चात् ही खेतों में उर्वरकों का उपयोग करना चाहिए। सामान्यतः 120:60:40:10 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर के हिसाब से एन.पी.के. और जिंक का उपयोग करना चाहिए। इसके साथ साथ अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद (FYM) 8–12 टन प्रति हेक्टेयर की दर से खेतों में डालनी चाहिए। जिससे मृदा की उर्वरता बनी रहेगी और अच्छी उपज भी प्राप्त होगी। फॉस्फोरस, पोटाश और जिंक की पूरी मात्रा और नाइट्रोजन की 20 प्रतिशत मात्रा बेबी कॉर्न की बुवाई के समय प्रयोग करनी चाहिए। नाइट्रोजन की बाकि बची मात्रा को 4 पत्तियों की अवस्था, 8 पत्तियों की अवस्था, नर मंजरी तोड़ने की अवस्था से पहले और नर मंजरी तोड़ने के बाद फसलो को देनी चाहिए।

शाक (खरपतवार) प्रबंधन :–

बेबी कॉर्न में शाकों का प्रबंधन अधिक उपज प्राप्त करने हेतु अत्यंत जरुरी है। इसके लिए बुवाई के तुरंत बाद एवं बीज के अंकुरण के पूर्व शाकनाशी एट्राजिन 400–600 ग्रा. प्रति एकड़ की दर से 200–250 लीटर पानी के साथ घोल बनाकर स्प्रे करने से ही अधिकतर शाक समाप्त हो जाते है, इसके बाद 1–2 बार गुड़ाई कर देने पर शेष बचे शाक समाप्त हो जाते है।

जल प्रबंधन :–

बेबी कॉर्न की फसल मे खरीफ के मौसम में सामान्यतः सिंचाई की जरुरत नहीं पड़ती है किन्तु रबी व जायद में आवश्यकता अनुसार सिंचाई करनी पड़ती है। इसकी पहली सिंचाई युवा पौध अवस्था, दूसरी सिंचाई फसल के घुटने की ऊचाई की अवस्था, तीसरी नर मंजरी आने से पहले तथा तुड़ाई के ठीक पहले दी जाती है।

बेबी कॉर्न के साथ इंटरक्रॉपिंग लेना :–

बेबी कॉर्न के साथ इंटरक्रॉप के रूप में लिए जाने वाली फसल से बेबी कॉर्न के उपज पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है बल्कि इंटरक्रॉपिंग लेने से दुसरी फसल से प्राप्त उपज अतिरिक्त आय होती है। यदि इंटरक्रॉपिंग में दलहनी फसल ली जाये तो मृदा की उर्वराशक्ति बढने के साथ–साथ भूमि की भौतिक दशा मे भी सुधार होता है। इंटरक्रॉपिंग के रूप में खरीफ में बेबी कॉर्न के साथ लोबिया, कुल्थी, मूंग और उड़द ली जा सकती है। रबी में आलू, मटर, प्याज, लहसुन, पालक, मैथी, फूलगोभी, मूली, गाजर, ब्रोकली इत्यादि फसलें बेबी कॉर्न के साथ इंटरक्रॉपिंग के द्वारा ले सकते है।

कीट प्रबंधन :–

फॉल आमीवर्म अमेरिका में पाया जाने वाला बहुत की खतरनाक कीट है, इसे अमेरिकन कीट भी कहते है। यदि इसे लार्वा अवस्था मे नियंत्रण नहीं किया गया तो यह कीट माहमारी की तरह फैल कर मक्का को नुकसान पहुचाता है। जलवाऊ में परिवर्तन (गर्म और आद्र तापमान) फसलों को इससे हानि पहुचानें हेतु अनुकूल परिस्थितियां हैं। मूलतः यह कीट मक्का के फसल को 4 पत्ती अवस्था, नर मंजरी अवस्था में नुकसान पंहुचा कर भुटटों को कुतर कर खा जाते है। इस कीट का प्रौढ़ अपने परजीवी पौधे की तलाश में लगभग 100 कि.मी. की दूरी भी तय कर जाते है। इसके निदान हेतु एमामेक्टिन बेंजोएट @0.4 ग्रा. प्रति लीटर पानी के साथ घोल बना कर स्प्रे करना चाहिए, इसके अलावा इस कीट के कंट्रोल हेतु स्पिनोसाड 45SG@0.3ml प्रति ली. पानी के साथ घोल बना कर स्प्रे करें।

फॉल आर्मीवर्म के अलावा बेबी कॉर्न मे लगने वाले कीट में तना छेदक इसका प्रमुख हानिकारक कीट है। इस कीट के प्रबंधन हेतु पौधों के उगने के 10–12 दिन बाद इसके उपरी भाग पर 85% कार्बोरिल (बेटेबल पाउडर) का 2.5 ग्रा. प्रति लीटर पानी में घोल बना कर स्प्रे करना चाहिए।

रोग प्रबंधन :–

बेबी कॉर्न का मुख्य रोग तना सडन, अंगमारी और शीघ्र अंगमारी रोग है। तना सडन रोग अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में बेबी कॉर्न के तने पर जलीय धब्बे बनाते हैं। इसके रोकथाम हेतु 15 ग्राम स्ट्रेपटोसाईक्लीन या फिर 60 ग्राम एग्रीमाईसिन प्रति हे. की दर से अवश्यक पानी मिलाकर स्प्रे करना चाहिए।

अंगमारी रोगः यह रोग फफूंद के द्वारा होता है, और पौधे के निचली पत्तियां से शुरु होकर ऊपर की पत्तियों में आ जाता है, जिससे पूरी पत्तियां सुख जाती हैं। इस रोग के कारण पत्तियों पर लम्बे दीर्घ वृत्ताकर अथवा नाव के आकर के धब्बे बनते है, जो धूसर हरे रंग से लेकर भूरे रंग का होतें है। इस रोग के रोकथाम हेतु बुवाई से पहले कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज के हिसाब से बीजोपचार करें।

नर मंजरी को हटाना :–

बेबी कॉर्न में नर मंजरी हटाने का मुख्य कारण उसकी गुणवत्ता को बने रखना होता है। नर मंजरी के पत्ती से निकलना शुरु होते इसे तुरंत निकल देना चाहिए और इस प्रक्रिया को करते समय ध्यान देना है कि कही भूल से भी मक्के की पत्ती न टूट जाये नहीं तो इसका प्रभाव सीधे उपज पर पड़ता है। इस निकले हुए नर मंजरी को पशुओं के आहार हेतु उपयोग किया जा सकता है।

बेबी कॉर्न की तुड़ाई :–

बेबी कॉर्न की तुड़ाई खरीफ में रोज की जा सकता है एवं रबी में एक दिन के अंतर पर करनी चाहिए। इसकी तुड़ाई करने में ध्यान देने वाली बात यह है कि मक्का में सिल्क निकलने के 2 से 4 दिन के अन्दर तुड़ाई पूरी कर लेनी चाहिए। बेबी कॉर्न को तोड़ते समय उसके ऊपर के पत्तियों को नहीं हटाना चाहिए जिससे इसको जल्दी खराब होने से बचाया जा सकता है।

बाजार हेतु तैयार बेबी कार्न

उत्पादन :–

बेबी कॉर्न से प्राप्त आय का उसके प्रजाति और मौसम इन दोनों पर निर्भर करती है। बेबी कॉर्न (छिलका निकाल

के) की एकल फसल से लगभग एक सीजन में 5–8 क्विंटल प्रति एकड़ उपज प्राप्त की जा सकती है। इसके साथ – साथ लगभग 80–100 क्विंटल प्रति एकड़ हरा चारा भी प्राप्त होता है। इससे प्राप्त होने वाले सिल्क, इसका छिलका, तुड़ाई उपरांत बचा हुआ हरा पौधा इत्यादि जिन्हें पशु आहार के रूप में उपयोग किया जाता है।

तुड़ाई उपरांत प्रबंधन :–

बेबी कॉर्न की तुड़ाई करने के बाद इसे मार्केट में ले जाने हेतु प्लास्टिक बैग या थैले का उपयोग करना चाहिए।

सरगुजा जिले में बेबी कॉर्न की खेती की अपार संभावनाएं है। बेबी कॉर्न सरगुजा जिले में ही नहीं बल्कि छत्तीसगढ़ राज्य के अन्य जिलें जैसे – रायपुर, दुर्ग, जगदलपुर, कोरबा, कांकेर, धमतरी, महासमुंद, कोरिया, जषपुर, राजनांदगांव इत्यादि जिलों में भी लोगों के बीच अधिक पसंद किया जा रहा है एवं कुछ जिलों में इसकी खेती व्यापक एवं व्यावसायिक रूप से की जाने लगी है।

सरगुजा जिलें में स्थित राजमोहिनी देवी कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केंद्र, अम्बिकापुर में अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना के अंतर्गत अनुवांशिकी व प्रजनन विभाग एवं सस्य विज्ञान विभाग के द्वारा विगत वर्षों से अनुसंधान कार्य किय जा रहे है। जिसमें बेबी कॉर्न पर भी अनुसंधान कार्य किया जा रहा है।

विगत वर्षो के अनुसंधान के अनुसार, राजमोहिनी देवी कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र, अजिरमा अम्बिकापुर के अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना मक्का के अन्तर्गत सस्य विज्ञान विभाग में बेबीकार्न (सेन्जेन्टा–5414) पे अनुसंधान हुआ जिसमें पाया गया की 125 प्रतिशत RDF और 05 टन गोबर के खाद के साथ जुलाई माह के प्रथम सप्ताह, द्वितीय सप्ताह और तृतीय सप्ताह में बेबीकार्न की बुआई की जाए तो बहुत ही अच्छा उपज प्राप्त किया जा सकता है। बेबीकार्न की सेन्जेन्टा–5414 प्रजाति उतरी पहाड़ी सरगुजा हेतु बहुत ही अच्छी प्रजाति है। इस प्रजाति के द्वारा हमारे यहॉ 2045 किग्रा/हेक्टेयर उपज प्राप्त हुआ। इसके साथ अन्तर्वतीय फसल के रूप में मूली ली गयी थी।

इसके साथ–साथ उतेरा फसल के रूप में कुल्थी भी ली गई जिसको बेबीकॉर्न के तुड़ाई के प्रथम सप्ताह में फसल के दोनो पंक्ति के दोनो ओर लगाया गया। जिसकी उपज बहुत अच्छी रहा। इसके साथ–साथ यह फसल भूमि की उर्वरता बढ़ाने एवं किसानो की आय हेतु एवं दलहन की आवश्यकता की पूर्ति हेतु बहुत अच्छा है।

बेबी कॉर्न की मार्केटिंग :–

बेबी कॉर्न की तुड़ाई के बाद संसाधन इकाई या फिर मंडी में तुरंत पंहुचा देनी चाहिए, बेबी कॉर्न की बिक्री मुख्यतः सरगुजा के लोकल बाजार के साथ–साथ होटल, रेस्टोरेंट आदि जगहों पर की जाती है इसके अलावा छत्तीसगढ़ के कई अन्य बड़े शहर जैसे– रायपुर, बिलासपुर, दुर्ग, भिलाई इत्यादि शहरों के मंडियों मे दी जाती है।

बेबी कॉर्न की आय :–

बेबी कॉर्न की खेती में लगने वाली खर्च लगभग 9,000–10,000 रूपए है। वर्ष भर मे लगभग 2–4 बेबी कॉर्न की फसल लिया जा सकता है। हरे चारे के साथ प्राप्त आय लगभग 37,000–40,000 रूपए प्रति एकड़ होती है। यदि इस आय मे से बेबी कॉर्न की खेती में लगे खर्च जो लगभग 10,000 रूपए को निकाल दिया जय तो बचे शेष शुद्ध आय लगभग 30,000 रूपए होती है इस प्रकार एक साल मे प्राप्त होने वाली आय लगभग 90,000– 1,20,000 रुपए होती है, इसके साथ–साथ यदि इंटर क्रोप्पिंग ली गई है तो उस फसल से प्राप्त आय शुद्ध फसल से प्राप्त आय के अतिरिक्त होता है।

AgriApp

पश्चिम बंगाल में मक्का की वर्तमान स्थिति और भविष्य की संभावनाएँ

सरबनी देबनाथ, सोनाली विश्वास एवं संजोग छेत्री
बिधान चन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, मोहनपुर, नदिया, (पश्चिम बंगाल)
*संवादी लेखक का ई–मेलः srananidebenath72@gmail.com

परिचय

पश्चिम बंगाल प्रमुख रबी मक्का उगाने वाले राज्यों में से एक है और यह भारत के कुल रबी मक्का उत्पादन का 5.3% योगदान देता है। पश्चिम बंगाल का भौगोलिक क्षेत्र 88752 वर्ग किमी है जिसमें कुल खेती योग्य क्षेत्र लगभग 5700848 हेक्टेयर है। शुद्ध फसली क्षेत्र की 62% भूमि सिंचाई अंतर्गत है। चावल प्रधान भोजन है और इस राज्य में मुख्य फसल भी है। खरीफ मौसम के दौरान अनाज फसलों के अंतर्गत आने वाला अधिकांश क्षेत्र धान से आच्छादित हैं। धान की पानी की आवश्यकता अन्य अनाज फसलों की तुलना में बहुत अधिक है। इसलिए इस राज्य के अधिकांश चावल उत्पादक अपनी लागत को कम करने के लिए वर्षा जल के साथ खरीफ के मौसम में धान उगाना पसंद करते हैं लेकिन रबी के मौसम में धान को सिंचाई के पानी के साथ उगाया जाता है। खरीफ मौसम के दौरान चावल की फसल का क्षेत्रफल लगभग 4008662 हेक्टेयर है और रबी के दौरान 1290020 हेक्टेयर हैं इस राज्य में उगाई जाने वाली अन्य अनाज की फसलें गेहूँ, मक्का और कुछ अन्य मोटे अनाज हैं। गेहूँ पूरी तरह से रबी मौसम में उगाया जाता है और मक्का को तीन मौसमों में उगाया जाता है– जायदा, खरीफ और रबी। अन्य मौसमों की तुलना में रबी मौसम में मक्का का क्षेत्रफल, उत्पादन और उत्पादकता अधिक है। पश्चिम बंगाल में खरीफ के महीनों के दौरान वर्षा सामान्य से बहुत अधिक होती है। मक्का स्थिर पानी की स्थिति का सामना नहीं कर सकता है और यही कारण है कि इस राज्य में खरीफ के दौरान मक्का का क्षेत्र कम है। खरीफ मक्का यहाँ केवल कुछ ही क्षत्रों में तुलनात्मक रूप से कम वर्षा, भूमि और उन क्षेत्रों में उगाया जाता है जहाँ धान नहीं उगाया जा सकता है। पहले पश्चिम बंगाल में मक्का का क्षेत्र बहुत कम था लेकिन 2010 के बाद से इसका चलन बढ़ता जा रहा है और इस फसल का महत्व भी दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। मक्का के तहत जायदा लगभग 71365 हेक्टेयर, खरीफ के दौरान यह 56185 हेक्टेयर और रबी में 117678 हेक्टेयर है। पश्चिम बंगाल में मक्का मुख्य रूप से फीड (मुर्गी और पशु चारा) के रूप में उपयोग किया जाता है। इस राज्य में पोल्ट्री उद्योग के लिए मक्का के दाने की प्रतिदिन आवश्यकता 2400 टन से अधिक है। इसके अलावा मक्का का उपयोग कुछ हद तक भोजन के रूप में किया जाता है। आम लोगों में बेबी कॉर्न और स्वीट कॉर्न की मांग दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। चारे के रूप में मकई के हरे पौधों की भारी मांग है और भुने हुए हरे कॉब्स का सेवन किया जाता है। इस राज्य में मक्का का एक मजबूत बाजार है और अनाज और बीज अन्य राज्यों से आ रहे हैं ताकि इसकी खुद की मांग को पूरा किया जा सके।

पश्चिम बंगाल में मक्का की वर्तमान स्थिति

पश्चिम बंगाल में 23 जिले हैं जिनमें से 10 मुख्य रूप से मक्का उगाने वाले हैं–उत्तर दिनाजपुर, मालदा, मुर्षिदाबाद, नदिया, अलीपुरद्वार, कूचबिहार, जलपाईगुड़ी, कालिम्पोंग, दार्जीलिंग और पुरुलिया। पश्चिम बंगाल में 20 (1998–99 से 2017–18 तक) वर्षों के लिए मक्का का क्षेत्रफल, उत्पादन और उत्पादन तालिका– 1 में दी गई है। 2000 से पहले राज्य में मक्का का क्षेत्रफल बहुत कम था और केवल 35100 हेक्टेयर था। कुल उत्पादन 69700 टन और उत्पादकता केवल 1986 कि.ग्रा./हेक्टेयर थी। 2000 के बाद से, पश्चिम बंगाल में मक्का का उत्पादन और उत्पादकता बढ़ती प्रवृत्ति में है जो 2008–09 के बाद आज तक उल्लेखनीय रूप से अधिक है। मक्का की खेती के अंतर्गत वर्तमान क्षेत्र में रबी के मौसम के दौरान एक बड़े क्षेत्र में विस्तार किया गया, फिर भी मांग और उत्पादन के बीच बहुत अंतर है।

पश्चिम बंगाल में किसानों के क्षेत्र में मक्का

पश्चिम बंगाल के प्रमुख मक्का उत्पादक जिले

तालिका–1 पिछले 20 वर्षों से पश्चिम बंगाल में मक्का का क्षेत्रफल, उत्पादन और उत्पादकता

साल	क्षेत्र (000, हेक्टेयर)	उत्पादन (000, मीट्रिक टन)	उत्पादकता, (किलो / हेक्टेयर)
1998–99	38.5	121.2	3148
2004–05	46.9	139.6	2977
2008–09	90.8	343.5	3783
2010–11	88.6	352.3	3974
2013–14	143.9	620.5	4312
2014–15	152.45	623.1	4351
2015–16	153.1	662.4	4326
2016–17	163.5	753.3	4608
2017–18	236.2	1343.1	5687

पश्चिम बंगाल में मक्का की बढ़ती मांग के कारण

1. पोल्ट्री क्षेत्र का बढ़ना।
2. संगठित डेयरी और सुअर पालन क्षेत्रों का विकास।
3. इथेनॉल, स्टार्च आदि जैसे विभिन्न उपयोगों की बढ़ती मांग।
4. तेजी से 'हरीकरण जिसके कारण प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों की मांग बढ़ रही है।
5. फसल विविधीकरण को बढ़ावा देने के लिए मक्का की खेती को बढ़ाने के लिए सरकार की नीति।
7. पानी की कम आवश्यकता।
8. तुलनात्मक रूप से कटाई के लिए कम समय की आवश्यकता होती है।

इस राज्य में छः कृषि जलवायु क्षेत्र हैं। गंगीय जलोढ़ क्षेत्र कुल खेती योग्य भूमि का 73.06% है और सबसे उपजाऊ भी है, लेकिन अक्सर ओलावृष्टि, बाढ़, सूखा, नमी के तनाव जैसी प्राकृतिक जटिलताओं का सामना करना पड़ता है। वर्तमान में बोरो क्षेत्र मक्का जैसी फसलों के साथ पर्याप्त सिंचाई का योजना बना रहे हैं। मक्का (>41.8%) के अंतर्गत क्षेत्र की

गिरावट की प्रवृत्ति 2013–14 के अनुसार संभावित मक्का (>7.3%) की उत्पादकता को उलट ओर बढ़ा रही है। सर्वोच्च प्राथमिकता यहाँ खेती क्षेत्र के विस्तार और दालों, तिलहन और मक्का के उत्पादन पर दे रही है।

पश्चिम बंगाल के कृषि उत्पादन परिदृश्य में कुछ मौसम में बदलाव है। अधिकांश वर्ष में मानसून की शुरुआत में 5–8 दिन की देरी होती है। मानसून का व्यवहार इस तरह होता है–वर्षा का असमान वितरण, रुक–रुक कर शुष्क ओलावृष्टि की लंबी अवधि, छोटी में भारी वर्षा मानसून के बाद के हिस्से में अधिक वर्षा और अक्सर मानसून वापसी में देरी।

यहाँ सर्दी भी बदली जाती है–तापमान में वृद्धि, गर्म मौसम, 15 दिनों तक कम सर्दी और बादल छाए रहेंगे।

अनाज की फसलों के उत्पादन में समस्याग्रस्त मौसम की स्थितियों को दूर करने के लिए, मक्का की फसल सबसे अच्छा विकल्प है। विशेष रूप से पूर्वी भारत के साथ–साथ पश्चिम बंगाल में गेहूँ के दाने भरने के दौरान बढ़ते तापमान से बोरो चावल/ रबी चावल की उपज में गिरावट होन पर मक्का ने बेहतर विकल्प के रूप में रास्ता दिखाया है।

बदलते जलवायु परिदृश्य के साथ मक्का एकमात्र उपयुक्त वैकल्पिक फसल है जो क्षेत्र गैर–पारंपरिक क्षेत्रों में निकट भविष्य में मक्का की खेती की ओर स्थानांतरित होने की संभावना है। चावल–मक्का खेती प्रणाली का प्रचलन ज्यादातर पश्चिम बंगाल में 0.5 मीटर से अधिक की एकरेज के साथ है। मध्यम और उपरी भूमि जहाँ गेहूँ, रबी चावल और अन्य सर्दियों की फसलों का निर्वाह प्राप्त होता है, पश्चिम बंगाल में शीतकालीन मक्का द्वारा प्रतिस्थापित किया जा सकता है। वर्तमान में पश्चिम बंगाल प्रमुख रबी मक्का उगाने वाले राज्यों में से एक है।

पश्चिम बंगाल में मक्का क्षेत्र का SWOT विष्लेषण

ताकत

1. बड़ी और बढ़ती मध्य आय जनसंख्या मक्का से प्राप्त भोजन–प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मक्का उपभोग का आधार प्रदान करती है।
2. निर्यात बढ़ाने के लिए आयात करने वाले देशों के मक्का के आसपास के क्षेत्र में रणनीतिक स्थान।
3. सरकार की भूमिका को कम करना। इंफ्रास्ट्रक्चर एंड सर्विस डिलीवरी सेक्टर में निजी प्रतिष्ठानों की भागीदारी का प्रोत्साहित करने के साथ–साथ इनपुट और आउटपुट बाजारों में।

कमजोरी

1. मक्का का प्रमुख भाग असिंचित दशा में उगाया जाता है।
2. सार्वजनिक क्षेत्र की कमजोर बीज आपूर्ति श्रृंखला
3. स्थानीय स्वाद के लिए उच्च प्रदर्षन वाली किस्मों/ संकरों की कमी।
4. प्रौद्योगिकियों का कम अनुकूलन– बीज, सटीक आदानों का अनुप्रयोग, खेत–मशीनीकरण, फसल की कटाई, भंडारण आदि।
5. खराब सड़क नेटवर्क के उच्च लेनदेन लागत।

अवसर

1. ठीक अनाज की स्थिर उपज, मक्का की विविधीकरण के लिए उपयुक्त रूप से शामिल किया जा सकता है।
2. बढ़ती आय गैर–फसल भोजन पर अधिक खर्च करेगी, जिससे पशुधन– आधारित भोजन की मजबूत घरेलू मांग सुनिश्चित होगी।
3. राज्य भर में मध्यान्ह भोजन योजना के अंडा आधारित पोषण संवर्धन का संभावित विस्तार।
4. चीनी आधारित उत्पाद से उच्च फ्रुक्टोज कॉर्न सिरप, क्रमशः उच्च माल्टोज कॉर्न सिरप पेय और बीयर उद्योग द्वारा संभावित रणनीतिक बदलाव से मक्का की मांग को और आगे बढ़ाएगा।
5. बाजार में सुधार के लिए सरकार की अच्छी नीतियां विपणन दक्षता में सहायक होंगी।

आशंका

1. विभिन्न क्षेत्रों में अनियमित जलवायु परिवर्तन से पैदावार कम हो सकती है।

2. नए जैविक और अजैविक तनावों का उद्भव मक्का की पैदावार को कम कर सकता है।
3. पोल्ट्री फीड के लिए बेहतर (पारिश्रमिक) फसल विकल्प।
4. तनाव सहिष्णु किस्म/संकर जो सामान्य परिस्थितियों में बेहतर प्रदर्शन नहीं करते, स्वीकार्य नहीं हो सकते। यह अनुसंधान और विकास में भविष्य के निवेश को हतोत्साहित करेगा।

पश्चिम बंगाल में मक्का के संकर बीज उत्पादन का दृश्य:

पश्चिम बंगाल में पोल्ट्री क्षेत्र के लिए मक्का के दानों के महत्व को देखते हुए CIMMYT- India द्वारा 2004–05 के दौरान पश्चिम बंगाल में क्वालिटी प्रोटीन मक्का (HQPM-1) को कृषि विभाग के सहयोग से शुरू करने की पहल की गई थी। QPM हाइब्रिड का मूल्यांकन तटीय–खारा क्षेत्रों को छोड़कर पश्चिम बंगाल के सभी कृषि–जलवायु क्षेत्रों में अनुकूलित परीक्षण में किया गया था और हाइब्रिड का प्रदर्शन 7t / ha की औसत उपज के साथ उत्कृष्ट था। यह निर्णय लिया गया कि प्रदर्शनों के माध्यम से राज्य में हाइब्रिड को लोकप्रिय बनाया जाना चाहिए और कार्यक्रम खरीफ 2005 से खरीफ 2007 तक जारी रहा। उपज क्षमता और अनाज की गुणवत्ता बहुत अच्छी थी और किसानों ने मक्का की खेती के लिए संकर को अपनाया। बीज की बढ़ती मांग, हाइब्रिड बीज उत्पादन कार्यक्रम को किसान के क्षेत्र में लिया गया। प्रमाणित कार्यक्रम के तहत प्रशिक्षित किसानों, सरकारी उपक्रम संगठनों और निजी बीज उत्पादकों ने HQPM-1 का बीज उत्पादन किया और इसे 2015 तक सफलतापूर्वक जारी रखा । उसके बाद बाजार में उपलब्ध मक्का के अन्य संकरों की तुलना में HQPM-1 की कम उत्पादकता के कारण, किसान इस संकर खेती के लिए अनिच्छुक हैं। वर्तमान में इस क्षेत्र में सार्वजनिक क्षेत्र के कई संकर बीज उत्पादन कार्यक्रम चल रहे हैं और वे हैं– DMRH 1301, DHM 117, COHM 6, COHM 8, VHM 53, VHM 45। इस राज्य में बीज उत्पादन के क्षेत्र में वृद्धि होने जा रही है। इस राज्य के साथ–साथ भारत के पूर्वोत्तर भाग के लिए बीज की मांग को पूरा करने का लक्ष्य है। वर्तमान में इस राज्य के लिए मक्का बीज की कुल आवश्यकता 2500mt है और 2018–19 के दौरान उत्पादन लगभग 545mt था। मक्का के संकर बीज बिहार, आंध्रप्रदेश और अन्य राज्यों से पश्चिम बंगाल में आ रहे हैं। लिहाजा, मक्का के बीज उत्पादन में भारी गुंजाइश है।

निष्कर्ष

मौसम की स्थिति दिन–प्रतिदिन बदल रही है और परिणामस्वरूप कृषि का परिदृश्य भी बदल रहा है। पहले एक क्षेत्र में उगाई जाने वाली फसलें वर्तमान स्थिति में बिल्कुल उपयुक्त नहीं होती हैं। पश्चिम बंगाल में भी चावल और गेहूँ दो महत्वपूर्ण अनाज की फसलें थीं और खरीफ सीजन के दौरान चावल एकमात्र अनाज की फसल थी जो उगाई जाती थी। लोगों की भोजन की आदत भी ऐसी थी – आम लोग चावल को मुख्य भोजन के रूप में लेते थे। लेकिन वर्तमान में अधिक शहरीकरण के साथ आम लोगों की खाद्य आदत बदल रही है। मौसम पूरी तरह से बदल गया है, मानसून और अधिक अनियमित हो गया है। सर्दी कम अवधि के साथ गर्म होती जा रही है। तो, चावल और गेहूँ की उपज पहले की तुलना में कम है। स्वाभाविक रूप से मक्का– एक फसल जो अधिकतापमान से असंवेदनशील है और सभी मौसमों में उगाई जा सकती है और सभी प्रकार की भूमि को पश्चिम बंगाल में महत्व मिल रहा है। मक्का की पानी की आवश्यकता भी चावल की तुलना में बहुत कम है। इस राज्य के किसानों को मक्का की खेती में अधिक लाभ मिल रहा है, इसलिए मक्का का क्षेत्रफल, उत्पादन और उत्पादकता यहां बढ़ रही है। मक्का की खेती के तहत रबी मौसम के क्षेत्र में अचानक वृद्धि की जाती है, वर्तमान में आवश्यकता और उत्पादन के बीच एक बड़ा अंतर है। मक्का के संकर बीज उत्पादन में भी यही तस्वीर सामने आती है। संक्षेप में, पश्चिम बंगाल में मक्का की फसल के लिए बहुत अधिक गुंजाइश है।

हिन्दी की एक निश्चित धारा है, निश्चित संस्कार है। – जैनेन्द्र कुमार

कम समय में अधिक लाभ के लिए करें बेबी कॉर्न की खेती

विशाल त्यागी[1], मोना नगरगड़े[2], कल्याणी कुमारी[1] एवं गोपी किशन[1]
[1]भाकृअनुप– भारतीय बीज विज्ञान संस्थान, मऊ, (उत्तर प्रदेश)
[2]भाकृअनुप– भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, (उत्तर प्रदेश)
*संवादी लेखक का ई–मेलः vish926@gmail.com

परिचयः

आज के समय में खेती किसानो के लिए घाटे का सोदा साबित हो रही है। किसानो को फसल की लागत के अनुसार मुनाफा नही मिल पा रहा है। इस कारण देश के अधिकतर किसानो की कृषि में रूचि लगातार घटती जा रही है। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन के अनुसार देश के लगभग 40 प्रतिशत किसान खेती को छोड़ना चाहते है तथा हमारे युवा खेती में रूचि नही ले रहे हैं। देश की जनसँख्या लगातार बढती जा रही है तथा आने वाले समय में प्रयाप्त खाद्दान आपूर्ति एक प्रमुख समस्या होगी, ऐसे में किसानो का खेती में कम रूचि लेना इस समस्या को और भी अधिक गंभीर बना देगा। इस समस्या से निदान पाने के लिए हमे ऐसी कृषि तकनीक कि आवश्यकता है जो किसानों की आमंदनी सुनिश्चित कर सके। बेबी कॉर्न की खेती इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है।

बेबी कॉर्न एक ऐसी फसल है जिससे किसान कम समय में अधिक मुनाफा ले सकतें है। इस समय इसकी मांग खासकर रेस्टोरेंट तथा होटलों में बहुत तेजी से बढ़ रही है। जिसके कारण इसकी बाजार में कीमत भी अधिक मिलती है। यह दोहरे उद्देश्य की फसल है जिसके बचे हुए भाग को जानवरों के चारे के रूप में उपयोग किया जाता है। और खास बात यह है की इसकी खेती वर्ष भर कर सकते है तथा यह मात्र 60 दिनों में तैयार हो जाती है।

बेबी कॉर्न क्या है ?

बेबी कॉर्न मक्का का एक अनिशेचित भुट्टा है जिसे सिल्क निकलने के 1–3 दिन के अन्दर पोधे से तोड़ लिया जाता है।

पोष्टिक महत्वः बेबी कॉर्न एक पोष्टिक आहार है जिसमे कोलेस्ट्रोल नही पाया जाता तथा अधिक मात्रा में कार्बोहाइड्रेट (3–3.5 प्रतिशत), रेशा (1.5–2 प्रतिशत) तथा प्रोटीन (2.5 प्रतिशत) पायी जाती है। इसमें प्रचुर मात्रा फॉस्फोरस, कैल्शियम तथा मैग्नीशियम भी पाया जाता है।

उपयोगः बेबी कॉर्न का प्रत्येक भाग उपयोग में आता है। इसके भुट्टे को कच्चा या उबालकर दोनों प्रकार से खाया जा सकता है। यह सलाद के रूप में, स्लाइस के रूप में, सूप के रूप में या चोप्स के रूप में खायी जाती है। बेबी कॉर्न को अन्य सब्जियों के साथ मिलाकर भी खाया जा सकता है। रसीलेपन, स्वादिष्टता तथा उच्च पाचनशक्ति के कारण यह एक आदर्श चारे की फसल है। इसको चारे के रूप में किसी भी अवस्था में खिलाया जा सकता है। इसका चारा दुग्ध उत्पादन को बढ़ाने में बहुत उपयोगी है। सूखे पोधे, सुखी पत्तियां तथा छिलका इंधन के रूप में उपयोग किया जाता है।

फसल उत्पादन तकनीक

जलवायुः बेबी कॉर्न की खेती सभी मोसम में की जा सकती है। इसकी अच्छी पैदावार के लिए 600–1000 मिमी. वार्षिक वर्षा की आवश्यकता होती है।

भूमि तथा खेत की तैयारीः इसकी खेती किसी भी प्रकार की भूमि में की जा सकती है। परन्तु वह भूमि जिसका पी. एच मान 5.5–7.0 हो सबसे उपयुक्त होती है। खेत का चयन करते समय यह ध्यान रखना बहुत आवश्यक है कि खेत में जलनिकास की उचित व्यवस्था हो।

पहली जुताई मिट्टी पलट हल से करने के बाद 2–3 जुताई कल्टीवेटर से करनी चाहिए तथा प्रत्येक जुताई के बाद पाटा लगाना चाहिए।

उपयुक्त प्रजातियाँ

वी एल 42, आर सी एम् 1–3, वी एल मक्का, गोल्डन बेबी, आलमंड

बेबी कॉर्न की प्रजातियों में निम्नलिखित गुण होने चाहिए

1. शीघ्र पकने वाली (55 दिन से कम)
2. कम से कम 3 भुट्टे प्रति पोधें हों
3. एक ही समय पर भुट्टा निकले जिससे तुड़ाई में आसानी रहे
4. पीले रंग के पंक्तिबद्ध दाने के रुप में

बीज उपचार: बीज जनित रोगों से बचाव के लिए बुवाई से पहले बीज शोधन अवश्य करना चाहिए। बीज शोधन के लिए बाविस्टिन या कार्बेन्डाजिम की 2 ग्राम मात्रा प्रति किग्रा. बीज दर से प्रयोग करें।

बुवाई का समय: बेबी कॉर्न को दक्षिण भारत में वर्ष भर, उत्तरी भारत में फरवरी से अक्टूबर तक तथा पूर्वी भारत में इसे जनवरी से सितम्बर माह में उगाया जा सकता है।

बीज की मात्रा एवं पौध अंतरण: 20–25 किग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर की बुवाई के लिए प्रयाप्त रहता है। बुवाई कतर में 45 सेमी. की दुरी पर करनी चाहिए तथा पोधे से पोधे की दुरी 15 सेमी. होनी चाहिए। बुवाई मेड पर 3–4 सेमी की गहराई पर करनी चाहिए।

उर्वरक प्रबंधन: उर्वरकों का प्रयोग मिट्टी की जाँच के आधार पर करना चाहिए। अगर मिट्टी की जाँच न कराई गयी हो तो 10–15 टन गोबर की खाद प्रति है. की दर से खेत में डालकर आखरी जुताई के समय अच्छी प्रकार मिट्टी में मिला देना चाहिए। सामान्य तोर पर 150–180 किग्रा. नाइट्रोजन, 60 किग्रा. फॉस्फोरस, 60 किग्रा. पोटाश तथा 25 किग्रा. जिंक प्रति है. के हिसाब से प्रयाप्त रहता है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा, फॉस्फोरस, पोटाश तथा जिंक की पूरी मात्रा को बुवाई के समय बीज से 4–5 सेमी. की गहराई पर डालना चाहिए। नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा को दो बराबर भागों में बाटकर पहला बुवाई के 20–25 दिन बाद तथा शेष मात्रा को बुवाई के 40–45 दिन बाद खेत में डालना चाहिए। जिंक की कमी के लक्षण दखाई देने पर 500 ग्राम जिंक सल्फेट और 2 किग्रा. यूरिया को 100 लीटर पानी में घोलकर (आवश्यकतानुसार इसी अनुपात में बनाकर) एक–एक सप्ताह बाद 2–3 बार लगातार छड़काव करें।

सिचाई: इस फसल में जल प्रबंधन का विशेष महत्व है। प्रथम सिचाई बुवाई के 20–25 दिन बाद तथा इसके बाद 25–30 दिन के अंतराल पर सिचाई करनी चाहिए। इस बात का विशेष ध्यान रहे की पानी मेड़ों के ऊपर तक नही जाना चाहिए तथा सामान्यतः पानी मेड़ों की 3/4 भाग तक ही पहुचें अन्यथा फसल को हानी हो सकती है। घुटनों की उचाई, सिल्क आने तथा भुटटों तोड़ते समय खेत में प्रयाप्त नमी होनी चाहिए क्योंकि ये फसल की सबसे संवेदनशील अवस्थाएं होती है। ठण्ड के मौसम में फसल को पाले से बचने के लिए खेत में नमी बनाये रखें। किसी भी समय खेत में जल भराव की स्थिति नही होनी चाहिए।

खरपतवार नियंतरण: खेत को खरपतवार रहित बनाने के लिए 2–3 नराई की आवश्यकता होती है, पहली बुवाई के एक माह बाद और दूसरी पहली नराई के 15–20 दिन के अंतराल पर करनी चाहिए। रासायनिक विधि से खरपतवार नियंत्रण करने के लिए एट्राजीन दवा को 0.5 किग्रा/है. की दर से बुवाई के 3–5 दिन के अंदर तथा उसके पश्चात 2–4, डी दवा को 1 किग्रा/है. की दर से 20–25 दिन बाद 500 लीटर पानी में घोल बनाकर छड़काव करना चाहिए।

नर मंजरी को तोडना (डीटेसलिंग): बेबी कॉर्न की गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए नर मंजरी को तोडना एक अनिवार्य प्रक्रिया है। पोधे के सबसे उपरी भाग के नर मंजरी निकलते ही उसे तुरंत हटा देना चाहिए। इसे पंक्तिबद्ध तरीके से करना चाहिए। मक्का में टेसल लगभग 45 वे से 55 वे दिन के बीच निकलते है तथा यह समय प्रजाति पर निर्भर करता है। इस क्रिया में पत्तों को नही हटाना चाहिए क्योंकि इससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया प्रभावित होती है।

प्रमुख कीट एवं प्रबंधन: फसल को कीटों से बचने के लिए बुवाई के समय फोरेट 10 जी. 40 किग्रा. प्रति है. की दर से प्रयोग करें। बेबी कॉर्न की फसल में तना मक्खी तथा गुलाबी तना भेदक एक गंभीर समस्या है। इसकी रोकथाम के लिए बुवाई के 20–25 दिन बाद 2.5 ग्राम कार्बारिल प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिडकाव करें।

प्रमुख रोग एवं प्रबंधन

मृदुल रोमिल आसिता: इस रोग की रोकथाम के लिए कोई भी सिस्टमिक फफुन्दनाशी जैसे मेटालैक्सिल, रोडोमिल 25 डब्लू. पी. का छिड़काव करना चाहिए।

शीथ ब्लाइट: बुवाई के 30–40 दिन बाद फसल पर 10 ग्राम राइजोलेक्स 50 डब्लू. पी. का छिडकाव करने से इस रोग की रोकथाम हो जाती है।

बेबी कॉर्न की तुड़ाई: जब सिल्क 2–3 सेमी निकल जाए उस समय कॉर्न्स को तोड़ना चाहिए। तथा कॉर्न्स को पत्ती सहित सुबह या शाम के समय तोडना चाहिए। तुड़ाई समय से करनी चाहिए अन्यथा कॉर्न देरी से तोड़ने पर कठोर हो जाती है जिससे इनकी बाजार कीमत घट जाती है। इसलिए 2–3 दिन के अंतराल पर तुड़ाई करते रहना चाहिए। इस प्रकार एक फसल से 7–8 तुड़ाई मिल जाती है।

तुड़ाई के बाद प्रबंधन: तुड़ाई के बाद छिलकों को सावधानीपूर्वक छावं वाले तथा हवादार स्थान पर अलग करना चाहिए जिससे कॉर्न को कोई नुकसान ना पहुचे। और इस बात का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है की कॉर्न का ढेर न लगायें।

बाजार में बेचने के लिए बेबी कॉर्न की छोटे छोटे थैलों में पैकिंग करना अच्छा रहता है अधिक समय तक संरक्षित रखने के लिए कांच की बोतल में पैकिंग सबसे अच्छी होती है जिसे केनिंग कहते हैं। इसके लिए 3 प्रतिशत नमक के घोल में 2 प्रतिशत चीनी तथा 0.4 प्रतिशत सिट्रिक एसिड मिलाकर स्टोर कर सकते हैं।

उपज: सही तरीके से उगाई गयी बेबी कॉर्न की फसल से छिलके सहित 55–110 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तथा बिना छिलके 11–20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक उपज प्राप्त हो जाती है। इसके अलावा 250–400 क्विंटल हरा चारा भी मिल जाता है।

भारतीय भाषएँ नदियाँ और हिन्दी महानदी। हिन्दी देश के सबसे बड़े हिस्से में बोली जाने वाली भाषा है। हमें इस भाषा को राष्ट्रभाषा के रुप में स्वीकार करना चाहिए। मैं दावे के साथ यह कह सकता हूँ कि हिन्दी के बिना हमारा काम नही चल सकता।

–रवीन्द्रनाथ टैगोर

मोमी मक्काः एक परिचय

संतोष कुमार[1], एस. बी. सिंह[1], नितीश रंजन प्रकाश[2], यतीश के. आर.[3], चिक्कप्पा जी. के[4], बी. एस. जाट[5], प्रदीप कुमार[5], अभिजीत कुमार दास[5], सुमित कुमार अग्रवाल[5] एवं प्रीति सिंह[6]

[1]क्षेत्रीय मक्का अनुसंधान व् बीज उत्पादन केंद्र (भाकृअनुप–भामअनुस), बेगूसराय, (बिहार) [2]भाकृअनुप– राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रबंध अकादमी, राजेंद्रनगर, हैदराबाद (तेलंगाना) [3]शीत पौधशाला केंद्र (भाकृअनुप–भामअनुस), हैदराबाद (तेलंगाना)

[4]दिल्ली इकाई कार्यालय. (भाकृअनुप–भामअनुस), नई दिल्ली [5]भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसन्धान संस्थान, लुधियाना, (पंजाब)

[6]भाकृअनुप–केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान, शिमला, हिमाचल प्रदेश

*संवादी लेखक का ई–मेलः saan503@gmail.com

भूमिका

मोमी मक्का (*Zea mays L.sinensis* K.), जिसे चिपचिपा मक्का, ग्लूटिनस कॉर्न या वैक्सी कॉर्न भी कहा जाता है, मक्का के नौ उप–प्रकारों में से एक है। मोमी मक्के की खोज सर्वप्रथम दक्षिण–पश्चिमी चीन में हुई और फिर दूसरे एशियाई देशों में इसका विस्तारण हुआ। मोमी मक्के के दाने को काटने के बाद एंडोस्पर्म चमकदार, धुंधला, अपारदर्शी और मोम जैसा दिखाई देता है, इसी कारण इसे मोमी मक्का कहा जाता है। हालांकि, इसमें कोई मोम नहीं होता है। मोमी मक्का के एंडोस्पर्म में एमाइलोपेक्टिन की काफी उच्च मात्रा (लगभग 100%) पायी जाती है और जिसके कारण इसमें उच्च चिपचिपाहट, आसान पाचन और उच्च प्रकाश पारगम्यता के साथ–साथ कई अन्य विशेषताएँ होती है जो इसे उत्कृष्ट बनाती है तथा ये उत्कृष्ट विशेषता मोमी मक्का को फ्रोजेन खाद्य प्रसंस्करण, कागज उद्योग, कपड़ा उद्योग, गोंद उद्योग और पशु खाद्य पदार्थ बनाने वाले उद्योगों में व्यापक रूप से उपयोग में लाये जाने के उपयुक्त बनाती है।

सन् 1909 में, कोलिन्स ने पहली बार मोमी मक्का का विवरण प्रकाशित किया। अमेरिकी पादप प्रजनकों ने लंबे समय तक विभिन्न मक्का प्रजनन कार्यक्रमों में मोमी मक्का के लिए उत्तरदायी वंशाणु की पहचान करने के लिए इसे एक आनुवंशिक चिन्हक के तौर पर इस्तेमाल किया। 1922 में, वेदरवैक ने पाया कि मोमी मक्के के स्टार्च 100% अमाइलोपेक्टिन से बने होते है तथा 1943 में, स्प्रेग ने पाया कि मोमी मक्के के स्टार्च में एमाईलोज अनुपस्थित होता है जबकि सामान्य मक्के की किस्मों में दोनों प्रकार के स्टार्च (एमाइलोपेक्टिन तथा एमाइलोज) पाए जाते हैं। हालाँकि, मोमी मक्का में आवश्यक अमीनो एसिड विशेष रूप से लाइसिन के मात्रा कम होने के कारण इसका पोषण मूल्य सामान्य मक्का की अपेक्षा कम होता है। आम तौर पर, मक्के में लाइसिन की मात्रा मानव और पशुधन पोषण की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए 0.5% (>51 मिलीग्राम प्रति ग्राम प्रोटीन) से अधिक होनी चाहिए लेकिन मोमी मक्का में यह केवल 0.24–0.39% पाया जाता है। हालाँकि, लाइसिन की मात्रा को ओपेक–2 (o2) और ओपेक–2 संशोधक (o2m) वंशाणु के मोमी मक्के के इंब्रेड्स में अंतःक्षेपण एवं चिन्हक सहयोगित चयन के द्वारा बढ़ाया जा सकता है।

आनुवांशिकी

मोमी मक्का में मोमी गुण एक एकल अप्रभावी वॅक्सी वंशाणु (wx) द्वारा संहित होता है। मोमी मक्का में आनुवंशिक शोध सर्वप्रथम मोमी प्रकार के उत्परिवर्ती मक्के के संलक्षणीय तथा अन्य उत्परिवर्ती परिवर्तनों के साथ किया गया एवं 40 से अधिक उत्तरदायी उत्परिवर्ती युग्मकों को मोमी जीन अवस्थिति के लिए पहचाना गया। इनमें से कुछ मोमी उत्परिवर्ती काफी स्थायी हैं जबकि अन्य अस्थिर हैं। स्थिर उत्परिवर्ती का जीन प्रारूप अपरिवर्तित रहता है जबकि अस्थिर उत्परिवर्ती परिवर्तनशील तत्वों के अंतर्वेशन के कारण परिवर्तित होते रहते हैं। ये उत्परिवर्तन pre&mRN। में संबंधन त्रुटियों और प्रोटीन संश्लेषण के दौरान होने वाली त्रुटियों का कारण बनते हैं, ताकि प्रभावी वॅक्सी (Wx) वंशाणु सामान्य रूप से व्यक्त न हो। सर्वप्रथम, कॉलिन्स और केम्पटन ने मोमी अभिलक्षण के लिए उत्तरदायी एक एकल अप्रभावी वंशाणु (wx) को मक्के की नवीं गुणसूत्र की छोटी भुजा पर पहचान की। वॅक्सी (Wx) वंशाणु को पहली बार 1986 में प्रतिरूपित तथा अनुक्रमित किया गया था। सन् 1935 में, इमर्सनक और उनके सहयोगियों ने नवीं गुणसूत्र की लंबी भुजा पर गुणसूत्र बिंदु

से 59 सेंटी मॉर्गन दूर, वॅक्सी (Wx) वंशाणु को प्रतिचित्रित किया।

डीएनए अनुक्रमण के माध्यम से प्रभावी मोमी (Wx) वंशाणु–अवस्थिति की रांरचना निर्धारण के बाद यह पाया गया की इस वंशाणु में 3718 kb कोडिंग अनुक्रम (14 एक्सॉन और 13 इंट्रॉन) होते हैं। प्रारंभिक प्रकूट एक्जॉन–2 और विराम प्रकूट एक्सॉन–14 में स्थित है। वॅक्सी (Wx) वंशाणु ग्रेन्युल–बाउंड स्टार्च सिंथेज–I (GBSS&I) नामक किण्वक को कूटलेखित करता है, जो मक्के के भ्रूणपोष और पराग में एमाइलोज–संश्लेषण को निर्धारित करता है। पिछले अध्ययनों से पता चला है कि ट्रांसपोजेबल एलिमेंट्स (Ac/Ds और En/Spm), विलोपन उत्परिवर्तन और इथाइलमेथेन सल्फोनेट (ईएमएस) उत्परिवर्तन के कारण pre&mRNA में संबंधन और प्रोटीन संश्लेषण के दौरान त्रुटियां होती है, जिसके फलस्वरूप वॅक्सी (Wx) वंशाणु की सक्रियता में कमी आती है। अप्रभावी वंशाणु (wx1) उत्परिवर्ती की ग्रेन्युल–बाउंड स्टार्च सिंथेज–I (GBSS&I, एमाइलोज संश्लेषण के लिए उत्तरदायी) किण्वक की सक्रियता 5–95% तक कम होती है, जिसके कारण भ्रूणपोष और पराग में एमाइलोज की मात्रा काफी कम हो जाती है तथा एमाइलोपेक्टिन की मात्रा बढ़ जाती है।

झांग और उनके सहयोगियों ने सुझाव दिया कि उत्परिवर्तित (wx) वंशाणु की उपस्थिति के कारण अमाइलोज की मात्रा 0 और 5% के बीच होती है। उत्परिवर्तित (wx) वंशाणु की उपस्थिति के अलावा डल (कन) वंशाणु की उपस्थिति से एमाइलोज की मात्रा 5% और 15% के बीच होती है, और जबकि एमाइलोज एक्सटेंडर (म) वंशाणु की उपस्थिति में एमाइलोज की मात्रा 15% से अधिक हो जाती है। इसी वंशाणु का प्रभावी रूप (Wx) सामान्य मक्के के भ्रूणपोष में सामान्य स्टार्च बनाने के लिए उत्तरदायी होता है। जिसके कारण सामान्य मक्के (WxWx) में स्टार्च, अमाइलोज (25%) और एमाइलोपेक्टिन (75%) से बना होता है। उत्परिवर्तित मोमी वंशाणु (wx) सभी अन्य एमाइलोज और एमाइलोपेक्टिन के लिए ज्ञात वंशाणुओं जैसे कि डल (कन), शुगरी–1 (su1) और शुगरी–2 (su2) के साथ प्रबल वंशाणु के रूप में कार्य करता है। जैसे कि उदाहरण के लिए मोमी (wx) वंशाणु, शुगरी–1 (su1) वंशाणु कि मौजूदगी में शर्करा और जल घुलनशील पॉलीसेकेराइड (WSP) की मात्रा को बढ़ा देता है। मोमी (wx) वंशाणु भ्रूणपोष एवं नर युग्मकोद्भिद् (पराग) के साथ–साथ मादा युग्मकोद्भिद् में भी अभिव्यक्त होता है। स्टार्च और प्रोटीन का संचय मक्का के विकासशील भ्रूणपोष में होता है, जिसकी गुणवत्ता वॅक्सी–1 (Wx1) और ओपेक–2 (O2) वंशाणु की सक्रियता पर निर्भर करता है। मक्के के दाने में पाए जाने वाले अमीनो अम्ल की मात्रा और प्रकार (विशेष रूप से आवश्यक अमीनो अम्ल), पोषण गुणवत्ता का एक महत्वपूर्ण संकेतक है। आम तौर पर मनुष्यों को 51 मिलीग्राम लाइसिन प्रति ग्राम प्रोटीन की जरूरत होती है। इसके लिए मक्के के दाने में लाइसिन की मात्रा 0.5% से अधिक होनी चाहिए। पशुधन और कुक्कुटपालन के चारे में में 0.6–0.8% लाइसिन होना चाहिए। मोमी मक्का में उत्कृष्ट स्वाद, बनावट और अन्य विशेष गुण हैं, लेकिन इसका पोषण मूल्य अपेक्षाकृत कम है। चीन के युन्नान प्रांत में मोमी मक्का के 93 नमूनों के सर्वेक्षण में पाया गया कि उनमें 0.24–0.39% लाइसिन पायी जाती है। हालाँकि, ओपेक–2 (o2) और ओपेक–2 संशोधक (o2m) वंशाणुओं के मोमी मक्के के इंब्रेड्स में अंतःक्षेपण एवं चिन्हक सहयोगित चयन के द्वारा लाइसिन की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है। औद्योगिक पैमाने पर मोमी मक्का के उत्पादन के लिए, सामान्य मक्के की तुलना में अतिरिक्त उपायों की आवश्यकता होती है। मोमी मक्का की नई किस्मों को सामान्य मक्के की किस्मों के साथ पार्श्व–संकरण विधि से प्रजनन करना अपेक्षाकृत आसान है, लेकिन उनकी उत्पादकता दंत मक्के की तुलना में लगभग 3 से 10% कम होती है। मोमी वंशाणु के अप्रभावी प्रकार के होने के कारण, पर–परागण को रोकने के लिए मोमी मक्का की बुवाई सामान्य मक्के से कम से कम 200 मीटर तक कि दुरी पर की जाती है।

जैव रासायनिकी

सामान्य मक्के में सामान्यतया 75% अमाइलोपेक्टिन और 25% अमाइलोज होता है जबकि मोमी मक्के में लगभग 100% अमाइलोपेक्टिन होती है। एमिलोपेक्टिन में शाखित–बंधन होता है जबकि एमाइलोज में सीधा–बंधन होता है। एमाइलोपेक्टिन में α-D-(1–4) और α-D-(1–6)–ग्लाइकोशैडीक बंधन की

श्रंखला होती है जो एक शाखा युक्त अणु का निर्माण करती है। एमाइलोज मुख्य रूप से α-D-(1–4)– बद्ध ग्लूकोज अवशेषों के साथ सीधी रेखा में बंधा होता है। मोमी मक्के में केवल एमाइलोपेक्टिन ही पाया जाता है। एमाइलोपेक्टिन ग्लाइकोसिडिक बंधन द्वारा एक साथ रखी गई लंबी शाखानुमा श्रृंखला मोनोसेकेराइड से बना होता है। इस संरचनात्मक जटिलता के कारण मानव शरीर में एमिलोपेक्टिन को ग्लूकोज में परिवर्तित करने मे अधिक समय लगता है, जिसके कारण शरीर को अधिक समय तक उर्जा की आपूर्ति होती है। वॅक्सी (Wx) वंशाणु एक विशिष्ट किण्वक, एनडीपी–ग्लूकोज–स्टार्च ग्लूकोसाइलट्रांसफेरेज का निर्माण करता है। यह विशिष्ट स्टार्च सिंथेज एंजाइम एमाइलोज के जैव–संश्लेषण के लिए जिम्मेदार है। वॅक्सी (Wx) वंशाणु विकासशील भ्रूणपोष में अमाइलोज संश्लेषण के लिए ग्लूकोज अवशेषों के बीच α-D-(1–4) संयोजन को उत्प्रेरित करता है। यह किण्वक एमाइलोप्लास्ट में स्थित होता है और मक्का में स्टार्च–बाउंड प्रोटीन का प्रमुख घटक है। वॅक्सी (wxwxwx) जीन प्रारूप वाले भरूणपोष के स्टार्च में बहुत कम स्टार्च–ग्रैन–बाउंड ग्लूकोसिपछेत्रीांसफेरेज गतिविधि होती है। एमाइलोज और एमाइलोपेक्टिन, आयोडीन के साथ अलग–अलग प्रतिक्रिया देते हैं। मक्का में सामान्यतया एमाइलोज आयोडीन मान (Iodine affinity) 19–20% तथा एमाइलोपेक्टिन आयोडीन मान 1% होता है। सामान्य मक्के की तुलना में मोमी मक्के की आर्द्र पिसाई अपेक्षाकृत आसान मानी जाती है, जो लगभग 100% अमाइलोपेक्टिन से बने स्टार्च की ज्यादा और अवशिष्ट प्रोटीन की कम उत्पादन देता है। मोमी स्टार्च के चिपकने का तापमान सामान्य मक्का की तुलना में लगभग 3°C (5°F) कम होता है। मोमी मक्के के स्टार्च और ग्लूटेन (0.18%–0.22% अवशिष्ट प्रोटीन) का पृथक्करण सामान्य मक्के की अपेक्षा आसान है लेकिन स्टार्च की उपज नियमित मक्के का केवल 90% होता है। अन्य प्रकार के कार्बोहाइड्रेट की तुलना में अमाइलोपेक्टिन का आणविक भार लगभग 100 गुना अधिक होता है। साथ ही इसके उच्च आणविक भार के कारण, एमाइलोपेक्टिन शरीर द्वारा धीरे–धीरे अवशोषित होता है। ये शरीर द्वारा ग्लाइकोजन में परिवर्तित हो जाते हैं जो मांसपेशियों को ऊर्जा प्रदान करते हैं। इसके कारण, मोमी मक्का शरीर के ग्लाइकोजन के स्तर को बहाल करने में मदद करता है।

उपयोग

एमिलोपेक्टिन या मोमी मक्का के स्टार्च से जिलेटिन बनाना सामान्य मक्का के अपेक्षाकृत आसान होता है। मोमी मक्के से चिपचिपा पेस्ट प्राप्त होता है जो आलू या कसावा द्वारा निर्मित स्टार्च के सामान ही होता है। मोमी मक्के द्व ारा प्राप्त स्टार्च में गाढ़ापन की प्रवृति ज्यादा होती है। इन विभिन्न गुणों के कारण मोमी मक्के का विभिन्न प्रकार से उपयोग किया जाता है।

खाद्य उत्पाद

एक शोध रिपोर्ट के अनुसार मोमी मक्का के लिए सामान्य मक्के की तुलना में पशुओं तथा मुर्गिओं में चारा रूपांतरण क्षगता ज्यादा होती है जिससे दुधारू गवेशियों के दुग्ध उत्पादन एवं माखन–वसा में वृद्धि होती है। अतः मोमी मक्के का उपयोग पशुधन, डेयरी और मुर्गी पालन के लिए चारा तैयार करने में भी किया जाता है।

मोमी मक्का के पौष्टिक और स्वादिष्ट होने के कारण इसे उबले हुए भुट्टे के रूप में, मक्के के केक या भुट्टे को सेक कर भी खाने के उपयोग में लाया जाता है। आर्द्र पिसाई के परिणामस्वरूप स्टार्च का उपयोग कई खाद्य उत्पादों में एक प्रगाढक और स्थिरक के रूप में किया जाता है। प्रसंस्कृत मोमी मक्के के स्टार्च का उपयोग विभिन्न खाद्य उत्पादों गें एकरूपता, स्थिरता और बनावट गें सांशोध ान के लिए किया जाता है। मोमी मक्के के स्टार्च की शुद्ध ता और चिपचिपाहट–स्थिरता इसे फलों के रस को गाढ़ा करने में विशेष रूप से उपयुक्त बनाती है। यह प्रसंस्कृत डिब्बाबंद भोजन और डेयरी उत्पादों की चिकनापन बढ़ाने के साथ–साथ जमे हुए खाद्य पदार्थों के पिघलन को रोकने में मदद करता है। मोमी मक्का का स्टार्च सूखने के बाद जल में अधिक घुलनशील होता है. इसीलिए इसके पेस्ट की स्थिरता और स्पष्टता के कारण इसका उपयोग माल्टोडेक्सट्रिन के उत्पादन के लिए भी किया जाता है। मोमी मक्के को ताजे हरे भुट्टे की रूप में भी खाया जाता है।

गोंद उद्योग

मोमी मक्का से निर्मित स्टार्च सामान्य मक्का के स्टार्च से आणविक संरचना एवं चिपचिपाहट की विशेषताओं दोनों में भिन्न होता है। मोमी स्टार्च से बने पेस्ट लंबे और सुसंगत होते हैं, जबकि नियमित मक्का स्टार्च से बने पेस्ट छोटे और भारी होते हैं। मोमी मक्का स्टार्च का उपयोग आमतौर पर लस्सेदार टेप और लिफाफा चिपकने के निर्माण के लिए किया जाता है।

खाद्य/ऊर्जा परिपूरक पाउडर उद्योग

मोमी मक्का स्टार्च के स्वादहीन होने के कारण इसे कार्बोहाइड्रेट पाउडर के भीतर उपयोग करना आसान है। इसे पेय पदार्थों और प्रोटीन युक्त खाद्य पदार्थों के साथ कार्बोहाइड्रेट पाउडर के रूप में त्वरित रूप से सीधे मांसपेशियों में अवशोषित करने के लिए मिलाया जा सकता है। मोमी मक्का का स्टार्च स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद है क्योंकि यह प्रोटीन सप्लीमेंट्स में स्वादहीन और प्राकृतिक स्टार्च उत्पाद है। इसका उपयोग शरीर का वजन कम करने के लिए उपयोग किये जाने वाले कार्बोहाइड्रेट के बेहतर स्रोत के रूप में किया जा सकता है क्योकि यह माल्टोडेक्स्ट्रिन या डेक्सट्रोज की तुलना में कम रक्त परासरण दर और उच्च आणविक भार प्रदान करता है, जिसका अर्थ है कि यह आंतों द्वारा सीधे लगभग दोगुनी देरी से अवशोषित किया जा सकता है। कार्बोहाइड्रेट पाउडर के भीतर मोमी मक्का स्टार्च किसी भी अन्य स्टार्च की तुलना में तेजी से शरीर के भीतर ग्लाइकोजन स्टोर को जीर्णोद्धार करने में मदद करता है। व्यायाम तथा कसरत करने वाले लोगो के द्वारा लिए जाने वाले कार्बोहाइड्रेट पाउडर में मोमी मक्का स्टार्च प्रोटीनों के अवशोषण दर में नाटकीय रूप से मदद करता है। मोमी मक्का स्टार्च प्रोटीन को शरीर में पोषक तत्वों के साथ जल्दी से अवशोषित करने में मदद करता है ताकि मांसपेशियों की व्यायाम के बाद प्रोटीन का तुरंत इस्तेमाल करके ऊर्जा प्रदान किया जा सके। अतः व्यायाम के तुरंत बाद कार्बोहाइड्रेट की आपूर्ति करके मांसपेशियों की रिकवरी के लिए मोमी मक्का का स्टार्च उपयुक्त होता है।

मधुमेह पीड़ितों के लिए खाद्य परिपूरक

धीमी गति से सुपाच्य स्टार्च अधिक तेजी से सुपाच्य स्टार्च की तुलना में खाने के तुरंत बाद बढ़ने वाले प्लाज्मा ग्लूकोज की वृद्धि को रोककर तथा इंसुलिन सांद्रता में वृद्धि होने के कारण शरीर में लंबे समय तक ऊर्जा उपलब्धता बनाये रखता है तथा ग्लूकोज की मात्रा को नियंत्रित रखता है। अन्य प्रकार के कार्बोहाइड्रेट की तुलना में अमाइलोपेक्टिन का आणविक भार लगभग 100 गुना अधिक होता है। साथ ही इसके उच्च आणविक भार के कारण, एमाइलोपेक्टिन शरीर द्वारा अधिक धीरे–धीरे अवशोषित हो जाता है। ये शरीर द्वारा ग्लाइकोजन में परिवर्तित हो जाते हैं जो मांसपेशियों को ऊर्जा प्रदान करते हैं। इसके कारण, मोमी मक्का शरीर के ग्लाइकोजन के स्तर को बहाल करने में मदद करता है, ऊर्जा और धीरज को बढ़ाता है और मधुमेह के स्तर को नियंत्रित रखता है। जिसके कारण मोमी मक्का स्टार्च का उपयोग मधुमेह रोगियों के लिए खाद्य परिपूरक बनाने में किया जाता है।

उन्नत ऊर्जा के स्रोत

मोमी मक्का का सेवन एथलीटों में ऊर्जा के स्तर को बढाने में मदद करता है, एमिलोपैक्टिन का पाचन धीरे–धीरे होता है जिसके कारण यह आसान और प्रभावी भी होता है। एमाइलोपेक्टिन की ग्लाइकोसिडिक संरचनात्मक जटिलता के कारण, एमिलोपेक्टिन को ग्लूकोज बनाने के लिए शरीर में टूटने में अधिक समय लगता है जो शरीर को अधिक टिकाऊ ऊर्जा की आपूर्ति करती है। मोमी मक्के का स्टार्च लंबे समय तक चलने वाली ऊर्जा प्रदान करने के साथ, अधिक धीरे–धीरे पचने वाले कार्बोहाइड्रेट भी एक खिलाड़ियों के सहनशक्ति को बढ़ाने में मदद करते हैं जिससे उन्हें लंबे समय तक और प्रभावी ढंग से अभ्यास करने में मदद मिलती है।

हिन्दी देश की एकता की कड़ी है। – डॉ. जाकिर हुसैन

पोषण सम्बंधित खाद्य सुरक्षा के लिए क्वालिटी प्रोटीन मक्का का महत्व

भूपेंद्र कुमार, कृष्ण कुमार, सी. एम. परिहार, पूजा शर्मा, बृजेश कुमार सिंह, मीनाक्षी, सोनू कुमार, पुष्पेंदर एवं सुजय रक्षित
भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना, (पंजाब)
*संवादी लेखक का ई–मेलः bhupender.iari@gmial.com

कार्बोहाइड्रेट और ऊर्जा का प्रमुख स्रोत होने के अलावा, अन्य अनाज की तरह मक्का भी लोगों के आहार में प्रोटीन का सबसे बड़ा एकल स्रोत है। मनुष्यों के सामाजिक, शारीरिक और मानसिक कल्याण के लिए बेहतर पोषण महत्वपूर्ण है, हालांकि यह उन देशों में एक चुनौती बनी हुई है जहां ज्यादातर समुदाय बड़े पैमाने पर अनाज पर निर्भर हैं। इसने दो मुख्य प्रकार के कुपोषण को जन्म दिया है, प्रोटीन–ऊर्जा कुपोषण (पीईएम) और सूक्ष्म पोषक तत्व। गर्भवती महिलाएं, बुजुर्ग और पांच साल से कम उम्र के बच्चे पीईएम के सबसे कमजोर समूह से हैं। पांच वर्ष से कम आयु के लगभग 146 मिलियन बच्चों में पर्याप्त प्रोटीन की कमी है। पीईएम से बचने के लिए, सभी आवश्यक अमीनो एसिड मानव आहार में मौजूद होने चाहिए। मक्का के सामान्य एंडोस्पर्म में सभी आवश्यक अमीनो एसिड होते हैं, सिवाय लाइसिन और ट्रिप्टोफैन के और इस प्रकार उनके अनुपूरक के बिना पीईएम का मुकाबला करना असंभव हो जाता है। ऊतक विकास के लिए प्रोटीन संश्लेषण में लाइसिन और ट्रिप्टोफैन समान रूप से आवश्यक हैं और शरीर में नियासिन के लिए ट्रिप्टोफैन के रूपांतरण से भी पेलैग्रा की घटनाओं में कमी आती है।

नियासिन की कमी से बचने के लिए ट्रिप्टोफैन आवश्यक है, जिसकी कमी की वजह से इंसान में पेलैग्रा हो सकता है। पेलैग्रा के क्लासिक लक्षण दस्त, जिल्द की सूजन, मनोभ्रंश, और कभी–कभी मौत हैं। कम ल्यूसीन के साथ क्यूपीएम में जीन प्रोटीन का घटा हुआ स्तर (5–27%), जिसके कारण ट्रिप्टोफैन अधिक नियासिन संश्लेषण करता है, इस प्रकार यह पेलैग्रा का मुकाबला करने में मदद करता है और इसके महत्वपूर्ण पोषण की गुणवत्ता को आगे बढ़ाता है। इसके अलावा मानव में लाइसिन की कमी से थकान, खराब एकाग्रता, चिड़चिड़ापन, मतली, लाल आँखें, बालों का झड़ना, एनोरेक्सिया और विकास बाधित होता है। इसलिए मानव आहार में इन दो अमीनो एसिड की पर्याप्त मात्रा इन सभी लक्षणों से बचने के लिए बहुत आवश्यक है। ट्रिप्टोफैन के अनुशंसित दैनिक सेवन के लिए वयस्क को 4 मिलीग्राम/किलोग्राम शरीर के वजन के रूप में और शिशुओं के लिए 8.5 मिलीग्राम/किलोग्राम शरीर के वजन के रूप में सुझाव दिया गया है। मनुष्यों के लिए लाइसिन नौ आवश्यक अमीनो अम्लों में से एक है, इसकी मानव में आवश्यकताएं भिन्न हैं, जैसे शैशवावस्था में ~60/मि.ग्रा/कि.ग्रा./दिन और वयस्कों में ~30/मि.ग्रा/कि.ग्रा./दिन आवश्यकता होती है। क्वालिटी प्रोटीन मक्का (क्यूपीएम) के प्रोटीन की गुणवत्ता दूध के प्रोटीन के 90% के बराबर है।

क्वालिटी प्रोटीन मक्का का आनुवंशिक आधार

क्यूपीएम की आनुवंशिक पृष्ठभूमि को समझना इसके प्रजनन, बीज रखरखाव और स्वीकार्य लाइसिन और ट्रिप्टोफैन सामग्री के साथ अनाज के उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण है। कई मक्का म्यूटेंट हैं जैसे ओ–1, ओ–2, ओ–5, ओ–6, ओ–7, ओ–9–11, ओ–13, ओ–15, ओ–16, ओ–17, एफएल–1, एफएल–2, एफएल–3 और एफएल–4, 'म्यूक्रोनेट' और 'डिफेक्टिव' जो मक्का प्रोटीन के एमिनो एसिड प्रोफाइल को बदलते हैं। 1960 के दशक में बड़ी सफलता मिली, जिसमें मक्के की उन्नत पौष्टिक गुणवत्ता की खोज ओपेक–2 म्यूटेंट के द्वारा की गई थी। ओपेक–2 जीन आनुवांशिक प्रणाली का केंद्रीय घटक है जिसके परिणामस्वरूप मक्का एंडोस्पर्म प्रोटीन में लाइसिन और ट्रिप्टोफैन का उच्च स्तर होता है। नॉन–जीन प्रोटीन की सामग्री को बढ़ाते हुए ओ–2 जीन प्रोटीन 22–केडी अल्फा–जीन्स के स्तर को महत्वपूर्ण रूप से कम कर देता है, जो एंडोस्पर्म में लाइसिन सामग्री को बढ़ाता है। ओपेक–2 मक्का की प्रोटीन गुणवत्ता सामान्य मक्का की

तुलना में 43% अधिक है और कैसिइन प्रोटीन के 90% के बराबर है। ओपेक–2 के समानय ओपेक–16 एलील एंडोस्पर्म में लाइसिन और ट्रिप्टोफैन की मात्रा को बढ़ाता है। हाल ही में, ओ–2 और ओ–16 एलील को वॅक्सी मक्का लाइन में बैकक्रॉस करके, ओ–2ओ–2ओ–16ओ–16 लाइन्स विकसित की गयी जिसमें लाइसिन की मात्रा बढ़ी हुई पाई गई ।

क्यूपीएम बनाम गैर–क्यूपीएम की पोषण गुणवत्ता

सामान्य मक्का प्रोटीन में लाइसिन (<1.3%) और ट्रिप्टोफैन (<0.3%) जैसे दो आवश्यक अमीनो एसिड की कमी है। इसके विपरीत, क्यूपीएम प्रोटीन में लाइसिन (>2.6%) और ट्रिप्टोफैन (>0.6%) की मात्रा लगभग दोगुनी होती है, जो क्यूपीएम के प्रोटीन मूल्य को 90% दूध प्रोटीन (तालिका 1) के बराबर बनाते हैं। डॉ. एस.के. वासल के नेतृत्व में टीम द्वारा तीन दशकों तक व्यवस्थित शोध के माध्यम से क्यूपीएम जननद्रव्य, किस्मों और संकरों की बड़ी संख्या विकसित की गयी, जिन्होंने दुनिया भर में क्यूपीएम मक्का अनुसंधान और खेती में क्रांति ला दी। इस योगदान के बाद, 2000 में वासल और विलेगस को 'विश्व खाद्य पुरस्कार' के रूप में मान्यता दी गई। भारत उन कुछ देशों में से एक है, जिन्होंने व्यवस्थित क्यूपीएम शोध पर ध्यान केंद्रित किया, जिसके परिणामस्वरूप, 1970 में तीन क्यूपीएम कंपोजिट जैसे शक्ति, रतन और प्रोतिना को रिलीज किया गया। उसके बाद 1997 में एक और किस्म आई जिसका नाम 'शक्ति 1' था। बाद में, लगभग एक दर्जन से अधिक क्यूपीएम संकर किस्में जारी की गई (तालिका 2)। हाल के दिनों में, चार नए क्यूपीएम संकर जारी की गई, जैसे आई.सी.ए.आर.–वीपीकेएस द्वारा विवेक क्यूपीएम 9, और आई.सी.ए.आर.–आई.ए.आर.आई., नई दिल्ली एमएएस के माध्यम से पूसा एचएम–4, पूसा एचएम–8 और पूसा एचएम–9, जिसमें ट्रिप्टोफैन और लाइसिन की मात्रा (0.68% से 1.06% और 2.97% से 4.18%) हैं। 2000 के बाद जारी क्यूपीएम हाइब्रिड्स का विवरण तालिका 2 में दिया गया है।

चुनौतियां और आगे के रास्ते

देश में मक्का वॅल्यू चेन के विकास की जबरदस्त संभावना है। पिछले पांच वर्षों में मक्का की खपत 11% की दर से बढ़ी है। आज, क्यूपीएम मक्का 3500 से अधिक उत्पादों का स्रोत है। अकेले हमारे देश में कुल मक्का उत्पादन का 65% हिस्सा मुर्गी पालन, मछली पालन, सुअर पालन और चारा के रूप में पशुधन उद्योगों में होता है, जहां क्यूपीएम की जबरदस्त भूमिका होती है। ये सभी क्षेत्र तेजी से बढ़ रहे हैं इसलिए निकट भविष्य में क्यूपीएम की भारी मांग होगी। इसके अलावा, राष्ट्रीय कृषि विकास योजना, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन और राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम जैसे महत्वपूर्ण नीतिगत निर्णय मक्के के उत्पादन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकते हैं। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013 का उद्देश्य देश के प्रत्येक नागरिक को खाद्य और पोषण सुरक्षा के लिए कानूनी अधिकार सुनिश्चित करना है। यह मक्का अनाज की मांग को बढ़ावा दे सकता है, विशेष रूप से क्यूपीएम के लिए।

तालिका 1. सामान्य मक्का और क्वालिटी प्रोटीन मक्का (क्यूपीएम) में आवश्यक अमीनो एसिड की मात्रा

क्र.	एमिनो एसिड	सामान्य मक्का (मि.ग्रा./ग्रा. नाइट्रोजन)	क्यूपीएम (मि.ग्रा./ग्रा. नाइट्रोजन)
1	लाइसिन	177	256
2	आइसोल्यूसीन	206	193
3	ल्यूसीन	827	507
4	सल्फर एमिनो एसिड	188	188
5	एरोमेटिक एमिनो एसिड	505	502
6	थ्रेओनिने	213	199
7	ट्रिप्टोफैन	35	78
8	वेलिन	292	298

तालिका 2. साल 2000 के बाद से भारत में खेती के लिए जारी सार्वजनिक क्षेत्र के क्यू.पी.एम संकर किस्मों का विवरण

क्र.सं.	किस्में	संकर की प्रकृति	संगठन / केंद्र	रिलीज / अधिसूचना का वर्ष	परिपक्वता	अनुकूलन क्षेत्र	औसत पैदावार (टन / हेक्टेयर)	फसल का मौसम
1	पुसा विवेक क्यू. पी. एम. –9 (ए. पी. क्यू. एच. 9)	एकल संकर	आई.सी.ए.आर. –आई.ए.आर.आई., नई दिल्ली	2017	अति–अगेती	जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड (मैदान) और एन.ई.एच. राज्य, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना और तमिलनाडु	5.9	खरीफ
2	पूसा एच.एम.–4 (ए. क्यू. एच.–4)	एकल संकर	आई.सी.ए.आर. –आई.ए.आर.आई., नई दिल्ली	2017	मध्यम	पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तराखंड (मैदान), उत्तर प्रदेश (पश्चिमी क्षेत्र)	8.6	खरीफ
3	पूसा एच.एम.–8 (ए. क्यू. एच.–8)	एकल संकर	आई.सी.ए.आर. –आई.ए.आर.आई., नई दिल्ली	2017	मध्यम	महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना और तमिलनाडु	6.3	खरीफ
4	पूसा एच.एम. 9 (ए. क्यू. एच.–9)	एकल संकर	आई.सी.ए.आर. –आई.ए.आर.आई., नई दिल्ली	2017	मध्यम	बिहार, झारखण्ड, ओडिशा, उत्तर प्रदेश (पूर्वी क्षेत्र), पश्चिम बंगाल	5.2	खरीफ
5	प्रताप क्यू.पी.एम. हाइब्रिड–1 (ई.एच. क्यू. –16)	एकल संकर	एम.पी.यू.ए. – टी., उदयपुर	2013	मध्यम	राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश और छत्तीशगढ़	5.9	खरीफ
6	एच.क्यू.पी.एम.–4	एकल संकर	एच.ए.यू., हिसार	2010	पछेती	हिमालयी बेल्ट को छोड़कर देश भर में	5.4	खरीफ
7	एच.क्यू.पी.एम.–7	एकल संकर	एच.ए.यू., हिसार	2008	पछेती	कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और महाराष्ट्र	7.2	खरीफ
8	विवेक क्यू.पी.एम. 9 (एफ.क्यू.एच. 4567)	एकल संकर	वी.पी.के.ए.एस., अल्मोड़ा	2008	अतिरिक्त–अर्ली	जम्मू और कश्मीर, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु , कर्नाटक और महाराष्ट्र	5.0	खरीफ
9	एच.क्यू.पी.एम.–5	एकल संकर	एच.ए.यू., हिसार	2007	पछेती	देश भर में	5.8	खरीफ
10	एच.क्यू.पी.एम.–1	एकल संकर	एच.ए.यू., हिसार	2007	पछेती	देश भर में	7.5	खरीफ और रबी
11	शक्तिमान–3	एकल संकर	आरए.यू., ढोली	2006	पछेती	बिहार	9.5	खरीफ और रबी
12	शक्तिमान–4	एकल संकर	आरए.यू., ढोली	2006	पछेती	बिहार	10.0	खरीफ और रबी
13	शक्तिमान –2	एकल संकर	आरए.यू., ढोली	2004	पछेती	बिहार	6.0	खरीफ
14	शक्तिमान–1	त्रि–संकर	आरए.यू., ढोली	2001	पछेती	बिहार	6.8	रबी

क्यूपीएम प्रजनन सबसे अधिक लाभकारी कार्यक्रमों में से एक है क्योंकि इसमें अमीनो एसिड (जैसे लाइसिन और ट्रिप्टोफैन) के स्तर में वृद्धि के कारण सामान्य मक्का की तुलना में बेहतर पोषण मूल्य होता है, हालांकि, इसमें अभी भी बहुत कुछ किए जाने की आवश्यकता है। जैसेकि– जलवायु सुद्वढ़ एकल

विभिन्न क्षेत्रों के लिए क्लाइमेट रिसिलियेंट संकर क्यूपीएम किस्में विकसित करें:

जैसा कि हम समझते हैं कि हाइब्रिड प्रजनन एक सतत प्रक्रिया है। भविष्य के उच्च उपज वाले क्यूपीएम संकरों के विकास के लिए विविध क्यूपीएम जर्मप्लाज्म विकसित करने की आवश्यकता है। मक्के के उत्पादन को बढ़ाने और किसानों की आजीविका और आय में सुधार करने के लिए हमें उन्नत संकर किस्मों की खेती और विकास की आवश्यकता है। अगर हमें क्यूपीएम के तहत ज्यादा क्षेत्र पर कब्जा करना है, तो हमें सामान्य मक्का किस्मों से बेहतर या बराबर क्यूपीएम संकर विकसित करने में सक्षम होना पड़ेगा। भारत में, लगभग 80% मक्का की अभी भी वर्षा आधारित पारिस्थितिकी में खेती की जाती है जो कि अजैविक और जैविक तनाव से ग्रस्त हैं। इसलिए, समृद्ध लाइसिन और ट्रिप्टोफैन की मात्रा के साथ–साथ विभिन्न अजैविक और जैविक तनाव के तहत बेहतर उपज के साथ संकर किस्में विकसित करना क्यूपीएम अभिजनकों के लिए एक बड़ी चुनौती है।

क्यूपीएम प्रजनन योजनाओं में पूरी तरह से एकीकृत मार्कर असिस्टेड सेलेक्शन (एमएएस) और डबल हैप्लोइड्स का प्रयोग:

मक्के के प्रजनन की गति और सटीकता को मार्कर असिस्टेड सेलेक्शन, जीनोमिक चयन और डबल हेल्प्लोइड आदि तकनीकों के उपयोग से बढ़ाया जा सकता है। मक्का का जीनोम अनुक्रम अब उपलब्ध है। मक्का सबसे ज्यादा जीनोमिक संसाधनों वाली फसलों में से एक है। इसलिए इन तकनीकों का उपयोग करके लक्षित प्रजनन कार्यक्रम न केवल अपनी आनुवंशिक पृष्ठभूमि में क्यूपीएम रांकर किस्में विकसित करने में मदद करेगा, बल्कि इसमें अन्य पोषण संबंधी लक्षण संयोजनों को अंतर्मुखी करने के लिए भी उपयोगी हो सकता है।

किसानों के क्षेत्र में बेहतर क्यूपीएम प्रौद्योगिकियों का व्यापक प्रदर्शन:

एक बार उत्पाद उपलब्ध होने के बाद, खेत के बड़े पैमाने पर प्रदर्शन करके किसानों के क्षेत्र में प्रौद्योगिकियों को प्रदर्शित करने की मजबूत आवश्यकता है। यह बड़े पैमाने पर प्रौद्योगिकी को अपनाने में मददगार होगा। क्यूपीएम की खेती के लिए विशिष्ट गाँवों/जिलों की पहचान की जानी चाहिए जो क्यूपीएम की गुणवत्ता संरक्षित करने में सहायक् होगा।

क्यूपीएम उत्पादकता, लाभप्रदता और पर्यावरणीय स्थिरता के लिए सही आदानो का प्रबंधन:

इसके तहत, क्यूपीएम खेती के लिए अत्याधुनिक कृषि तकनीकों को विकसित करने और अच्छी कृषि पद्धतियों के मॉड्यूल को विकसित करने की पहल की आवश्यकता है।

बीज आपूर्ति की मांग:

कम लागत और गुणवत्ता वाले बीज उत्पादन क्यूपीएम संकर मक्का की खेती की अपनाने की दर को बढ़ाने के लिए एक प्रमुख मुद्दा होगा। किसान, निजी, सहकारी और सार्वजनिक क्षेत्र के सहभागी बीज उत्पादन कार्यक्रम को गुणवत्तापूर्ण बीज उपलब्धता के आश्वासन के लिए भविष्य में विकसित करने की आवश्यकता है। इन प्रयासों से बीज उत्पादन को आर्थिक और लाभदायक बनाने में मदद मिलेगी। शुद्ध गुणवत्ता वाले बीजों के उत्पादन के लिए बीज गाँव/जिले की अवधारणा को अपनाया जाना चाहिए।

नीतियां हस्तक्षेप:

नीतियां हस्तक्षेप किसी भी नई तकनीक की सफलता या विफलता में महत्वपूर्ण खंड है। क्यूपीएम अपनाने को मुर्गीपालन और क्यूपीएम आधारित प्रसंस्कृत खाद्य उद्योगों की स्थापना और समर्थन करके बढ़ाया जा सकता है। इसके अलावा, किसानों और किसानों से क्यूपीएम फसल की खरीद की सुनिश्चित कीमत इसकी अभिग्रहणता/स्वीकृति बढ़ाने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। बायो –फोर्टिफाइड उत्पाद होने के नाते, अन्य सामान्य मकई की तुलना में क्यूपीएम अनाज को प्रीमियम मूल्य देने की आवश्यकता है। सरकार को देश भर में स्कूल मिड डे मील योजना में क्यूपीएम उत्पादों को लाने के लिए सोचना चाहिए। इससे देश की कुपोषण समस्या को कम करने में मदद मिलेगी।

मक्का का चारकोल वृन्त सड़न रोग और प्रबंधन (मैक्रोफोमिना फेजोलिना)

सुमित कुमार अग्रवाल, कर्मबीर सिंह हुड्डा, मोहित, धीरेन्द्र सिंह औलख, प्रवीण कुमार बगडिया
रमनदीप कौर, संतोष कुमार एवं दीप मोहन महला
भाकृअनुप– भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना, (पंजाब)
*संवादी लेखक का ई–मेलः sumit.aggarwal009@gmail.com

चारकोल वृन्त सडन रोग दुनिया के शुष्क क्षेत्रों में मक्का की एक व्यापक बीमारी है। यह ज्यादातर तनाव से जुड़ी एक फफूंद बीमारी है, जो कई देशों में प्रचलित है, यह बीमारी कई देशों में आर्थिक नुकसान का कारण बनती है, जैसे भारत, सूडान, संयुक्त राज्य अमेरिका, मैक्सिको, ब्राजील, ऑस्ट्रेलिया, इथोपिया और माली। यह तने के निचले भाग को संक्रमित करता है, और पानी की गति को अवरुद्ध कर सकता है, यह पौधों को शारीरिक रूप से कमजोर करता है। पहला दिखाई देने वाला लक्षण डंठल के निचले भाग पर दिखाई देता है। यह राख मलिनकिरण जैसा दिखता है। जब तने को काटकर देखा जाता है, तो काला पाउडर सवहनी बंडलो और तनो पर दिखाई देता है। यह बीमारी मैक्रोफोमिना फेजोलिना रोगजनक से होती है। यदि संक्रमण द्वितीय जड़ों के उभरने से पहले होता है, तो पौधे मर जाते हैं। शुष्क मौसम, उच्च तापमान (35–38 डिग्रीसेल्सियस) और मिट्टी मे नमी की कमी इत्यादि रोग के लिए महत्वपूर्ण कारक हैं। शीघ्र परिपक्वता वाली किस्में आमतौर पर बीमारी से बच जाती हैं। उच्च स्तर की आनुवंशिक प्रतिरोधकता उपलब्ध नहीं है। उपज और पर्यावरणीय तनाव, विशेष रूप से नमी और तापमान के साथ रोग का मजबूत संबंध, मेजबान प्रतिरोध का मूल्यांकन करने का कार्य करता है।

वितरणः

जम्मू कश्मीर, पश्चिम बंगाल, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक, तमिलनाडु और दिल्ली।

आर्थिक महत्वः

यह रोग दुनिया में आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण है, विशेष रूप से मक्का उगाने वाले क्षेत्रों में जहां फसल जल्दी संक्रमित होने पर व्यापक उपज हानि होती है। अफ्रीका में 70 प्रतिशत तक हानि का आकलन किया गया है। यह रोग विशेष रूप से शुष्क क्षेत्रों में प्रचलित है, जहां मक्का की खेती नियमित रूप से अन्य फसलों के साथ की जाती है।

लक्षणः

यह रोग प्रायः शुष्क क्षेत्रों में प्रचलित है। इस रोग मे भी पोध की परिपक्वता दिखाई देती हैं। प्रभावित पोधा आमतौर पर सूख जाता है। तने की सतह पर छोटे, गोल, काले, पिनहेड जैसे स्क्लेरोटिया दिखाई देते हैं। जब तने को काटकर देखा जाता है, तो काला पाउडर सवहनी बंडलो और तनो पर दिखाई देता है। पुष्पंण के बाद शुषकवस्था (जलकर्मी) उत्पन हो जाना बीमारी का मुख्य कारक है।

चित्रः पेट्री प्लेट की मैक्रोफोमिना फेजोलिना

चित्रः वृद्धि मक्का के डंठल का चारकोल रोट लक्षण

महामारी विज्ञानः (बीमारी से महामारी)

फूलों के बाद की अवधि में पौधों में अधिकतम संक्रमण होता है। पौधों की उच्च आबादी के कारण फूल के बाद के तनाव या नाइट्रोजन उर्वरक या कीट क्षति के भारी अनुप्रयोगों के साथ सूखा, रोग के विकास को बढ़ावा देता है। रोग विशेष रूप से अत्यंत गर्म और शुष्क मौसम मे होता है। निचले तने के अवशेषों पर निर्भर संरचनाओं (माइक्रोस्कोलरोटिया) के रूप में जीवित रहता है जो कटाई के बाद खेत में पड़े रहते है। वैकल्पिक होस्ट भी आगामी मौसम में संक्रमण का कारण बनने वाले इनोकुलम का एक प्रमुख स्रोत हैं। बीज जनित संक्रमण की घटना आमतौर पर कम होती है, जिसमें बीज द्वारा संचरण का सुझाव देने के लिए कोई मजबूत सबूत नहीं होता है।

रोगचक्रः

चारकोल रोट एक मिट्टी जनित बीमारी है। फेजोलिना रोगजनक जो मिट्टी में स्क्लेरोटिया के रूप में पड़ा रहता है, और कई वर्षों तक मिट्टी में रह सकता है। शुष्क और गर्म स्थितियों में कवक मक्का के पौधों की जड़ों को संक्रमित करते हैं और निचले डंठल को आबाद करते हैं, अंततः लक्षण को जन्म देते हैं।

मक्का का रोगरोधी जननद्रव्यः

रुग्न क्षेत्र (sick plot) का मुख्य उद्देश्य खेती उपयोगी पौधों के समान पर्यावरणीय परिस्थितियों में बड़ी मात्रा में

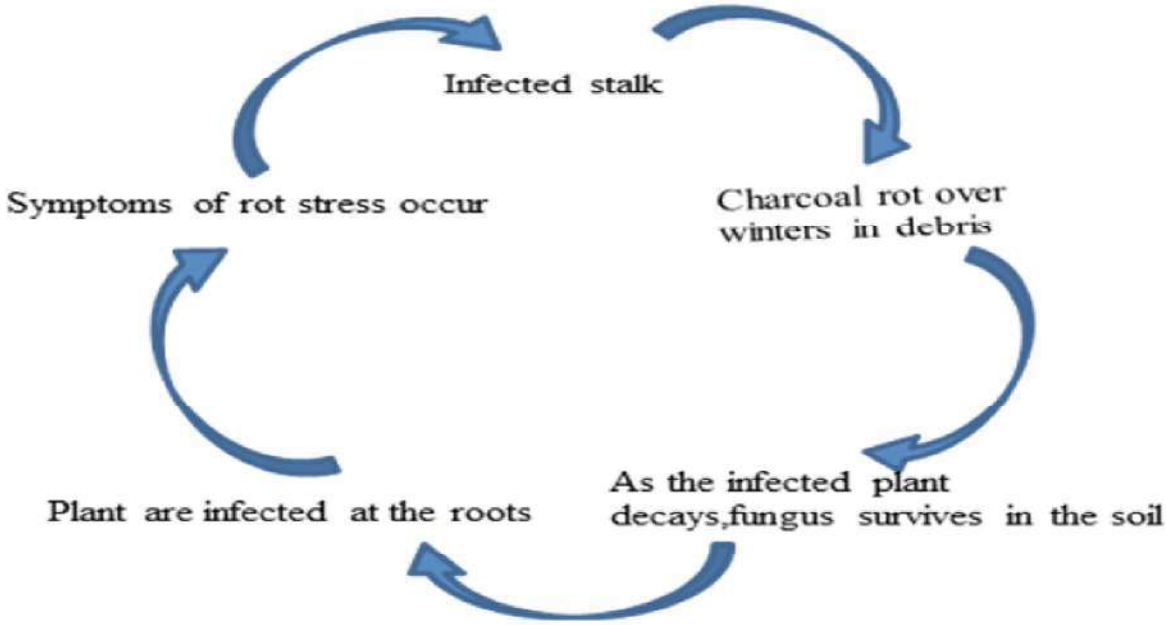

चारकोल वृन्त सडन रोग का रोगचक्र
(मैक्रोफोमिना फेजोलिना)

आनुवंशिक सामग्री की एक साथ जाँच (स्क्रीनिंग) करने में मदद करना है। पत्तेदार कवक के कारण होने वाली बीमारिया जहाँ प्राकृतिक महामारी अप्रत्याशित होती हैं की तुलना में रुग्न क्षेत्र में मिट्टी जनित कवक रोगजनकों के कारण बीमारी होने की संभावना अधिक होती है। देश में चारकोल रोट बीमारी के लिए विभिन्न स्थानों पर हॉट स्पॉट, उस स्थान को क्षेत्र से अलग करके, पिछले कुछ वर्षों से उस स्थान पर मक्का की एकल फसल लेकर, चारकोल रोट बीमारी के इनोकुलम को मिट्टी में मिलाकर मिट्टी को एम. फजिओलीना के कल्चर द्वारा परिशिधित कर तैयार किये जा रहे है।

1. भूमी के कुछ स्थानों पर पिछले वर्ष मक्का की फसल मे एम. फेजोलिना की घटना के निशान देखे गए थे।
2. भूमी में अतिसंवेदनशील खेती की एक ही फसल लगाएं। एक अच्छी पौध आबादी सुनिश्चित करें और सामान्य कृषि संचालन करें।
3. समय के अंत तक, कम से कम 20 प्रतिशत पौधों पर एम. फेजोलिना लक्षण दिखाई देने चाहिए। कटाई और थ्रेसिंग के बाद अवशेष को समान रूप से प्लॉट के चारों ओर बिखेर दें।
4. एम फेजोलिना मिट्टी को ष्बीमारष् बनाने के लिए इनोकुलम के स्तर को बढ़ाने में मदद करता है।
5. बुवाई के 50–60 दिनों के बाद रोग का पता चलता है।

रोगप्रबंधनः

1. गहरी जुताई, साफ दृसफाई और पिछली फसल के अवशेष को मिट्टी से निकालना।
2. फसल चक्र अपनाये।
3. प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग करें (श्रभ्डभ्1701ए श्रभ्6805ए ठपव 9639)।
4. फफूंद नाशकों से उपचारित बीज उपयोग करें ।
5. पुष्पंण समय में जल दबाव से बचा जाए, इससे रोग पनपने में कमी आएगी।

मक्का में कीट प्रतिरोध प्रजनन के लिए जंगली प्रजातियाँ एक मूल्यवान स्रोत

अंजलि जोशी, स्नेहा अधिकारी, स्मृतिश्री साहू एवं नरेंद्र कुमार सिंह
गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर (ऊधमसिंह नगर) उत्तराखंड
संवादी लेखक का ई–मेलः anjali999aj@gmail.com

मक्का दुनिया भर में उगाई जाने वाली एक महत्वपूर्ण फसल है। इसके उत्पादन का अधिकतम हिस्सा पशु आहार, औद्योगिक प्रसंकरण और जैव ईंधन के लिए प्रयोग किया जाता है। 1134 मिलियन टन से अधिक के वार्षिक उत्पादन के साथ, यह गेहूं और चावल को पीछे छोड़ते हुए, दुनिया का सबसे अधिक उत्पादन देने वाला अनाज बन गया है। मक्का, एक C4 पौधा होने के नाते, अन्य अनाजों की तुलना में अधिक उपज क्षमता रखता है, लेकिन विभिन्न फसल विकास चरणों में और विभिन्न मौसमों के दौरान इसे प्रभावित करने वाले जैविक और अजैविक तनाव बुवाई से परिपक्वता तक मक्का की उपज क्षमता की पूर्ण अभिव्यक्ति में गंभीर बाधा उत्पन्न करते हैं। मक्का की फसल को प्रभावित करने वाले हानिकारक कीट, खेत और भंडारण में मक्का को नुक्सान पहुंचाते हैं और यह मक्का को प्रभावित करने वाली आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण जैविक बाधाओं में से एक हैं। अनेकों नियंत्रण उपायों के बावजूद, वैश्विक मक्का उत्पादन का 9.6% अभी भी हानिकारक कीट, स्लग और कृन्तकों (ओर्के, 2006) के प्रकोप से बर्बाद हो जाता है। माथुर (1992) के अनुसार भारत में मक्का की फसल को खेत और भण्डारण में नुक्सान पहुँचाने वाले कीटों की संख्या 250 से अधिक है, लेकिन इनमें से केवल एक दर्जन कीट ही काफी गंभीर हैं और इनके प्रबंधन के लिए नियंत्रण उपायों का उपयोग करने की आवश्यकता है। खेत एवं भंडार में मक्का को हानि पहुँचाने वाले विभिन्न कीटों में पतंग समूह (जिसमें कटवर्म, आर्मीवॉर्म, ईयरवर्म, बोरर्स और अनाज की पतंगे शामिल हैं) दुनिया भर में मक्का के लिए सबसे अधिक हानिकारक है, इसके बाद बीटल समूह (जिसमें रूटवर्म, वायरवर्म्स, ग्रब, अनाज बोरर्स और घुन शामिल हैं) और रोगों (वायरस, माइक्रोप्लाज्म, बैक्टीरिया और कवक) के लिए वाहक के रूप में काम करने वाले कीट (लीफहॉपर्स और एफिड्स) सबसे बड़ी समस्या हैं। भारत में मक्का उत्पादन को सीमित करने वाले प्रमुख कीटों में मक्का तना छेदक, गुलाबी तना छेदक, शूट फ्लाई की दो प्रजातियां, ऐथेरीगोना नुकुई और ऐथेरीगोना सौकाटा, आर्मीवॉर्म, मक्का कोब बोरर और मक्का एफिड शामिल हैं । हाल ही में अमेरिकी मूल का एक विनाशकारी कीट जिसको फॉल आर्मी वर्म के नाम से जाना जाता है, मक्का की फसल में लघु से खतरनाक स्तर तक आर्थिक नुकसान करते हुए पाया गया है।

चित्र 1: मक्का में फॉल आर्मीवर्म के द्वारा की गई क्षति के लक्षण

खेत के साथ साथ कीट अनाज भंडारण में भारी नुक्सान करने के लिए भी जिम्मेदार हैं क्योंकि वे अनाज पर भरण करने के साथ ही, दानो में छेद करके अंकुर नष्ट कर देते हैं। अलग–अलग खाद्यान्न फसलों में फसल कटाई के बाद होने वाले नुकसान में से भंडारण कीट अकेले 2.0 से 4.2 प्रतिशत कुल नुकसान कर देते हैं। घुन, खपरा बीटल, लघु अनाज छेदक और अंगोमस अनाज पतंग गोदामों में मक्का भंडारण पर दुष्प्रभाव डालने वाले प्रमुख कीट हैं। इसलिए

मक्का उत्पादन प्रणालियों में खेत और भंडार में नुकसान करने वाले कीटों का प्रबंधन करना उत्पादन को बनाये रखने का एक महत्वपूर्ण तरीका है। वर्तमान में, खेत और भण्डारण कीटों को नियंत्रित करने के लिए रासायनिक, जैविक, शस्थ और पौधा प्रतिरोध जैसी रणनीतियों का उपयोग किया जा रहा है। इन रणनीतियों में से पौधा प्रतिरोध का उपयोग कीट प्रबंधन का सबसे अच्छा तरीका है। पौधा प्रतिरोध एक पौधे का जैविक तनावों के लिए आनुवंशिक प्रतिरोध है जो उसके आनुवंशिक संरचना द्वारा प्रदान किया जाता है। इसे विकसित करने के लिए पौधा प्रजनन की विभिन्न तकनीकों का उपयोग कर मक्का और इसके संबंधित जंगली प्रजातियों से प्रतिरोधी वंशाणुओं का अंतर्गमन किया जाता है। यह कीट के हमले से होने वाले नुकसान को कम करता है इसलिए, पर्यावरणीय रूप से सुरक्षित होने के साथ–साथ यह छोटे किसानों के लिए सबसे आसान कीट नियंत्रण विधि भी है।

कीट प्रतिरोधी किस्मों को विकसित करने के लिए प्राथमिक आवश्यकता प्रतिरोधी स्रोतों की उपलब्धता है। ये स्रोत कुलीन मक्का लाइनों में दुर्लभ होते हैं क्योंकि पौध पालन और उपज में बढ़ोतरी के लिए किये गए चयन के कारण कीटों के खिलाफ पौधों में उपस्थित रक्षात्मक प्रतिक्रिया कमजोर हो गई है। 9000 साल पहले जंगली प्रजातियों से मक्का का विकास (डॉमेसटीकेशन) हुआ और माइक्रोसैटेलाइटिक जीनोटाइपिंग से यह पुष्टि होती है कि बालसस टीओसिंटे (जीया मेज उपप्रजाति पार्वीग्लूमिस) मक्का का सबसे संभावित पूर्वज है। टीओसिंटे एक जंगली घास है जो स्वाभाविक रूप से मेक्सिको में पाई जाती है। जीनस जीया में वार्षिक प्रजाति जीया लक्जूरिअंस, डिप्लोइड बारहमासी प्रजाति जीया डिप्लोपेरेंनिस, टेट्राप्लॉइड बारहमासी प्रजाति जीया पेरेंनिस और वार्षिक प्रजाति जीया मेज शामिल हैं। जीया मेज में उपप्रजाति मेज, मैक्सीकाना, पार्वीग्लूमिस, निकारागुएंसिस और ह्यूह्यूटेनेनजेनसीस सम्मिलित हैं। ट्रिपसेकम को भी जीया का निकट सम्बन्धी माना जाता है और इसमें जीया के साथ संकरण करने और जीवक्षम संकर उत्पन्न करने की क्षमता होती है। जीनस ट्रिपसैकम में ग्रीष्म मौसम की, नौ, बारहमासी प्रजातियां शामिल हैं और इनमें से एक प्रजाति ट्रिपसेकम डेकटायलॉयड्स या पूर्वी गामाग्रास अक्सर मक्का के साथ अंतरजन्य संकर पैदा करने के लिए इस्तेमाल की जाती है।

जीवन चक्र में बदलाव, पौधपालन और फसल सुधार तकनीकों का उपयोग मक्का में कीट प्रतिरोध को कम करने के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार हैं । जंगली बारहमासी प्रजातियों में प्राकर्तिक तौर पर सबसे अधिक कीट प्रतिरोधक क्षमता पाई जाती है। इसके बाद अवरोही क्रम में जंगली वार्षिक, लैंडरेस और आधुनिक उच्च उपज वाली किस्म आती हैं। उदाहरण के लिए बारहमासी प्रजाति जीया डिप्लोपेरेंनिस वार्षिक जीया मेज उपप्रजाति पार्वीग्लूमिस की तुलना में अधिक कीट प्रतिरोधी पाई गई है। यह मुख्य रूप से इस कारण है कि जीवन चक्र छोटा होने और फसल में सुधार होने के कारण उच्च उपज के लिए मजबूत चयन होता है, परिणामस्वरूप फोटोसिन्थेट का एक बड़ा हिस्सा रक्षा संबंधी मेटाबोलाइट के उत्पादन की बजाय वृद्धि और विकास के लिए चला जाता है, जिससे कीट प्रतिरोधक क्षमता में कमी आती है। पौधपालन की प्रक्रिया ने भी कीट प्रतिरोधी लक्षणों को प्रभावित किया है। पौधपालन के दौरान, टीओसिंटे को खेती और खपत के लिए अनुपयुक्त बनाने वाले लक्षणों को संशोधित कर मक्का का विकास किया गया। यह कई वंशाणुओं में बदलाव के कारण संभव हुआ। विभिन्न वंशाणुओं में से एक वंशाणु टीओसिंटे ग्लूम आर्किटेक्चर 1 में उत्परिवर्तन के कारण मक्का का उपभोग तो आसान हुआ, लेकिन कीट आक्षेप के लिए इसकी संवेदनशीलता भी बढ़ गयी। इस जीन में उत्परिवर्तन के कारण, दानो का सुरक्षात्मक आवरण लुप्त हो गया, जिससे मक्का के दाने बिना आवरण के हो गए। जिस कारण मक्का की कीटों के प्रति संवेदनशीलता भी बढ़ गई। फसल सुधार एक अन्य कारक था जिसने मक्का जीनोटाइप की कीट प्रतिरोधक क्षमता को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आधुनिक पैदावार का उत्पादन दो पैतृक इनब्रेड लाइनों के संकरण के परिणामस्वरूप किया जा रहा है, जो पारंपरिक लैंडरेस की तुलना में अधिक समरूप हैं। जिस कारण इनकी अनुकूलन क्षमता कमजोर होती है अतः यह विशिष्ट पर्यावरणीय परिस्थितियों, जैसे सूखा, जलभराव या कीट दबाव में इष्टतम पैदावार उत्पन्न नहीं कर पाते। साथ ही अधिकांश फसलों में विषाक्त पदार्थों का कम उत्पादन करने के लिए प्रजनन किया गया है। यह विषाक्त पदार्थ कीटों के लिए विकर्षक एवं वृद्धि अवरोधक का कार्य करते हैं और कई बार यह कीट मृत्यु दर को बढाकर पौधे की कीट प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करते

हैं। मक्का, पौधपालन की प्रक्रिया और चयनात्मक प्रजनन के दौरान अपने इन सुरक्षा तंत्रों को खो चुका है ।

वर्षों से विशिष्ट पर्यावरणीय स्थितियों में उगने, एवं पौधपालन और फराल सुधार तकनीकों के प्रभाव से मुक्त होने के कारण मक्का की जंगली प्रजातियों में आज भी कीट प्रतिरोधी लक्षणों के लिए पर्याप्त परिवर्तनशीलता देखी जा सकती है। पौधौ ने हमले के खिलाफ शारीरिक और रासायनिक सुरक्षा चक्र विकसित किया है। पौधों की कई प्रजातियां वाष्पशील रसायनों का उत्पादन और उत्सर्जन करती हैं जो कीटों के प्राकृतिक दुश्मनों को आकर्षित करने के संकेतों के रूप में काम करता है। ऐसा ही एक वाष्पशील रसायन, ई बी– केरयोफायलीन है जो एक एंटोमोपैथोजेनिक निमेटोड को आकर्षित करता है। यह पाया गया है कि पश्चिमी मक्का रूटवॉर्म के लार्वा द्वारा आघात के जवाब में पौधे से इस रसायन का विमोचन होता है जो एंटोमोपैथोजेनिक निमेटोड हेट्रोरेभडाईटिस मैगीडिस को आकर्षित करने का कार्य करता है। मक्का की वह किस्में जो इस वाष्पशील रसायन का उत्पादन करती हैं उनमें रसायन उत्पादित न करने वाली किस्मों की तुलना में पश्चिमी मक्का रूटवॉर्म लार्वा की संक्रमण दर पांच गुना अधिक होती है। कीट आक्रमण के जवाब में इस संकेतन रसायन का उत्पादन करने की क्षमता को मक्का डॉमेसटीकेशन के दौरान खो दिया गया है, हालांकि जंगली पूर्वज जीया मेज उपप्रजाति पार्वीग्लूमिस द्वारा इस रसायन की पर्याप्त मात्रा का उत्पादन आज भी किया जाता है। इसलिए इन संकेतों के उत्सर्जन में वृद्धि करके प्राकृतिक दुश्मनों के प्रभाव को बढ़ाने में मदद मिल सकती है । टीओसिंटे के साथ ही, पूर्वी गामाग्रास को भी पश्चिमी मक्का रूटवॉर्म के लिए प्रतिरोधी माना गया है और यह प्रतिरोध मात्रात्मक प्रकृति का होता है। पूर्वी गामाग्रास को मक्का के प्रमुख संचयन कीट सीटोफिलिस जीऐमिस के प्रतिरोध के दाता के रूप में भी पहचाना गया है। जीया मेज उपप्रजाति पार्वीग्लूमिस और मेक्सिकाना भी मक्का कीटों का शिकार करने वाली प्रजातियां जैसे ओरियस, कैलोसोमा (स्पोडोपटेरा फ्रुगिपरडा के शिकारी) और हिप्पोडैमिया कॉनवरजेंस (एफिड शिकारी) के साथ संघटित रहते हैं। जीया की कई जंगली प्रजातियां पतंग समूह के कीटों द्वारा की गई क्षति के उपरांत कई वाष्पशील रसायनों जैसे इण्डोल और मोनो सेसकुईटरपीन का मिश्रण उत्सर्जित करती हैं। जिस कारण कॉटेसिया मार्जिनिवेंट्रीस और मेटेयोरस लेफिगमी जैसे परजीवी ततैये आकर्षित होते हैं, जिनमें फॉल आर्मीवर्म पर हमला करने की प्रवृत्ति होती है। यह पाया गया है की टीओसिंटे के कीटों में मक्का के मुकाबले अधिक परभक्षी कीट हमला करते हैं जिससे यह पता चलता है कि विभिन्न वाष्पशील रसायनो के उत्पादन के कारण, टीओसिंटे, इन कीट परभक्षियों के लिया ज्यादा आकर्षक है। मक्का और जीया डिप्लोपेरेंनिस पर किये गए एक अध्यन्न में यह पाया गया कि जीया डिप्लोपेरेंनिस की जड़ों के आसपास कुल कीट संख्या मक्का की जड़ों की तुलना में कहीं अधिक थी, परन्तु इस कीट से टीओसिंटे में उच्च रूट बायोमास होने की वजह से मक्का की तुलना में कम उपज नुकसान हुआ और टीओसिंटे को मक्का की तुलना में कीट हमले के लिए अधिक सहिष्णु पाया गया। इसी तरह, जब मक्का और जीया मेज उपप्रजाति पार्वीग्लूमिस पर फॉल आर्मीवर्म से होने वाली क्षति की तुलना की गई तो यह पाया गया कि मक्का में हुई क्षति टीओसिंटे से कहीं ज्यादा थी। यह मुख्य रूप से फॉल आर्मीवर्म के आक्रमण की वजह से होने वाली चार रक्षा–संबंधी जीनों की अंतर अभिव्यक्ति के कारण था। इन जीनों विशेष रूप से दो प्रोटीऐज अवरोधकों की उन्नत अभिव्यक्ति को टीओसिंटे में कम कैटरपिलर वृद्धि और विकास के साथ सहसंबंधित पाया गया। इसी तरह, पौधपालन ने एक अन्य कीट, मकई लीफहॉपर, जो मक्का के तीन महत्वपूर्ण फाईटोप्लास्मल और वायरल रोगों (मक्कई स्टंट स्पॉयरोप्लाज्मा, मक्कई बुशी स्टंट फाइटोप्लाज्मा और मक्कई रायडो फिनो वायरस) के लिए वाहक के रूप में कार्य करता है, के लिए पौधे की उपयुक्तता को प्रभावित किया है। यह भी पाया गया है कि जैसे हम क्रमिक रूप से बारहमासी टीओसिंटे (जीया डिप्लोपेरेंनिस) से वार्षिक बालसस टीओसिंटे (जीया मेज उपप्रजाति पार्वीग्लूमिस), मक्का लैंडरेस और मक्का संकर की तरफ बढते हैं, मक्का की पत्ती की कठोरता में गिरावट आती है, जो मकई के पत्तों को हॉपर के लिए अतिसंवेदनशील बनाती हैं। पत्ती की कठोरता पर किये गए शोधों से पता चलता है कि जीवन चक्र परिवर्तन के कारण पौधे में उपस्थित हॉपर मुख भाग एवं ओवीपोसिटर के प्रवेश के विरुद्ध प्रतिरोध कमजोर हुआ है।

रूपात्मक सुरक्षा, वाष्पशील यौगिकों या प्रोटीऐज अवरोधकों की अभिव्यक्ति के अलावा, अधिकांश पौधों में विभिन्न प्रकार के विषैले या प्रतिकारक रक्षा चयापचयों का उत्पादन होता है, जिसके परिणामस्वरूप पौधों में कीट उपभोग के प्रति सहिष्णुता आती है। मक्का सहित कई घासों में, बेंजोक्साजिनोइड रक्षात्मक चयापचयों का प्रमुख वर्ग है। कीट उपभोग के कारण होने वाले ऊतक के विघटन के बाद ये रक्षात्मक चयापच खंडित होते हैं और मक्का में विस्तृत श्रृंखला के कीटों के खिलाफ प्रतिरोध उत्पन्न करते हैं। जीया मेज उपप्रजाति पार्वीग्लूमिस और मेक्सिकाना में विभिन्न सांद्रता में बेंजोक्साजिनोइड का उच्च स्तर पाया जाता है। वहीं दो कीट–निवारक फ्लेवेनोल्स, कैम्पफेरॉल और क्वेरसेटिन यौगिक, उष्णकटिबंधीय मक्का में टीओसिंटे की तुलना में कम मात्रा में पाया जाता है। इसके अलावा एक महत्वपूर्ण यौगिक मेसिन, जिसे मूल रूप से मक्के के सिल्क से अलग किया गया है, को मक्का ईयरवर्म कैटरपिलर के विकास को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने के साथ–साथ फॉल आर्मीवॉर्म और अन्य लेपिडोप्टेरान कीटों के लार्वा के विकास पर नकारात्मक प्रभाव डालने के लिए जाना जाता है। जीया मेज उपप्रजाति पार्वीग्लूमिस में मक्के की तुलना में उच्चतम मेयसीन की मात्रा पाई जाती है। जीया डिप्लोपेरेंनिस की पत्ती के अर्क और अवशिष्ट फाइबर भी फॉल आर्मीवर्म के प्यूपा के विकास को बुरी तरह प्रभावित करते हैं। जिसके परिणामस्वरूप प्यूपे की लंबाई और चौड़ाई कम हो जाती है और इनके मृत्यु दर में वृद्धि होती है। अन्य कीट प्रतिरोधी लक्षण की दाता मक्का जंगली प्रजातियां तालिका 1 में प्रस्तुत की गई हैं।

तालिका 1: कीट प्रतिरोधी लक्षण की दाता मक्का जंगली प्रजातियां

फसल जंगली प्रजाति	कीट जिसके खिलाफ प्रतिरोध/ सहनशीलता प्रदान की गई	संदर्भ
जीया मेज उपप्रजाति पार्वीग्लूमिस, जीया मेज उपप्रजाति मैक्सीकाना	फॉल आर्मीवर्म	डी लेंग, 2014
जीया मेज उपप्रजाति पार्वीग्लूमिस	लीफ हॉपर	मोया–रायगोजा और अररिआगा, 1993
जीया पेरेंनिस	लीफ हॉपर	मोया–रायगोजा और अररिआगा, 1993
जीया मेज उपप्रजाति मैक्सीकाना, जीया डिप्लोपेरेंनिस, जीया पेरेंनिस	एशियाई मक्का बोरर	रामीरेज, 1997
जीया मेज उपप्रजाति मैक्सीकाना	मक्का बोरर	पासजतोर और बॉरसॉस , 1990
टीओसिंटे	फॉल आर्मीवर्म	मोया रायगोजा, 2016
जीया मेज उपप्रजाति पार्वीग्लूमिस	फॉल आर्मीवर्म	जैपैनिएक और साथी, 2013
जीया मेज उपप्रजाति मैक्सीकाना	मक्का चित्तीदार डंठल बोरर	निआजी और साथी, 2014
ट्रिपसेकम डेकटायलॉयड्स	मक्का रूटवॉर्म	ब्रेनसोन, 1971
ट्रिपसेकम	मक्का रूटवॉर्म	पृषमन्न और साथी, 2009

जंगली प्रजातियों पर अब तक किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि मक्का जंगली प्रजातियां कीट सहिष्णुता में अपने कृष्ट समकक्षों की तुलना में निश्चित रूप से श्रेष्ठ हैं और इसलिए मक्का में कीट प्रतिरोध क्षमता में सुधार करने के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में उपयोग किये जा सकते हैं। फसल सुधार के लिए मक्का जंगली प्रजातियों का उपयोग चित्रण 3 में दर्शाया गया है। कीट प्रतिरोध वंशाणु के दाता के रूप में उपयोग होने के साथ, मक्का और मक्का जंगली प्रजातियों के बीच प्रायोगिक संकरण करके उत्पन्न हुई आबादी के मात्रात्मक लक्षण स्थान का विश्लेषण कर कीट प्रतिरोध के लिए जिम्मेदार नए वंशाणु पर प्रकाश डाला जा सकता है। प्रतिरोध के लिए जिम्मेदार जीनोमिक क्षेत्रों की पहचान के लिए दो माता–पिता के बीच संकरण से एक मानचित्रण आबादी का निर्माण किया जाता है एवं इसके बाद मानचित्रण आबादी की लाइनो को प्रतिरोधी लक्षण के लिए मूल्यांकन के बाद इन्हे प्रतिरोधी एवं संवेदनशील वर्गों में बाँट दिया जाता है। मूल्यांकन के बाद पहचानी गई इन प्रतिरोधी लाइनों को आगे विभिन्न प्रजनन कार्यक्रमों में प्रतिरोधी लक्षणों के दाता के रूप में उपयोग किया जा सकता है। इसी तरह के एक अध्ययन में टीओसिंटे (जीया मेज उपप्रजाति पार्वीग्लूमिस) को हमारे द्वारा संरक्षित मक्का कीट, लाल आटा बीटल प्रतिरोध के लिए जांचा गया जिसमें यह अत्यधिक प्रतिरोधी पाया गया। इसके बाद BC1F5 लाइनों को, प्रतिरोधी और संवेदनशील जनकों के रूप में क्रमशः टीओसिंटे और मक्का इनब्रेड लाइन का उपयोग करके उत्पादित किया गया। जब इन लाइनो को, क्षतिग्रस्त दानो की संख्या एवं प्रतिशत वजन घटाव के आधार पर बांटा गया तो कीट प्रतिरोधी क्षमता के लिए परिवर्तनशीलता की एक विस्तृत श्रंखला मिली। टीओसिंटे इंट्रोग्रेसड मक्का लाइनो में लाल आटा बीटल प्रतिरोध के लिए उपस्थित अंतर प्रतिक्रिया को चित्रण 2 में दर्शाया गया है।

इन लाइनो में प्रतिरोधी लाइनो की पहचान करके उन्हें लाल आटा बीटल प्रतिरोधी गुण के दाता के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

जंगली प्रजातियों में रोगों के दवाब, खेती की प्रथाओं, बाजार की मांग और जलवायु परिस्थितियों के अनुसार अपेक्षित विविधताएँ हैं जिन्हें प्रदान करके यह दुनिया भर में कृषि प्रणालियों की अनुकूली क्षमता में वृद्धि कर सकते हैं। फसल जंगली प्रजातियों के आनुवंशिक विविधता का एक महत्वपूर्ण स्रोत होने के बाद भी उनके जीन पूल का अभी तक पर्याप्त रूप अन्वेषण नहीं किया गया है। जंगली प्रजातियों गें उपस्थित आनुवंशिक विविधता को निश्चित करने एवं इन्हे कृष्ट किस्मों में स्थानांतरित करने की प्रक्रिया के लिए समय, संसाधनों और मानव क्षमता की आवश्यकता होती है। आणविक मार्कर और जीनोटाइपिंग पछेती फॉर्म जंगली संबंधी में पाए जाने वाले उपयोगी कृषि संबंधी लक्षणों का तेजी से विघटन करके, क्यूटीएल अनुक्रमण, मार्कर सहायक चयन और अन्य जीनोमिक दृष्टिकोणों के माध्यम से इन लक्षणों को कुलीन जर्मप्लाज्म में स्थानांतरित कर सकते हैं। हाल ही में एसएनपी (सिंगल न्यूक्लीओटाइड पॉलीमोरफिस्म) सरणी तकनीक में हुए विकास के कारण क्यूटीएल मानचित्रण, जीनोम विस्तृत एसोसिएशन अध्ययन और जीनोमिक चयन अध्ययन के माध्यम

चित्र 2: टीओसिंटे इंट्रोग्रेसड मक्का लाइनो में रेड फ्लोर बीटल प्रतिरोध के लिए उपस्थित अंतर प्रतिक्रिया

से जंगली संबंधी में उपस्थित उपयोगी भिन्नता का पता लगाने में मदद मिलेगी इन अध्ययनों का उपयोग वांछित लक्षणों के सकारात्मक चयन और अंतर्विभाजक संकरण एवं पूर्व प्रजनन कार्यक्रमों में उपज हानि के लिए जिम्मेदार जंगली जीनोमिक अनुभागों के नकारात्मक चयन के लिए भी किया जा सकता है। लागत प्रभावी आगामी पीढ़ी की अनुक्रमण तकनीकों की व्यापक उपलब्धता ने कई फसल प्रजातियों और उनके जंगली प्रजातियों के लिए संपूर्ण जीनोम अनुक्रम उत्पन्न करने में मदद की है। ये जीनोम संसाधन संरचनात्मक, कार्यात्मक और तुलनात्मक जीनोमिक्स दृष्टिकोणों के माध्यम से जंगली प्रजातियों में आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण गुणों की पहचान करने की हमारी क्षमता को बढ़ाते हैं। जंगली प्रजातियों में मूल्यवान लक्षणों के लिए जिम्मेदार वंशाणुओं का ज्ञान, कृषि फसलों के वंशाणु में लक्षित उत्परिवर्तन के माध्यम से फसल प्रदर्शन में सुधार के लिए जरुरी भिन्नता को उत्पन्न कर सकता है। आजकल जीनोम संपादन तकनीकों का प्रयोग

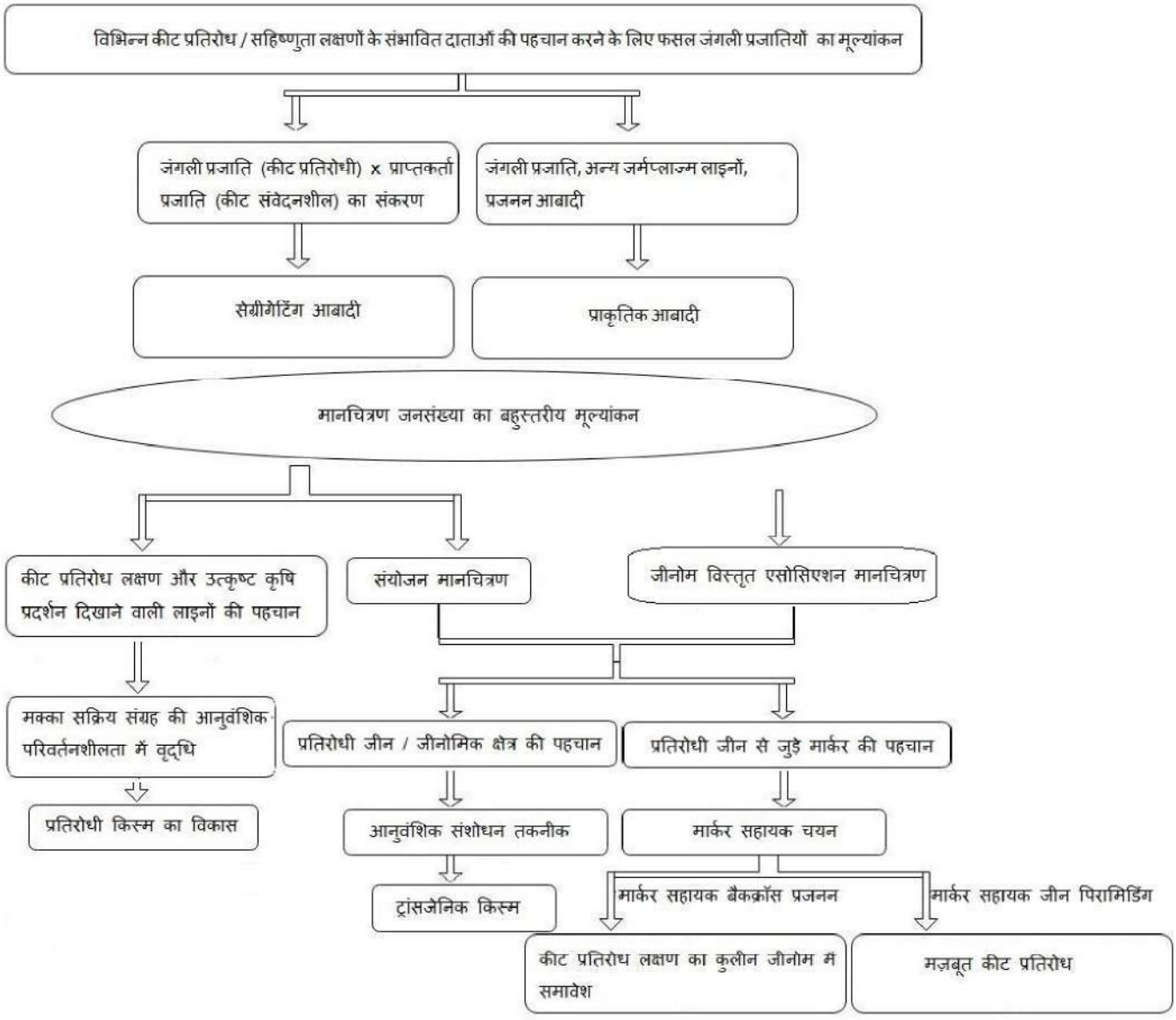

चित्र 3: फसल सुधार के लिए मक्का की जंगली प्रजातियों का उपयोग

कर फसलों के जीन अनुक्रमों में परिवर्तन किया जा सकता है। अनुक्रम–विशिष्ट न्यूक्लिऐज जैसे जिंक फिंगर न्यूक्लिऐज, ट्रांसक्रिपशन एक्टिवेटर लाइक इफेक्टर न्यूक्लिऐज या क्लस्टरड रेगुलर्ली इंटरस्पेस्ड शॉर्ट पेलिनड्रोमिक रिपीट्स को आम तौर पर पुनः संयोजक डीएनए प्रोद्योगिकी के माध्यम से फसल किस्मों के डीएनए में समाविष्ट किया जाता है जहाँ यह अपनी अनुक्रम विशिष्टता के कारण लक्षित स्थान पर डबल स्ट्रैंड तोड़कर या न्यूक्लीओटाइड को जोड़ या घटाकर अनुक्रम स्तर पर वांछनीय परिवर्तन का कारण बनता है। अतः जीनोम संपादन तकनीकों का उपयोग कर अनुक्रम स्तर पर परिवर्तन करके कीट प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि की जा सकती है।

निष्कर्ष:

अनेकों फसल सुरक्षा विधियों की उपस्थिति के बावजूद, कीड़े और रोगजनक अभी भी दुनिया भर में कम से कम 15% फसल नुकसान के लिए जिम्मेदार हैं। यह बढ़ती मानव आबादी के मद्देनजर एक भयप्रद तथ्य है क्योकि बढ़ती आबादी को भोजन की समान रूप से बढ़ती मात्रा की आवश्यकता होगी। इसलिए, मक्का, जो न केवल एक महत्वपूर्ण खाद्यान्न फसल है, बल्कि एक प्रमुख औद्योगिक, जैव ईंधन और पशु चारा की फसल भी है। आधुनिक मक्का ने फसल पौध पालन के दौरान कीटों के हमलों के खिलाफ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से बचाव करने की अपनी क्षमता को खो दिया है जिसके परिणामस्वरूप आनुवंशिक भिन्नता में कमी आई है। इसके विपरीत, अपने प्राकृतिक वातावरण में उगने के कारण मक्का की जंगली प्रजातियों को लगातार उत्तरजीविता के लिए चुनौती मिली, परिणामस्वरूप उन्होंने आनुवंशिक विविधता के उच्च स्तर को बनाए रखा। मक्का जंगली प्रजातियों में फसलों के सुधार के लिए उपलब्ध अप्रयुक्त आनुवंशिक विविधता का लाभ उठाना फसलों में सुधार के लिए एक आकर्षक विकल्प है। मक्का जंगली प्रजातियों में उपस्थित लाभकारी लक्षणों के आणविक, आनुवांशिक और जीनोमिक आधारों की पहचान और इनके विघटन के लिए आधुनिक तकनीकों का उपयोग इस प्रक्रिया को तेज कर सकता है। इसलिए, एक आनुवंशिक संसाधन के रूप में, मक्का की जंगली प्रजातियां मक्का उत्पादन में सुधार के लिए संभावित रूप से अत्यधिक मूल्यवान हैं।

भारत के विकास में हिंदी का योगदान अति महत्वपूर्ण हैं, यदि हम भारत को विकसित देश के रूप में देखना चाहते हैं तो हिंदी के महत्व को हम सबको समझना होगा। हिन्दी हमारे राष्ट्र की अभिव्यक्ति का सरलतम स्रोत है।

– सुमित्रनंदन पंत

मक्का की जैविक खेती

दीप मोहन महला[1], एस. एल. जाट[1], अमित कुमार अग्रवाल[2], सी. एम. परिहार[3], शांति देवी बाम्बोरिया[1], ए. के. सिंह[1], प्रदीप कुमार[1] एवं सुमित अग्रवाल[1]

[1]भाकृअनुप– भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना, (पंजाब)

[2]भाकृअनुप– राष्ट्रीय जैविक कृषि अनुसधान सस्थान, सिक्किम

[3]भाकृअनुप– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

*संवादी लेखक का ई–मेलः deepmohan@outlook.com

विश्व में 1.1 बिलियन टन से अधिक उत्पादन के साथ मक्का तीन प्रमुख खाद्यान्न फसलों (चावल, गेहूं और मक्का) में से अधिकतम उत्पादित होने वाली फसल है। हालाँकि मक्का क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व की दूसरी सबसे महत्वपूर्ण अनाज की फसल है। इसकी अधिकतम प्रति इकाई क्षेत्रफल में उत्पादन क्षमता के कारण इसको 'अनाजों की रानी' भी कहा जाता है। विश्व में मुख्य खाद्यान्न फसलों में गेहूँ एवं धान के बाद मक्का तीसरी मुख्य फसल है। भारतवर्ष में पिछले कुछ वर्षों में मक्का उत्पादन ने नये आयाम खड़े किये है जो इसकी बढ़ती उपयोगिता एवं लाभदायिकता को दर्शाता है। विश्व् में भारत 28.75 मिलियन टन (2017–18) मक्का उत्पादन में चौथे और क्षेत्रफल में छठे स्थान पर है भारत में लगभग 80 प्रतिशत मक्का की खेती खरीफ के मौसम में होती है। मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, राजस्थान, बिहार, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, जम्मू एवं कश्मीर तथा उत्तरी पूर्व राज्यों में मक्का मुख्यतया उगायी जाती है। मक्का न केवल विविध पारिस्थितियों, जलवायु, मृदा आदि में उगाई जाने वाली फसल है अपितु यह कई विकल्प और प्रकार वाली अनाज की फसल भी है। मक्का के विभिन्न प्रकारों जैसे सामान्य पीला/सफेद मक्का, मीठी मक्का, शिशु मक्का, पॉप कॉर्न, गुणवत्ता प्रोटीन मक्का, चारा मक्का आदि का भारतवर्ष में प्रचलन है। हालांकि भारतवर्ष में मक्का की उत्पादकता वैश्विक औसत उत्पादकता के मुकाबले आधी ही है। इसका प्रमुख कारण मक्का की 75 प्रतिशत क्षेत्रफल में वर्षा आधारित खेती, समुचित संकर किस्मों को न अपनाना, खरपतवारों की समस्या, असंतुलित उर्वरक प्रयोग, कीट एवं व्याधियां हैं। मिट्टी के स्वास्थ्य में कमी एवं घरेलु एवं वैश्विक बाज़ारों में सुरक्षित खाद्य पदार्थों की मांग के सदर्भ में मक्का में भी जैविक खेती की माँग बढ़ गयी है। जैविक खेती मृदा स्वास्थ्य में सुधार के साथ–साथ हानिकारक रसायनमुक्त खाद्य पदार्थ उपलब्ध कराकर उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य में भी सुधार करती है। अतः इस आलेख में मक्का की जैविक खेती के विषय पर चर्चा की गयी है।

चित्रः मक्का की जैविक खेती

जैविक खेती क्या है?

हरित क्रांति ने भारतीय कृषि के विकास में एक महत्त्वपूर्ण योगदान दिया एवं भारत को खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर बनाया है। 60 के दशक में हरित क्रांति के अंतर्गत उन्नत बीजों, आधुनिक तकनीकी और रासायनिक खादों के अधिकाधिक प्रयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति में कमी आई है। इसके साथ ही खारे पानी से सिंचाई के अधिकाधिक प्रयोग के कारण भूमि में नमक की मात्रा भी बढ़ गयी। खेतों में रासायनिक खाद डालने के कारण उपज तो ज्यादा होती है लेकिन साल दर साल खेतों की उर्वरा शक्ति कम होने लगती है एवं ज्यादा उत्पादन के लिए अत्यधिक खाद डालना पड़ता है।

जैविक खेती कृषि की वह पद्धति है जिसमें पर्यावरण को स्वच्छ एवं प्राकृतिक संतुलन को कायम रखते हुए भूमि, जल एवं वायु को प्रदूषित किये बिना दीर्घकालीन व स्थिर उत्पादन प्राप्त किया जाता है। दीर्घकालीन व स्थिर उपज

प्राप्त करने के लिए रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशियों व खरपतवारनाशियों तथा वृद्धि नियन्त्रक का प्रयोग न करते हुए फसल चक्र, हरी खाद, जीवांशयुक्त खादों का प्रयोग किया जाता है। यह पद्धति रसायनिक कृषि की अपेक्षा सस्ती एवं स्थाई है। जैविक खेती से प्राप्त फसलों से जैसे खाद्यान, फल एवं सब्जी आदि हानिकारक रसायनों से पूर्णतः मुक्त होते हैं। वैज्ञानिकों के शोध एवं किसानों के अनुभव से यह प्रमाणित हो चुका है कि जैविक खेती से मिट्टी की उर्वरा शक्ति, जल धारण क्षमता एवं फसलों की उत्पादकता बढ़ती है तथा किसानों को उत्पादन लागत कम आती है और आमदनी ज्यादा होती है। पर्यावरण की दृष्टि से भी जैविक खेती बहुत उपयोगी है।

भूमि का चयनः

मक्का की जैविक खेती की फसल के बेहतर उत्पादन के लिए अच्छे जल निकास वाली दोमट या बलूई दोमट मिट्टी वाली उपयुक्त रहती है। मिट्टी का पी.एच्. मान 5 से 7.5 के बीच होना उपयुक्त माना जाता है। जहाँ पर सिंचाई में नमकीन पानी की समस्या है वहां मक्का की बिजाई मेड के ऊपर की बजाय साइड में करें जिससे पौधे की जड़ें लवणता से प्रभावित न हों।

बुवाई का समयः

अच्छी पैदावार लेने के लिए मक्का की बुवाई समय पर करनी चाहिए। मक्के की बुवाई वर्ष भर कभी भी खरीफ, रबी एवं जायद ऋतु में कर सकते हैं लेकिन खरीफ ऋतु में बुवाई मानसून पर निर्भर करती है। अधिकतर जगहों पर जहां सिंचाई सुविधा उपलब्ध हो वहां पर खरीफ में बुवाई जून के अंत से जुलाई के प्रथम सप्ताह तक कर लें। मक्का की अगेती फ़सल लेना ज्यादा उपयुक्त रहता है। रबी मौसम में अक्टुबर माह बीजाई हेतु उपयुक्त होता है। जायद के लिये फसल की बुवाई फरवरी के प्रथम पखवाड़े तक कर दें।

बीज दरः

जैविक मक्का हेतु जैविक विधि से तैयार बीजों का ही प्रयोग करें। अच्छे अंकुरण एवं प्रारंभिक ओज हेतु जैविक उर्वरकों (एजोटोवेक्टर/एजोस्पिरिलय/पीएसबी/एनपीके कांसोर्टिया) एवं जैविक रसायनों (ट्राईकोडरमा) से बीज–उपचार कर के ही बुवाई करें।

विभिन्न प्रकार की मक्का हेतु प्रति एकड़ बीज की मात्रा एवं कतार से कतार तथा पौधों से पौधों की दूरी निम्न सारणी में दी गयी है:

विवरण	सामान्य मक्का	क्यू.पी.एम.	बेबी कॉर्न	स्वीट कॉर्न	पॉप कॉर्न	चारे हेतु मक्का
बीज की मात्रा (कि.ग्रा./एकड़)	8–10	8	10–12	2.5–3	4–5	25–30
लाइन से लाइन की दूरी (से.मी.)	60–75	60–75	60	75	60	30
पौधे से पौधे की दूरी (से.मी.)	20–25	20–22	15–20	25–30	20	10

बीज–उपचारः

जैविक खेती में रासायनिक तत्वों से उपचारित बीजों का प्रयोग नहीं करते हैं। जैव उर्वरक से बीज उपचारित करने के लिए जैव उर्वरक का घोल तैयार करें। घोल तैयार करने के लिए 200 ग्राम एजोटोबेक्टर/एज़ोस्पिरिलम एवं 200 ग्राम पी.एस.बी. जैव उर्वरक को 400–500 मि.ली. पानी में घोल लें। यह घोल 10–12 कि.ग्रा. बीज को उपचारित करने हेतु पर्याप्त है। बीजों को तैयार किये हुए घोल से अच्छे से मिला दें। उपचारित बीजों को छायादार स्थान पर साफ फर्श पर या प्लास्टिक शीट पर या गनी बैग पर फैला दें तथा सुखाएं।

बुवाई की विधिः

मक्का को खेत में छिड़क कर बुवाई करने से मक्का के पौधों के बीच उचित दुरी नहीं रखी जा सकती। उचित दूरी नहीं होने से पौधों की बढवार अच्छी नहीं होती तथा उपज भी कम होती है। मक्का की बेहतर उपज लेने के लिए कतार से कतार तथा पौधों से पौधों की दूरी बनाये रखना आवश्यक है (ऊपर दी गयी सारणी में वर्णित अनुसार)। बुवाई के लिए मेज़ प्लांटर का उपयोग करना चाहिए। क्योंकि इससे एक ही बार में बीज व उर्वरकों को मृदा में उचित स्थान पर डाला जा सकता है। चारे वाली मक्का की बुवाई सीड ड्रिल द्वारा की

जा सकती है। मक्का के बीज को 3–5 सें.मी. गहराई तक बुवाई चाहिए ताकि अंकुरण सही हो। पौधों की संख्या प्रति वर्ग मीटर 6–8 रखनी चाहिए।

पौधों की जड़ों में पर्याप्त नमी बनाये रखने तथा जल भराव से होने वाले नुकसान से बचाने के लिए मक्का को मेड़ों पर बोना चाहिए। मक्का की बुवाई पूर्व से पश्चिम दिशा वाली मेड़ के उत्तरी भाग में की जानी चाहिए। इससे लवण–क्षार की समस्या से कुछ हद तक बचा जा सकता है क्योंकि सूर्य की किरणें दक्षिण दिशा में सीधी मृदा पर पड़ती हैं इसलिए क्षार की समस्या मेड़ों के दक्षिण दिशा में अधिक होती है।

निराई–गुड़ाई एवं सिंचाई:

खरीफ के दौरान खरपतवार की समस्या फसल में अधिक होती है। खरपतवार मक्का की फसल की पैदावार को 35–40 प्रतिशत तक कम कर सकते हैं। मक्का में खरपतवारों की रोकथाम बुवाई से 20–30 दिनों के बाद बहुत आवश्यक है, ताकि फसल में दी गई खाद पौधों को भली–भांति मिल सके व उपज में बढोतरी हो सके।

मक्का में जल प्रबन्धन मुख्य रूप से बुवाई के मौसम पर निर्भर करता है। क्योंकि भारत में लगभग 80 प्रतिशत मक्का विषेश रूप से वर्षा सिंचित क्षेत्रो में उगायी जाता है अतः यदि वर्षा ऋतु में मानसूनी वर्षा सामान्य रही तो सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। क्योंकि मक्का एक ऐसी फसल है जो न तो सूखा सहन कर सकती और न ही अधिक पानी सहन कर सकती है। अतः मक्का की बुवाई मेड़ों पर करनी चाहिए व सही समय पर अतिरिक्त पानी को नालियों द्वारा खेत से निकाल देना चाहिए। किसी भी अवस्था में खेत में खड़ा पानी नहीं रहना चाहिए अन्यथा पौधे पीले पड़ जाते है और उनकी बढवार रूक जाती है। जब फसल को सिंचाई की आवश्यकता हो, उसी समय सिंचाई करनी चाहिए। पहली सिंचाई बहुत ही ध्यान से करने की आवश्यकता होती है, क्योंकि इस सिंचाई में अधिक पानी से छोटे पौधों की बढवार नहीं होती है। इसलिए पहली सिंचाई में पानी मेड़ों के ऊपर से नहीं बहना चाहिए। सामान्य रूप से नालियों में मेड़ों के दो तिहाई ऊँचाई तक ही पानी देना लाभदायक रहता है। सिंचाई की दृष्टि से नई पौध, घुटनों तक की ऊँचाई, फूल आने तथा दाने भराव की अवस्थाएँ सबसे संवेदनशील होती हैं अतः इन अवस्थाओं में अगर सिंचाई की सुविधा हो तो सिंचाई अवश्य करनी चाहिए।

अन्य आवश्यक क्रियायें:

वर्षा के पानी और तेज हवा से फसल को बचाने के लिए पौधों की जड़ों पर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधन:

बेहतर मक्का उत्पादन के लिए पोषक तत्वों के किसी एक जैविक स्रोत पर अधिक निर्भर हुए बिना एकीकृत जैविक पोषक तत्व प्रबंधन रणनीतियों का पालन किया जाना चाहिए। इसलिए, मक्के की फसल की अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिए रॉक फॉस्फेट 150 किग्रा / हेक्टेयर के साथ 8–10 टन गोबर खाद + 1.5–2 टन केंचुए की खाद + 2 टन पोल्ट्री की खाद को बुवाई से पहले एक हेक्टेयर क्षेत्र में प्रयोग करनी चाहिए। मिट्टी से पैदा होने वाले कीटों के प्रभावी नियंत्रण के लिए नीम केक को 150 किग्रा/हेक्टेयर की दर से खेत में मिलाया जा सकता है।

मक्का की अधिक उपज के लिए बुवाई से पहले मिट्टी की जांच करवाना अतिआवश्यक है। मिट्टी परीक्षण से मिट्टी में उपस्थित लाभ–पोषक तत्वों का पूर्वानुमान कर संतुलित खाद दी जा सकती है।

जैव उर्वरक भी पौधों को मिट्टी में उपस्थित पोषक तत्व उपलब्ध कराने का कार्य करते हैं। 3–5 कि.ग्रा. पी.एस.बी. एवं 3–5 कि.ग्रा. एजोटोबेक्टर/एज़ोस्पिरिलम को लगभग 50–100 कि.ग्रा. गोबर की खाद में मिलाकर बुवाई के पहले छिडकाव करने से अच्छे परिणाम मिलते हैं ।

फसल सुरक्षा:

दाने बनते समय पक्षियों से होने वाले नुकसान से बचने के लिए प्रकाश परावर्तित करने वाले फीते का प्रयोग करें। प्रकाश परावर्तित करने वाले फीते के प्रयोग करने से पक्षियों से नुकसान कम होता है। फीते से फीते की दूरी 5 मीटर रखें।

विभिन्न कीट जैसे सफेद सूण्डी, तना छेदक, बालों वाली सूण्डियां व धारीदार भंग एवं बीमारियां जैसे बीजाणु जनित

तना–गलन, झुलसा रोग, बीज गलन से बचने के लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं

1. कच्ची गोबर की खाद का प्रयोग नहीं करें व जहां तक संभव हो, अच्छी सड़ी हुई गोबर/केंचुआ खाद का प्रयोग करें।
2. जिन क्षेत्रों में कीट/बीमारियों का प्रकोप अधिक हो, वहां बीज की मात्रा 10–20 प्रतिशत अधिक प्रयोग करें।
3. बीजाई से पहले खेतों के आस–पास की झाड़ियों, खरपतवारों इत्यादि को नष्ट कर दें।
4. स्वस्थ बीज का प्रयोग करें, छेद वाले बीजों को निकाल दें।
5. रोग एवं कीट ग्रसित पौधों को निकालकर नष्ट कर दें।
6. नीम/बेसिलस थ्यूरिनजेनेसिस का छिड़काव करें।
7. खेतों में पानी के निकास की सही व्यवस्था रखें।
8. जैविक कीट एवं रोगनाशकों का प्रयोग करें।

कटाई एवं भण्डारण:

जब भुट्टें को ढ़कने वाली पत्तियां पीली पड़ने लगें एवं दानों में 30 प्रतिशत से कम नमी हो तो भुट्टों को तोड़ लेना चाहिए और खेत में अधिक देर तक नहीं रहने देना चाहिए अन्यथा जानवरों और पक्षियों से हानि हो सकती है। भुट्टों को पौधों से तोड़ने के बाद सुखा लें व दाने निकाल कर उनमें जब 13–14 प्रतिशत तक नमी हो तो मंडी/मार्केट में ले आएं। शेष बचे पौधों को पशुओं के चारे के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। भण्डारण के लिये दानों को सुखाने की प्रक्रिया तब तक करनी चाहिए जब तक कि उनमें नमी का अंश लगभग 8–10 प्रतिशत न हो जाये और इन्हें वायुप्रवाहित जूट के थैलों/बोरों में रखना चाहिए।

विषेष प्रकार की मक्का:

भारत में शहरी क्षेत्रों में बेबी कॉर्न एवं स्वीट कॉर्न की मांग तेजी से बढ़ रही है। बढती मांग एवं जैविक उत्पाद होने के नाते बाजार में मिलने वाले अधिक मूल्य के कारण स्वीट कॉर्न/मीठी मक्का एवं बेबी कॉर्न की जैविक खेती सामान्य मक्का से अधिक फायदेमंद साबित होती है।

स्वीट कॉर्न में बीज के अंकुरण के लगभग 45 दिनों के बाद नर मंजरी आती है और इसके 2–3 दिनों के बाद मादा मंजरी (सिल्क) आती है। खरीफ के मौसम में परागण के 18–22 दिनों के बाद मीठी मक्का के भुट्टे तुड़ाई के लिए तैयार हो जाते है तथा सर्दी के मौसम मे परागण के 25–30 दिनों के बाद भुटे की तुड़ाई की जा सकती है। इस अवस्था (तुड़ाई की अवस्था) की पहचान भुट्टे के ऊपरी भाग यानि सिल्क के सूखने से की जा सकती है या इस अवस्था में भुट्टे को नाखुन से दबाने से दूध जैसा तरल पदार्थ निकलने लगता है। भुट्टे की तुड़ाई सुबह या शाम मे करनी चाहिए। हरे भुट्टे को तुड़ाई के ठीक बाद बाजार या प्रोसेसिंग युनिट या कोल्ड स्टोरेज में पहुँचा देना चाहिए। हरे भुट्टे के तोडने के बाद बचे हुए हरे पौधे को चारे के रूप में इस्तेमाल करना चाहिए।

बेबी कॉर्न को शिशु मक्का भी कहते हैं। यह वह अनिषेचित मक्का का भुट्टा है जो सिल्क की 2–3 से.मी. लम्बाई वाली अवस्था या सिल्क आने के 1 से 3 दिन के अन्दर पौधे से तोड़ लिया जाता है। अच्छे बेबी कॉर्न की लम्बाई 6–11 से.मी. और रंग हल्का पीला होना चाहिए। यह फसल खरीफ में लगभग 50–55 दिनों में तैयार हो जाती है। एक वर्ष में बेबी कॉर्न की 3–4 फसलें आसानी से ली जा सकती हैं। इसकी खेती से पशुओं के लिए पौष्टिक हरा चारा भी मिल जाता है। बेबी कॉर्न की निश्चित विपणन (मार्केटिंग) और डिब्बाबंदी (कैनिंग) से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

PGS-INDIA GREEN

जैव उर्वरक एवं फसल उत्पादन में इनका महत्व

गोविन्द कुमार यादव[1], चिरंजीव कुमावत[1] एवं दीप मोहन महला[2]
[1]श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, (राजस्थान)
[2]भाकृअनुप –भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब)
*संवादी लेखक का ई–मेलः chiru.kumawat@gmail.com

जैव उर्वरक वे सूक्ष्म जीव है जो मृदा में पोषक तत्वों को बढाकर उसे उपजाऊ बनाते हैं, मृदा में अनेक जीवाणु और नील हरित शैवाल पाऐ जाते है, जो या तो स्वयं या कुछ अन्य जीवों के साथ मिलकर वायूमण्डलीय गैसीय नाइट्रोजन/ नत्रजन को अमोनिया में परिवर्तित करते है, इसी प्रकार मृदा में अनेक जीवाणु व कवक पाऐ जाते है, जिनमें फॉस्फेट को घूलनशील करने की क्षमता होती है, कुछ ऐसे कवक भी होते है, जिसके फलस्वरूप मृदा में पौधो के लिए उपलब्ध पोषक तत्वो की सांन्द्रता बढ़ती है. चूंकि सूक्ष्मजीव प्राकृतिक है. इसलिऐ इनके प्रयोग से मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ती है और प्रर्यावरण पर विपरित असर नही पड़ता है।

जैविक उर्वरकों के प्रकार

1. **नत्रजन जैविक उर्वरकः–** नत्रजन जैविक उर्वरक मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा को बढाते है। राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, बैन्जेरिकिया, क्लॉस्ट्रिडियम, रोडोस्पारिलियम और एजोस्पाइरिलयम, राजोबियम जीवाणु दलहनी फसलों की जडों में सूक्ष्म जीवी रूप में रहकर वायूमण डलीय नत्रजन का स्थिरीकरण करते है। एजोटोबैक्टर, बैन्जरिकिया एवम् राडोस्पाइलियम ये नत्रजन का मृदा में मुक्त अवस्था में यौगिकीकरण करते है। नील हरित शैवाल ऐनाबीना एक जलीय फर्न एजोला के साथ सहजीवी रूप में रहता है और नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करते है, इसलिए एजोला का प्रयोग जैविक उर्वरक के रूप में धान की फसल में किया जाता है। इसके अलावा एजोला को दुधारू पशुओं के चारे के रूप में भी काम में लिया जाता है।
2. **फॉस्फेटीक जैविक उर्वरक :–** ये वो जैविक उर्वरक है जो मृदा में उपलब्द फॉस्फेट को घूलनशील बनाकर पौधों को उपलब्ध करवाते है। फोस्फेट को घूलनशील बनाने वाले कवक, जैसे एस्पर्जिलस, पैनिसिलियम, जाइगोस्पोरा, एडोगोन, ग्लोमस ऐमेनिटा, बोलिटस आदि पौधों के साथ सहजीवन बिताते है तथा पौधों के लिए फॉस्फेट की आपूर्ति करते है। कवकों के अतिरिक्त कुछ जीवाणु भी फॉस्फेट को घूलनशील बनाते है जैसे बैसिलस सब्टिलिस, स्यूडोमोनास फ्लोरोसेंस एवं स्यूडोमोनॉस प्यूटिडा।
3. **सेल्यूलोटिक जैविक उर्वरक :–** यह वे जैविक उर्वरक है जो मृदा में जैविक पदार्थ का तेजी से विघटन करके मृदा में पोषक तत्वों को जैविक पदार्थों से मुक्त करते है। जैसे एस्पर्जिलस, ट्राइकोडर्मा, पेनिशिलियम आदि कवक इस प्रकार के जैविक उर्वरकों के उदाहरण है।

सारणी 1 विभिन्न फसलों में जैविक उर्वरकों की मात्रा एवं प्रयोग विधि

क्र.स.	जैविक उर्वरक का नाम	फसल	मात्रा
1	नाइट्रोजन स्थिरीकरण		
अ	सहजीवी –राइजोबियम	सभी दलहनी फसलें	600 ग्राम/हे.
ब	असहजीवी – एजोटोबैक्टर/ एजोस्पाईरिलम	धान्य एवं तिलहनी फसलें	600 ग्राम/हे.
2	फॉस्फोरस घोलक जीवाणु	सभी फसलें	600 ग्राम/हे. या 2 किलोग्राम, 100 ग्राम गोबर की खाद के साथ
3	वॉम फफुंद	दहलनी, धान्य, मसाले फसलें	10 किलोग्राम, 100 ग्राम गोबर की खाद के साथ

जैव उर्वरकों के प्रयोग की विधि :–

राइजोबियम इनाकुलेंट की प्रयोग विधि :– बीजों पर राइजोबियम कल्चर की परत चढ़ाते समय प्रति बीज के ऊपर कल्चर की लगभग 1000 जीवित कोशिकाओं का होना आवश्यक है। इसके लिए 10 किलोग्राम गुड़ का गर्म पानी मे घोल बनाऐं। इसे कुछ समय के लिए ठंड़ा होने दें, फिर इस घोल में कल्चर मिलाकर बीजों पर छिड़कें एवं बीजों को हल्के हाथ से रगड़ें, फिर छाया में सूखी बोरी पर डालकर रख दें अथवा ढककर बर्तन में रख लें। इन बाद बीजों के उपर चूने की पतली परत चढ़ाऐं । इससे भूमि में अम्लीयता एवं उपयोग किए जाने वाले उर्वरकों के अम्लीय प्रभाव से बचा जा सकता है।

1. **बीज उपचार विधि :–** यह सर्वोत्तम विधि है इसके लिए 1 लीटर पानी में लगभग 50 ग्राम गुड़ मिलाकर उबाल लेते है ठंडा होने के के बाद 200 ग्राम जैव उर्वरक को अच्छी तरह मिलाकर घोल बना लेते है। इस घोल को 10 किलोग्राम बीज पर छिड़काव करके अच्छी तरह मिला लेते है। इसके उपरान्त बीजों को छायादार जगह में सुखा लेते है एवं सूखने के बाद बुवाई कर देनी चाहिए।
2. **पौध जड़ उपचार विधि** :–धान तथा सब्जी वाली फसलों जिनके पौधों की रोपाई की जाती है, इनके लिए यह विधि उपयुक्त है। इसके लिए किसी चौड़ें बर्तन में 5–7 लीटर पानी में एक किलोग्राम एजोटोबेक्टर एवम् फॉस्फोरस घूलनशील जीवाणु 250 ग्राम गुड़ के साथ मिलाकर घोल बना लेते है। इसके उपरान्त नर्सरी से पौधों को उखाड़कर 50–100 को बंडल में बांधकर घोल में 10 मिनट तक डुबो कर रखने के बाद रोपाई कर दी जाती है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा मक्का, ज्वार, आलू में स्टार्च, मक्का, ज्वार, कपास आदि में 6.7 से 71.7 प्रतिशत की वृद्धि एजोटोबैक्टर के प्रयोग से मिली है। यह सूरजमुखी में तेल, आलू में स्टार्च, मक्का में प्रोटीन एवं चुकंदर में शर्करा प्रतिशत बढ़ाता है। एजोटोवेक्टर भूमि में 25 से 30 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हैक्टर स्थिर कर देता है। एजोटोबैक्टर कुछ प्रतिजैविक पदार्थ छोड़ता है, जो वृद्धि कारकों की तरह कार्य करते है। इसमें इंडोल एसिटिक एसिड, जिब्रेलिन व आक्सीन जैसे वृद्विकारक शामिल है।
3. **कन्द उपचार विधि** :– यह विधि मूख्यतः आलू तथा गन्ने के लिए प्रयोग में ली जाती है। एक किलोग्राम एजोटोबैक्टर व एक किलोग्राम फॉस्फोरस घूलनशील जीवाणु को 20–30 लीटर पानी में मिला लेते है। इसके उपरान्त कन्दों को 10 मिनट तक डुबों कर रखने के बाद रोपाई कर देते है।
4. **मृदा उपचार विधि** :– 5–10 किलोग्राम जैव उर्वरक तथा 75–100 किलोग्राम गोबर का मिश्रण तैयार करके रात भर छोड़ देते है। इसके बाद अंतिम जुताई पर खेत में मिला देते है।

जैव उर्वरकों का फसल उत्पादन में महत्व :–

जैव उर्वरको के उपयोग से मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ती है। जैव उर्वरक अनेक वृद्वि नियामक रसायन उत्पन्न करते है। इनसे मृदा की भौतिक एवं रासायनिक दशा में सुधार आता है। जैव उर्वरक, नाइट्रोजन स्थिरीकरण, फॉस्फोरस का घुलनशील एवं कार्बनिक पदार्थो के विघटन जैसी प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा मृदा में पोषक तत्वों को बढ़ाकर मृदा को उपजाऊ बनाते है।

सारणी 2 विभिन्न जैव उर्वरकों का फसलोत्पादन पर प्रभाव

कल्चर	फसल	वृद्धि
राइजोबियम कल्चर	दलहन एवं तिहलन	4 से 65 प्रतिशत
एजोटोबैक्टर	धान्य फसलें जैसे:– मक्का, ज्वार, बाजरा, गेहूँ, धान	7 से 71 प्रतिशत
एजोस्पिरिलियम	ज्वार/बाजरा, धान, गन्ना, मोटे अनाज, कपास	16 से 18 प्रतिशत
नील–हरित शैवाल	धान	10 से 25 प्रतिशत
एजोला	धान	13 से 35 प्रतिशत

1. जैव उर्वरक पौधों के लिए आवश्यक सभी प्रमुख तत्व प्रदान करते है।
2. इनके प्रयोग से मृदा में लाभकारी जीवाणुओं व केचुओं की संख्या में वृद्वि होती है।
3. भूमि में स्थिर अघुलनशील फास्फोरस जीवाणुओं की सक्रियता में घुलनशील रूप में परिवर्तित होकर पौधों के लिए प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है।
4. इनके उपयोग से पौधों के लिए आवश्यक अनेक पादप वृद्वि नियामक भी मिलते है।
5. जैव उर्वरक रासायनिक उर्वरकों की तुलना में कम समय और कम खर्च में तैयार हो जाते है।
6. जैव उर्वरकों का प्रभाव धीरे–धीरे होता है परन्तु मृदा उर्वरकता लम्बे समय तक बनी रहती है जिससे रासायनिक उर्वरकों की तरह इन्हें बार–बार खेत में नही डालना पड़ता।
7. जैव उर्वरकों के प्रयोग से रासायनिक उर्वरकों की खपत में कमी होती है।
8. जैव उर्वरकों का प्रयोग मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से सर्वोत्तम है जो टिकाउ खेती मे महत्वपूर्ण कारक है।

जिस देश को अपनी भाषा और साहित्य के गौरव का अनुभव नहीं है, वह उन्नत नहीं हो सकता।

– डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

फसल उत्पादन में मूल परिवेष्णीय (राइजोस्फेरिक) जीवाणुओं की भूमिका

चेतन कुमार जी.[1], अमित कुमार[1], अमृत लाल मीणा[1], प्रकाश चन्द घासल[1], ललित कृष्ण मीणा[1], देबाष्णीष दत्ता[1], सुनील कुमार[1], जयराम चौधरी[1] एवं रंजना[2]

1 भाकृअनुप–भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम, मेरठ (उत्तर प्रदेश)

2 गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर (उत्तरखण्ड)

*संवादी लेखक का ई–मेलः amrit.iari@gmail.com

पादप वृद्धि को बढ़ावा देने वाले राइजोबैक्टीरिया (पी.जी.पी.आर.) मुक्त–जीवित मूल परिवेश (राइजोस्फीयर) जीवाणु के समूह हैं जो पौधों की जड़ों को सक्रिय रूप से उपनिवेशित करते हैं तथा पौधे के विकास पर लाभकारी प्रभाव डालते हैं। ये कई जीवाणु वंशों जैसे कि एक्टिनोप्लेन, एग्रोबैक्टीरियम, अल्कालिजेनस, अमोर्फोस्पोरनियम, आर्थ्रोबैक्टीरियम, एजोटोबेक्टर, बैसिलस, सेल्युलोमोनास, एंटरोबैक्टीरिया, एरविनिया, फ्लेवोबैक्टीरियम, स्यूडोमोनास, राइजोबियम और ब्रैडीराइजोबियम आदि से संबंधित हैं। राइजोबैक्टीरिया (पी.जी.पी.आर.) विभिन्न प्रकार से पौंधों की वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करते हैं। ये स्वयं के उपापचय का उपयोग करके (मृदा फॉस्फेट को घोलकर, हार्मोन का उत्पादन कर या नाइट्रोजन को भूमि में स्थिरीकृत कर) या पौधे के उपापचय जैसे कि पानी और खनिजों के अधिग्रहण में वृद्धि, जड़ विकास तथा एंजाइमैटिक गतिविधि को बढ़कर पौंधों को प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त ये जीवाणु पौधों के लिए लाभदायक अन्य सूक्ष्मजीवों की गतिविधि बढ़ाकर या पौधे में रोगजनक जीवों को नष्ट करके पौधे की वृद्धि को बढ़ावा देते हैं।

मिट्टी की उर्वरता और फसल की पैदावार में सुधार के संदर्भ में राइजोबैक्टीरिया की इन क्षमताओं का बहुत महत्व है, इस प्रकार यह पर्यावरण पर रासायनिक उर्वरकों के नकारात्मक प्रभाव को कम करता है। पिछले एक दशक के दौरान विभिन्न प्रकार की फसलों जैसे कि मक्का, चावल, गेहूं, सोयाबीन और सेम आदि में पीजीपीआर का उपयोग करने की विधि तथा उनके क्रिया तंत्र को संक्षेप में इस लेख में प्रस्तुत किया गया है तथा साथ ही साथ उनपर परिचर्चा भी की गई है।

कृषि क्षेत्र में उच्च उत्पादकता को बनाए रखने के लिए हमें पर्यावरणीय स्थायी कृषि को अपनाने के साथ–साथ पारिस्थितिक तंत्र और जैव विविधता को भी बनाए रखना होगा। पीजीपीआर मिट्टी के जीवाणु होते हैं जो पौधों के प्रकंद को उपनिवेषित करते हैं। वे पौधों के ऊतकों में या उसके आसपास रहते हैं और कई प्रक्रियाओं द्वारा पौधे की वृद्धि को प्रभावित करते हैं।

पीजीपीआर पौधे के स्वास्थ्य और विकास को बढ़ावा देते हैं, रोगकारी जीवाणुओं को अवरोधित करते हैं और पोषक तत्वों की उपलब्धता को फसलों के लिए बढ़ाते हैं। कुछ फसल विशिष्ट पीजीपीआर और फसल वृद्धि पर उनके प्रभाव का विवरण नीचे दी गयी तालिका में दिया गया है।

तालिका–फसल विशिष्ट पीजीपीआर और फसल वृद्धि पर उनके प्रभाव

फसल	सूक्ष्मजीव	विकास को बढ़ावा देने वाली गतिविधि
मक्का	*एजोटोबैक्टर, बेसिलस प्रजाति, बुर्खोल्डेरिआ प्रजाति, एजोस्पिरिलम ब्रासीलेंसे, माइकोबैक्टेरियम ओलियोवॉरंस, माइकोबैक्टीरियम फेली, बेसिलस पोलीमेक्सा, तथा एक्रोमोबेक्टर*	मुक्त जीवी नत्रजन स्थिरिकारक सहचारी नत्रजन स्थिरिकारक फायटोस्टिम्युलेषन जैव नियंत्रण पोषक तत्व उदग्रहण
धान	*बुर्खोल्डेरिआ, एजोस्पिरिलम, बेसिलस, पैनीबैसिलस, ब्रेवंडिमोनस, सेराटिया, हर्बस्पिरिलम, जैंथोमोनस तथा स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस,*	लवण सहनशीलता फायटोस्टिम्युलेशन जैव नियंत्रण

गेहूँ	*एएमएफ कवक, ग्लोमस प्रजाति, बेसिलस सर्कुलन्स, बैसिलस सबटिलिस, क्लैडोस्पोरियम हर्बेरम, आर्थीबेक्टर प्रजाति, स्यूडोमोनस जेसेनी, स्यूडोमोनस सिंगेन्था, प्रोविदेंशिया प्रजाति, ऐनाबिना प्रजाति, कैलोथ्रिक्स प्रजाति तथा एजोस्पिरिलम ब्रासीलेंसे*	बायोफर्टीलाइजेसन लवण सहनशीलता जैव नियंत्रण
सोयाबीन	*सेराटिया प्रोटामाकूलेन्स, सेराटिया लिकैफिएन्स, ब्रैडिराइजोबियम जैपोनिकम, बेसिलस सबटिलिस , बैसिलस थुरिंजेंसिस, पैबिबैसिलसुरिजोफेसेर, पैनीबैसिलसफैविस्पोरस तथा ग्लोमसस एटोमिसस*	बायोफर्टीलाइजेसन लवण सहनवाष्पशीलता राइजोरेमेडिएषन
सेम	*राइजोबियम ट्रोपिसी, राइजोबियम एटलि, एजोस्पिरिलम ब्रासिलेंस, ग्लोमस सिनुओसम, गिगास्पोरा एल्बीडा, स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस, ट्राइकोडर्मा तथा एजोस्पिरिलम ब्रासीलेंसे*	बायोफर्टीलाइजेसन जैव नियंत्रण सिडेरोफोर उत्पादन
सभी फसलें	*एजोटोबैक्टर, एजोस्पिरिलम ब्रासीलेंसे, एजोस्पिरिलम लिपोफेरुम, बेसिलस पुमिलुस, बेसिलस सबटाइलस, बेसिलस सरेउस, बुर्खोल्डेरिआ, स्यूडोमोनास पुतिदा, स्यूडोमोनास फ्लूरेसेंस तथा राइजोबियम लेगुमिनोसोरम*	फाइटोस्टिम्युलेशन (पादप उत्तेजन) जैव नियंत्रण

पीजीपीआर द्वारा फसल वृद्धि की क्रियाविधियाँ

पीजीपीआर द्वारा फसल वृद्धि की विभिन्न क्रिया विधियाँ तथा उनका विवरण निम्न प्रकार है।

पोषक तत्वों का अधिग्रहण

मुक्त जीवी सहजीवी वायुमण्डलीय नत्रजन स्थिरिकारक जीवाणु नाइट्रोजीनेस एन्जाइम की सहायता से वायुमण्डलीय नत्रजन को अमोनिया में परिवर्तित करते हैं। इस प्रकार प्राप्त अमोनिया को पौधों द्वारा नत्रजन के स्त्रोत के रूप में उपयोग कर लिया जाता है। पी.जी.पी.आर. जीवाणु समूह के द्वारा फसलों में नत्रजन, फास्फोरस, कैल्शियम, पोटेशियम, आयरन, कॉपर मैंगनीज तथा जिंक इत्यादि पोषक तत्वों का अधिग्रहण काफी मात्रा में बढ़ जाता है। पोषक तत्वों का यह बड़ा हुआ अधिग्रहण सामान्यतः मूलरोम परिवेश (राइजोसफेयर) के अम्लीकरण द्वारा होता है तथा यह अम्लीकरण उपर्युक्त परिवेश में जैविक अम्लों के श्राणव के कारण होता है। इस प्रकार मृदा के पी.एच.मान में गिरावट के कारण पोषक तत्व अधिक घुलनशील अवस्था में पहुँच जाते हैं तथा फसलों द्वारा सुलभता से अवशोषित कर लिए जाते हैं।

तनाव सहिष्णुता

पी.जी.पी.आर. आबादी प्रदूषित स्थल पर प्रदूषित पदार्थों का अपघटन करने में सहायता प्रदान करती है जिसके फलस्वरूप विभिन्न प्राकृतिक वनस्पतियां दूशित स्थल पर आसानी से विकसित होती हैं। विभिन्न जीवाणुओं के समूह को वैज्ञानिक भाषा में जीवाणु कंसोर्टिया भी कहा जाता है। जीवाणु कंसोर्टिया का प्रत्येक साथी कैटाबोलिक क्षरण के विभिन्न भागों को पूरा कर सकता है। पौधे तनाव की स्थिति में एथिलीन के स्तर को बढाकर प्रतिक्रिया करते हैं जिससे कोशिका और पौधे की क्षति में वृद्धि होती है। एथिलीन की उच्च सांद्रता हानिकारक हो सकती है क्योंकि यह निष्पत्रण और अन्य कोशिकीय प्रक्रियाओं को प्रेरित करती है जो फसल के विकास को प्रभावित कर सकती हैं। कई पीजीपीआर एसीसी डीऐमीनेज एंजाइम के उत्पादन से 1–एमिनोसाइक्लोप्रोपेन–1–कार्बोक्जिपछेती, एथिलीन प्रणेता को नष्ट करते हैं जिससे एथिलीन का सांद्रण कम हो जाता है। इस प्रकार कम हुए एथिलीन स्तर के कारण फसलों का वृद्धि तथा विकास सहजता से होता है। इसके अतिरिक्त अन्य तनावों जैसे कि फाइटोपैथोजेनिक बैक्टीरिया, पोलीरोमैटिक

हाइड्रोकार्बन के प्रभाव, अत्यधिक लवणता और अनावृष्टि आदि से भी एसीसी डीऐमीनेज एंजाइम उत्पादकों द्वारा राहत मिलती है।

पादपोतेजना

विभिन्न प्रकार के पी.जी.पी.आर. फसलों की जड़ों की बनावट को परिवर्तित कर सकते हैं। ये जीवाणु विभिन्न पादप हार्मोन्स जैसे कि इण्डोल–3 ऐसेटिक एसिड, जिबरेलिन्स तथा साइटोकाइनिन इत्यादि को स्रावित करते हैं जो कि फसलों तथा अन्य पौधो में नई जड़ों की वृद्धि, कोशिका अपघटन तथा विस्तार कार्यो के लिए आवश्यक होते हैं। साथ ही साथ ये फसलों में जड़ों के पृष्ठ क्षेत्रफल को मूसला जड़तंत्र और अन्य पार्श्व जड़ों के निर्माण द्वारा भी बढ़ाते हैं। साइटोकाइनिन उत्पादन करने वाले प्रमुख जीवाणु वंशो में ऐजोटोबैक्टर, *राइजोवियम, रोडोस्पाईरीलम रूबरम, स्यूडोमोनास फ्लूओरेसेंन्स* तथा बेसिलस आदि प्रमुख है। कुछ राइजोबैक्टीरिया वाष्पशील जैव यौगिकों (VOCs) जैसे कि 2,3 ब्यूपनेडीओल, ऐसेरोइन, टरपिन्स, जेस्मोनेट्स इत्यादि का श्राव करके फसलों के वृद्धि एवं विकास को बढ़ाते हैं। वाष्पशील जैव यौगिकों का संश्लेषण पादय हार्मोन्स उत्पादन की तरह पी.जी.पी.आर. की विशिष्ट प्रजाति पर निर्भर करता है।

जैव नियंत्रण

विभिन्न पीजीपीआर स्ट्रेन फसलों के रोगकारक जीवों का जैव नियंत्रण करते हैं इस प्रकार वह अप्रत्यक्ष रूप से फसलों की वृद्धि तथा विकास को प्रभावित करते हैं। जीवाणु वंश जैसे कि बैसिलस, स्यूडोमोनास, सेराटिया, स्टैनोट्रोफोमोनास और स्ट्रेप्टोमीसेस और कवक वंश जैसे एंपेलोमिसेस, कॉनिथिरियम, और ट्राइकोडर्मा आदि फसलों में रोगकारक जीवों पर प्रतिपक्षी प्रभाव दिखाते हैं। ये जीवाणु समूह विभिन्न प्रतिपक्षी गतिविधियों जैसे कि प्रतिजैविक, विषैले तत्व और सतह–सक्रिय यौगिकों (बायोसर्फैक्टेंट्स) के उत्पादन के माध्यम से रोग जनित जीवों का अवरोधन, खनिजों, पोषक तत्वों और उपनिवेशन स्थलों के लिए प्रतिस्पर्धा आदि के द्वारा फसलों के रोगजनित जीवों को नष्ट करते हैं। उपरोक्त गतिविधियों के अतिरिक्त पीजीपीआर बाह्य कोशिका भित्ति विकृत करने वाले एंजाइम (1, 3–ग्लूकेनेस और काइटीनेस) के उत्पादन से भी फसलों के रोग जनित जीवों का उन्मूलन करने में सहायता करते हैं।

रोगप्रतिरोधन

पी.जी.पी.आर. प्रेरित प्रणाली गत प्रतिरोध (Induced systemic resistance) के द्वारा भी विभिन्न फसलों के रोगों का नियंत्रण करने में सहायक है। प्रेरित प्रणालीगत प्रतिरोध में कोई लाभदायक जीवाणु किसी हानिकारक जीवाणु, विषाणु या कवक के लिए फसलों में ही विरोधात्मक क्षमता उत्पन्न करने में सहायक होता है। इस प्रकार के सहायक जीवाणु तत्व को (इलीसिटर) कहा जाता है। ये इलीसिटर लाभदायक जीवाणु तथा फसलों की जडों के मध्य हुए सम्पर्क द्वारा श्रावित होता हैं। पौधों में यह रक्षात्मक गतिविधि इथाइलीन तथा जैसमोनिक एसिड संकेतन पर निर्भर करती है। कोशिका भित्ति में उपस्थित पॉलीसैकेराइड, सैलिसिलिक एसिड, प्रतिजैविक, साइक्लिक लिपोपेप्टाइड तथा सीडेरोफोर आदि विभिन्न इलीसिटर के उदाहरण हैं। पी.जी.पी.आर जैसे कि स्यूडोमोनास, बैसिलस, तथा एजोस्पाईरिलम आदि विभिन्न फसलों में प्रेरित प्रणालीगत प्रतिरोध प्रतिक्रिया दिखाते हैं।

सिडेरोफोर उत्पादन

सिडेरोफोर, आम तौर पर Fe^{3+} के साथ 1:1 समूह अथवा यौगिक बनाते हैं। इस प्रकार बने यौगिकों को जीवाणु कोशिका झिल्ली द्वारा अधिग्रहित कर लिया जाता है। जीवाणु कोशिका में Fe^{3+} को Fe^{2+} में अपचयित कर दिया जाता है तथा सिडेरोफोर द्वारा कोशिका में छोड़ दिया जाता है। पीजीपीआर सिडेरोफोर का उत्पादन करके फसलों की वृद्धि को बढ़ाता है जो रोगकारक जीवों को आयरन पोषण से वंचित रखता है तथा इस प्रकार आयरन तत्त्व की अनुपस्थिति में रोगकारक जीवों की विभिन्न उपापचीय क्रियाएं प्रभावित होती है और वे नष्ट हो जातें हैं, जिससे फसल की उपज में वृद्धि होती है। लौह तत्त्व के अतिरिक्त सिडेरोफोर अन्य धातुओं जैसे कि जिंक, कॉपर, कैडमियम, एल्युमीनियम तथा गैलियम इत्यादि के साथ भी स्थिर यौगिकों का निर्माण करते हैं जो पर्यावरण की दृष्टि से काफी हानिकारक हैं। मृदा में भारी धातुओं की उपस्थिति जीवाणुओं द्वारा सिडेरोफोर के उत्पादन को प्रेरित करती है। जीवाणु सिडेरोफोर विभिन्न धातुओं के चीलेटिंग कारक के रूप में कार्य करते हैं तथा फसलों के राइजोस्फीयर

(मूल परिवेश) में लोहे की उपलब्धता को विनियमित करते हैं। इस प्रकार के नियमन द्वारा फसलों में भारी धातुओं जैसे कि आर्सेनिक आदि की विषाक्तता को कम करने में मदद मिलती है। पीजीपीआर सूक्ष्मजीव धातु विषाक्तता की स्थिति में फसलों की ऑक्सीकरण रोधी (एंटीऑक्सिडेंट) एंजाइम गतिविधियों को बदलकर उनकी सहायता करते हैं।

जीवाणु एंडोफाइट्स तथा फसलों का विकास

जीवाणु एंडोफाइट्स सर्वव्यापी रूप से फसलों तथा अन्य पौधों के आंतरिक ऊतकों का उपनिवेष करते हैं, तथा विश्व में लगभग हर जगह पाए जाते हैं। कुछ एंडोफाइट्स राइजोस्फेरिक जीवाणु द्वारा उपयोग की गयी गतिविधियों जैसे कि फसलों की वृद्धि और विकास के लिए संसाधनों का अधिग्रहण तथा फसलों की वृद्धि और विकास का नियमन का उपयोग करके पौधे की वृद्धि को बढ़ावा देते हैं। जीवाणु एंडोफाइट्स (जीवाणु और कवक) हर पौधे की प्रजातियों में पाए जाते हैं। विश्व स्तर पर किये गए विभिन्न अध्ययनों के अनुसार एंडोफाइट्स के अभाव में फसलें तथा अन्य पादप जातियां रोगकारक जीवों और अन्य पर्यावरणीय तनावों के लिए अतिसंवेदन वाष्पशील हो जाती हैं। जीवाणु एंडोफाइट्स की विविधता विष्लेषण के अनुसार संघ प्रोटीओबैक्टीरिया (α, β, तथाγ–प्रोटीओबैक्टीरिया) मुख्य रूप से एंडोफाइट्स समूह के सदस्य हैं। इसके अतिरिक्त अन्य वर्ग जैसे कि फर्मीक्युट्स तथा एक्टिनोबैक्टीरिया भी एंडोफाइट्स के रूप में पाए जाते हैं। बैक्टीरियल एंडोफाइट्स की सबसे अधिक पायी जाने वाली प्रजातियों में स्यूडोमोनस, बैसिलस, स्टेनोट्रोफोमोनास, माइक्रोकॉकस, पैंटोआ, माइक्रोबैक्टीरियम, राइजोबिया, मेथिलोबैक्टीरियम और स्फिंगोमोनास आदि प्रमुख हैं।

किसानों को जैव उर्वरको की उपलब्धता

हमारे देश में सभी प्रकार के जैव उर्वरको को मिलाकर लगभग 4500 टन प्रति वर्ष उत्पादन किया जा रहा है। देश में सर्वाधिक जैव उर्वरकों का उत्पादन कृषि उद्योग निगम द्वारा किया जाता है तथा उसके साथ–साथ राज्य कृषि विभाग, राष्ट्रीय जैव उर्वरक विकास केंद्र, राज्य कृषि विश्वविद्यालय एवं निजी क्षेत्रों द्वारा भी इनका उत्पादन किया जाता है। राष्ट्रीय जैव उर्वरक विकास केंद्र गाजियाबाद में स्थित है तथा देश में इसके कुल छः क्षेत्रीय केंद्र स्थापित है। निजी क्षेत्र में भारतीय किसान उर्वरक निगम (इफको) सभी प्रकार के जैव उर्वरको का उत्पादन करता है और इसका लगभग सभी राज्यों में वितरण नेटवर्क स्थापित है। इसी प्रकार राष्ट्रीय उर्वरक सीमित भी सभी प्रकार के जैव उर्वरको का उत्पाद करती है। किसान भाई जैव उर्वरको विशेष रूप से राइजोबैक्टीरिया (पीजीपीआर) के लाभ तथा इनकी उपलब्धता की जानकारी के लिए कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केंद्र, इफको केंद्र, राज्य के कृषि विभाग इत्यादि में संपर्क कर सकते है। जैव उर्वरको को खरीदने के बाद उन्हे उचित विधि द्वारा ही उपयोग करना चाहिए जैसे कि बीजोपचार हेतु 500 मिलीलीटर पानी में 200 ग्राम जैव उर्वरक को मिलाकर 10 किलोग्राम बीज के उपचार के लिए प्रयोग करे और बीजो को छाया में सूखा ले। पौध के उपचार के लिए 1 किलोग्राम जैव उर्वरक को उचित मात्रा में पानी में मिलाकर विभिन्न फसलो की पौध को 30–40 मिनट से लेकर 8–10 घंटे तक घोल में डुबाकर उपचारित करके रोपाई करे। मृदा के उपचार के लिए 4 किलोग्राम जैव उर्वरक को 200 किलोग्राम कम्पोस्ट में मिलाकर बुवाई से पूर्व खेत में भुरकाव कर दें।

निष्कर्ष

विश्व स्तर पर किये गए चार दशकों के शोध से यह पता चल गया कि जड़ो में पाए जाने वाले सूक्ष्म जीव पौधो पर लाभकारी प्रभाव करते है। इसी प्रकार जैव उर्वरको के प्रयोग का फसलों के विकास पर लाभकारी प्रभाव पाया गया है। इसलिए जैव उर्वरको का उपयोग फसलों में अधिक उपज के साथ–साथ तनाव सहिष्णुता, जलवायु अनुकूलन, वातावरण की सुरक्षा तथा मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ाने हेतु करना चाहिए।

राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है।
– महात्मा गांधी

मृदा की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने के लिए संतुलित उर्वरको के प्रयोग का महत्व

निधि कम्बोज एवं दिनेष चौधरी
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
*संवादी लेखक का ई–मेलः dineshagmjrp@gmail.com

बढ़ती आबादी तथा प्राकृतिक संसाधनों एवं उपजाऊ भूमि का लगातार घटता स्तर न केवल भारतवासियों के लिए बल्कि विश्वभर के लिए घोर चिंता का विषय बना हुआ है। जनसंख्या में हो रही वृद्धि के अनुसार खाद्य उत्पादन में वृदि लाना भी आवश्यक है तथा उत्पादन में बढ़ोतरी लाने के केवल दो ही विकल्प है या तो अधिक भूमि को कृषि के अंतर्गत लाया जाये जो कि सिमित भूमि होने के कारण संभव नहीं या फिर भूमि की गुणवत्ता तथा उपजता को बढ़ाया जाये। हालाँकि यह सत्य है की हरित क्रांति को सफलतापूर्वक अपनाकर उत्पादन को बढ़ावा मिला है परन्तु इसमें अपनाई जाने वाली सघन कृषि प्रणाली से हो रहे दुष्परिणामों को भी नजर–अंदाज नहीं किया जा सकता। अधिक पैदावार के लिए उच्च उपज वाली किस्मो के चयन से उत्पादकता में तो वृद्धि हुई है किन्तु इन किस्मो की पोषक तत्वों की आपूर्ति के लिए मृदा तथा प्राकृतिक साधन पर्याप्त नहीं होने के कारण रासायनिक उर्वरको का प्रयोग आवश्यक हो गया है। असमान तथा अपर्याप्त मात्रा में रसायनिक उर्वरको का बड़े पैमाने पर प्रयोग करने से मृदा की गुणवत्ता तथा स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा है। उच्च विश्लेष्ण वाली उर्वरकों के लगातार प्रयोग से मुख्य तत्वों की तो पूर्ति होती है लेकिन यह उच्च विश्लेषण वाली उर्वरक मृदा में गौण एवं सूक्ष्म तत्वों की कमी होने का कारण बनती है। इसीलिए आज के समय में अधिक पैदावार के साथ साथ मृदा स्वास्थ्य एवं पर्यावरण की स्वच्छता बनाये रखने के लिए संतुलित मात्रा में उर्वरको इस्तेमाल अति आवश्यक है।

मृदा स्वास्थ्य

एक स्वस्थ मृदा से अभिप्राय मृदा की उस कुशल योग्यता से है जिसके फलस्वरूप मृदा पौधो की वृद्धि एवं विकास के लिए उचित मात्रा में पोषक तत्वों की आपूर्ति करवा कर फसलों के उत्पादन को अच्छा करे ओर साथ ही जीवो के अनुकूल वातावरण प्रदान करें ताकि उनकी संख्या एवं कार्यशीलता को उच्च स्तर तक ले जाया जा सकें ।

मृदा स्वास्थ्य के प्रमुख संकेतक

एक अच्छे मृदा स्वास्थ्य का होना ही इसकी उच्च उत्पादकता तथा उर्वरकता की बुनियाद है। मृदा स्वास्थ्य का स्तर इसके गुणों के आधार पर ज्ञात किया जा सकता है, जो कि इस प्रकार है

1. मृदा प्रतिक्रिया (यह मिटटी तथा इसके घोल में होने वाली अम्लीय, क्षारीय तथा उदासीन क्रियाओं से संबंधित है)
2. मृदा में पोषक तत्वों की सुलभता तथा समांजस्य दीर्घ समय तक बना रहना भी एक अच्छे मृदा स्वास्थ्य को दर्शाता है
3. मिटटी में कार्बनिक पदार्थ की अवस्था तथा स्तर से भी मृदा स्वास्थ्य का आंकलन होता है
4. सूक्ष्म जीवो की मिटटी में उपस्थित संख्या तथा उनकी गतिविधियॉ भी एक अच्छे मृदा स्वास्थ्य का संकेत देती है
5. मिटटी का स्वास्थ्य इसके भौतिक गुणों पर भी आधारित होता है

फसलों की संभाविक उत्पादन को प्राप्त ना कर पाने के लिए जिम्मेदार कारण

1. फसलों की किस्मो के अनुसार उनके पोषक तत्वों की मांग का पूरा ज्ञान न होना तथा मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों के स्तर की जानकारी न होना फसलों के उत्पादन को बढ़ने नहीं देती
2. अंधाधुंध तथा असंतुलित तरीके से उर्वरको के प्रयोग के कारण
3. मिट्टी में गौण एवं सूक्ष्म तत्वों का अभाव होना

4. सही समय तथा सही विधि से उर्वरको का प्रयोग ना होना
5. लम्बे समय से चले आ रहे फसल–चक्र में कोई तबादला न होने से मिट्टी की गुणवत्ता तथा उपजता का प्रभावित होना एवं कीटों के संकम्रण का बढ़ना
6. बढ़ते हुए खरपतवारों का समय से नियंत्रण न हो पाना
7. भू–जल के स्तर का गिरना ओर उचित जल प्रबंधन का अभाव होना
8. मिटटी में जैविक खाद का कम प्रयोग करने से कार्बनिक पदार्थ में गिरावट आ जाना
9. मिटटी में लवणीयता एवं क्षारीयता जैसी समस्याओं का बढ़ना भी फसलों के पैदावार को प्रभावित करता है

उर्वरको का अनिश्चित तथा असंतुलित उपयोग पौधो को अपने जीवन काल को पूरा करने के लिए मुख्यतः सत्रह आवश्यक पोषक तत्वों की जरूरत होती है। ये सभी पोषक तत्व तीन अलग अलग श्रेणियों में विभाजित किये गए है जैसे आधार–भूत कार्बन, हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन जिसे पौधा जल तथा वायु के माध्यम से प्राप्त करता है। अन्य तत्व मुख्य, गौण और सूक्ष्म श्रेणी के अंतर्गत आते है, जिन्हे उनकी पौधो में जरूरत की मात्रा के अनुसार जाना जाता है। मुख्य पोषक तत्वों में नत्रजन, फॉस्फोरस तथा पोटैशियम सम्मलित है। गौण में गंधक तथा कैल्शियम आते है। उपरोक्त उल्लेखित पोषक तत्व पौधें को अधिक मात्रा में चाहिए होते है, परन्तु सूक्ष्म तत्वो की बहुत कम मात्रा ही पौधो के लिए आवश्यक है। इन सूक्ष्म पोषक तत्वों में जस्ता, बोरोन, मैंगनीज, कॉपर, लोह, मोलीब्डनम, क्लोरीन तथा निकल धातु आते है।

विभिन्न फसलों में इन पोषक तत्वों की मांग के अनुसार उर्वरको के संतुलित तथा पर्याप्त मात्रा में आवेदन से आपूर्ति की जाती है। आमतौर पर अनाज की फसलों में नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाशियम वाली उर्वरको के प्रयोग का अनुपात 4:2:1, दलहनी फसलों में 1:2:1 एवं सब्जी वाली फसलों में 2:1:1 होना चाहिए, किन्तु दुर्भाग्यवश वर्तमान आकंड़ो के अनुसार यह अनुपात बिगड़कर 6–7:2–4:1 हो गया है। यही नहीं बल्कि कुछ कृषि प्रधान राज्यों जैसे पंजाब एवं हरियाणा में यह अनुपात बढ़ कर 31–4:8–0:1 तथा 27–7:6–1:1 हो गया है। इस प्रकार असमान ढ़ग से रासायनिक उर्वरको का प्रयोग मिटटी की उपजाऊ शक्ति को समाप्त करके उसे बंजर बनाता जा रहा है।

रसायनिक उर्वरको के असमान तथा असंतुलित प्रयोग से होने वाले दुष्प्रभाव

1. फसलों की पैदावार को बढ़ाने के लिए लगातार बढ़ते उर्वरको के असंतुलित प्रयोग से किसी एक तत्व की मात्रा मिटटी में अधिक हो जाती है, जिसके फलस्वरूप यह अन्य तत्वों की उपलब्धता को भी प्रभावित करती है। मिटटी में विभिन्न प्रकार के तत्व आपस में एक दूसरे से भिन्न–भिन्न तरीको से प्रभावित होते है। कुछ तत्व अन्य तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाने में सहायक होते है, तो वहीं कुछ तत्वों की अधिक मात्रा अन्य तत्वों की उपलब्धता को कम कर देती है उद्धारण के तोर पर फॉस्फोरस की अधिक मात्रा जस्ते की उपलब्धता को प्रभावित करती है।
2. कुछ रासायनिक उर्वरको के अनियमित तथा असंतुलित प्रयोग से मिटटी में लवणीय, क्षारीय तथा अम्लीय जैसी समस्या उत्पन्न होती जा रही है। जिससे मिटटी की उर्वरकता का दोहन होता है ।
3. आवश्यकता से अधिक उर्वरक का उपयोग कृषि लागत को भी बढ़ाता है ओर उर्वरक की दक्षता को भी कम करता है
4. मिट्टी की जाँच किये बिना ही उर्वरको का अंधाधुंध प्रयोग होने से विशेष रूप से नत्रजन तथा फॉस्फोरस वाली उर्वरको से कई प्रकार से हानि होने का खतरा बना रहता है जैसे नत्रजन की अधिक मात्रा होने पर इसका या नाइट्रेट के रूप में निथर (लीचिंग) हो जाना या फिर अमोनियम के रूप में वाष्पीकरण के कारण क्षति होना। ऐसे ही फॉस्फोरस के मिटटी में इकट्ठा हो जाने से या अचल रूप में तब्दील हो जाता है तथा पोधो को प्राप्त नहीं हो पाता है।
5. इसी प्रकार अधिक तथा अनिश्चित रूप से किया गया उर्वरकों का प्रयोग भू जल, नदियों तथा सरोवरों के पानी को भी प्रदूषित करते जा रहा है।
6. यही नहीं उर्वरकों के अवशेष भी मिटटी एवं पौधे के

माध्यम से खाद्य श्रृंखला में प्रवेश कर जाते है तथा मनुष्यों एवं पशुओं के स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव डालते है ।

7. नत्रजन की अधिक मात्रा पौधे की रोग प्रतिरोधक क्षमता को कम कर देती है और उसे अधिक रसदार बना कर कीटों के अधिक संक्रमण के अनुकूल बना देती है। दलहनी फसलों में भी नत्रजन के अधिक मात्रा में प्रयोग से वायुमंडलीय नत्रजन स्थिरीकरण प्रक्रिया के लिए पौधों की जड़ो में ग्रंथि निर्माण पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

8. इन रासायनिक उर्वरकों के अत्याधिक प्रयोग से मिटटी में हुए इनके जमाव के कारण इनकी विषाक्तता का प्रकोप बढ़ रहा है, जिससे न केवल मिटटी की उपजता प्रभावित हो रही है बल्कि मिटटी में उपस्थित मित्र कीट जैसे केंचुआ एवं अन्य सूक्ष्म जीव भी विलुप्त होते जा रहे है।

9. रासायनिक उर्वरको का अनुचित उपयोग पर्यावरण प्रदूषण को भी बढ़ाता है उर्वरकों में विभिन्न रासायनिक पदार्थ जैसे कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रोजन के ऑक्साइड, अमोनिया इत्यादि उपस्थित होते है, जो पर्यावरण में उत्सर्जित हो कर ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा में काफी हद तक वृद्धि कर देते है जो कि भू–मण्डलीय ताप वृद्धि और जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार है। वास्तव में नाइट्रस ऑक्साइड जो नत्रजन का एक गौण उत्पादक है, कार्बन डाइऑक्साइड के बाद तीसरा सबसे महत्वपूर्ण ग्रीनहाउस गैस है।

अतः हमे मिट्टी की गुणवत्ता एवं उर्वरकता के साथ साथ पर्यावरण की स्वच्छता को बरकरार रखने के लिए संतुलित तथा आवश्यकता अनुसार ही उर्वरको का प्रयोग करना चाहिए।

कुछ ध्यान देने योग्य बातें

1. हमे फसलों के चयन को ध्यान में रखते हुए उनके अनुकूल सिफारिश की गयी मात्रा में ही उर्वरको का प्रयोग करना चाहिए।

2. अनाज वाली फसलों में नत्रजन और जस्ते की वहीं दलहनी फसलों में फॉस्फोरस एवं कैल्शियम की आवश्यकता अधिक होती है। तिलहनी फसलों में पोटाशियम, फॉस्फोरस एवं गंधंक की अधिक मांग होती है।

3. मिटटी की उपजाऊ क्षमता तथा पोषक तत्वों के स्तर की जानकारी के लिए फसल बुवाई से पहले मिटटी का परीक्षण करना अनिवार्य है

4. हमे केवल रासायनिक उर्वरकों पर निर्भर न रहकर अन्य कार्बनिक खादों एवं फसल अवशेषों को भी पोषक तत्वों की आपूर्ति के लिए मिटटी में सम्मलित करना चाहिए ।

5. फसलों की अधिक पैदावार तथा उर्वरकों की दक्षता को बढ़ाने के लिए उर्वरकों को सही समय पर सही मात्रा, सही प्रयोग विधि तथा फसलों के अनुसार ही प्रयोग करना चाहिए।

6. नत्रजन उर्वरक का प्रयोग एक साथ न करके फसल के पुरे जीवनकाल के दौरान विभिन्न अंशो में बाँट कर करना चाहिए। 1/3 भाग बुवाई के समय तथा अन्य बचा हुआ भाग सिंचाई के साथ प्रदान करना चाहिए।

7. मिटटी में फॉस्फोरस तथा पोटाशियम का स्वभाव अचल है इसलिए इन तत्वों की उर्वरको को बुवाई के समय ही बीज के नीचे मिटटी में दबा देना चाहिए ताकि ये तत्व आसानी से पौधे की जड़ों तक पहुँच जाये। सूक्ष्म तत्वों का घोल बनाकर छिड़काव करना उचित रहता है।

हिन्दी उन सभी गुणों से अलंकृत है जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में समासीन हो सकती है।

– राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

फसलों में उपज बढ़ाने के लिए जरूरी नुक्शे

सतपाल सिंह[1], विपुल बेनिवाल[1] एवं नवीन राव[2]
[1]भाकृअनुप– केन्द्रिय कपास अनुसंधान केन्द्र, क्षेत्र कार्यालय सिरसा, (हरियाणा)
[2]हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार, (हरियाणा)
*संवादी लेखक का ई–मेलः satpalsingh070@gmail.com

कृषि के क्षेत्र में लगातार नयी तकनीकों का आगमन हो रहा हैं। अतः किसान सभी प्रकार की फसलें जैसें– अनाज, दलहन, तिलहन, सब्जियां आदि से प्रति एकड अच्छी पैदावार लेने के लिए निम्नलिखित नुक्शे को अपनी दैनिक कृषि क्रियाओं में शामिल करके इनकी उपज में ऐच्छिक वृद्धि कर सकते हैं

बिजाई से पहले ध्यान देनें योग्य बातें–

1. किसान अपने खेत की मिटटी का परीक्षण करवायें और मिट्टी की अनुकुलता के अनुसार फसलों का चयन करें।
2. शहरों के नजदीकी क्षेत्रों में फल, फूल व सब्जियों की खेती करें। ताकि समय पर इनको बाजार में पहुचाया जा सकें।
3. फसल चक्र को ध्यान में रखकर फसलों का चुनाव करें।
4. शुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में मिश्रित खेती को अपनायें एवं कम अवधि वाली फसलों का चुनाव करें।
5. फसलों के चयन बाद अच्छे उत्पादन के लिए उन्नत किस्मों, जो कीट एवं रोग रोधी हों, का चुनाव करें।
6. चुनाव की गई उन्नत किस्मों का प्रमाणित बीज प्रमाणित संस्था से ही खरीदें।
7. फसलों के प्रमाणित बीजों को राईजोबियम कल्चर, कीटनाशी, फंफूदनाशी से उपचारित करके ही बुवाई करें।
8. ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करना ना भुलें।
9. गोबर की खाद डालने के बाद 2–3 अच्छी जुताई कर खाद मिटटी में मिला दें ।
10. मृदा स्वास्थ्य कार्ड के हिसाब से सन्तुलित मात्रा में खाद व उर्वरक बिजाई पूर्व डालें।
11. अपनी सभी प्रकार की फसलों की बिजाई समय पर करें।
12. बीज की मात्रा कृषि विभाग की सिफारिश के अनुसार रखें।

बिजाई के बाद ध्यान देनें योग्य बातें–

1. फसलों की बुवाई उचित नमी होने पर कतारों में करें व कतार से कतार की दूरी कृषि विभाग की सिफारिश के अनुसार रखें।
2. ढलान वाली भूमि पर फसलों की बुवाई ढाल के समानान्तर यानि टेढ़ी दिशा में करें।
3. सुबह–शाम को खेत का निरीक्षण अवश्य करें।
4. आपातकालीन दशाओं से बचने के लिए सभी फसलों का बीमा अवश्य करवायें।
5. फसलों में निराई–गुडाई समय से कर देनी चाहिए। यदि खरपतवारों की समस्या अधिक है तो रासायनिक खरपतवारनाशी का छिड़काव करें।
6. फसलों की सिंचाई नियमित अन्तराल से करतें रहें और सिंचाई की अच्छी सुविधा नही होने पर फसल की क्रान्तिक अवस्थाओं पर सिंचाई अवश्य करें।
7. फल, फूल व सब्जियों की खेती में बूंद–बूंद व फव्वारा सिंचाई विधि का प्रयोग कर पानी की बचत कर सकतें हैं।
8. कीट निगरानी एवं नियंत्रण के लिए खेत में प्रकाश पाश (लाईट ट्रेप) व फिरोमोन पाश (फिरोमोन ट्रेप) लगायें।
9. कीट एवं बीमारी नियंत्रण के लिए जैविक रसायनों का ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल करें तथा कीटनाशकों का उपयोग कृषि विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें।

फसल प्रबन्धन व सामान्य निर्देश–

1. आधुनिक खेती के रूप में फल, फूल व सब्जियों की खेती पोलीहाउस या ग्रीनहाउस में करें।
2. किसान भाई अपने द्वारा उपयोग किये जाने वाले सभी आदानों का तिथि अनुसार रिकार्ड रखें।
3. फसलों में किसी भी प्रकार की समस्या पर नजदीकी कृषि विभाग कार्यालय में सम्पर्क करें।
4. कृषि विभाग कार्यालय के अलावा भी किसान भाई अपने फोन से 18001801551 नम्बर पर कृषि विशेषज्ञों से जानकारी ले सकतें हैं।
5. समय समय पर कृषि विभाग, कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केन्द्र व अन्य केन्द्रीय व राजकीय अनुसंधान संस्थानों के प्रर्दशनी प्लाट का भ्रमण कर नयी–नयी तकनीकों के बारें में जानकारी लेते रहें।
6. कृषक व कृषि से संबन्धित विभागों द्वारा लगायें जाने वाले किसान मेले व किसान गोष्ठी में भाग लेकर अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करें।

आप जिस तरह बोलते हैं, बातचीत करते है, उसी तरह लिखा भी कीजिए। भाषा बनावटी नहीं होनी चाहिए।

– महावीर प्रसाद द्विवेदी

हिन्दी आज साहित्य के विचार से रूढ़ियों से बहुत आगे है। विश्व साहित्य में ही जाने वाली रचनाएँ उसमें हैं।

– सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

संरक्षित खेती: टिकाऊ कृषि उत्पादन एवं स्वस्थ मृदा के लिए एक बेहतर विकल्प

सी.एम. परिहार[1], दीप मोहन महला[2], बी.एस.जाट[2], मुकेष चौधरी[2] एवं एस. एल. जाट[2]
[1]भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली
[2]भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब)
*संवादी लेखक का ई–मेलः pariharcm@gmail.com

संरक्षित कृषि प्रौद्योगिकियां दीर्घकालिक कृषि का भविष्य हैं। विभिन्न कृषि क्षेत्रों और किसान समूहों में संरक्षित कृषि के लाभ अतिसूक्ष्म–स्तर (मृदा गुणों में सुधार) से लेकर सूक्ष्म–स्तर (कम उत्पादन लागत, कृषि आय में वृद्धि) और दीर्घ–स्तर (गरीबी से मुक्ति, खाद्य सुरक्षा में सुधार, वैश्विक तपन में कमी) तक हो सकते हैं।

गत कई दशकों से फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए खेती में संसाधनों का अत्यधिक और असंतुलित प्रयोग किया गया। परिणामस्वरूप आज स्थिति यह है कि हमारे संसाधनों की गुणवत्ता और मात्रा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। जो कि हमारे पारिस्थितिकी तंत्र एवं खाद्य सुरक्षा के लिए एक खतरा है। परंपरागत खेती के कारण भूमि के उपजाऊपन एवं फसल उत्पादों की गुणवत्ता में कमी, मृदा में पोषक तत्वों का ह्रास, भूजल स्तर में निरंतर गिरावट और खेतों में खरपतवारों का बढ़ता प्रकोप जैसी समस्याएं उत्पन्न हो गयी हैं। इसके अलावा खेती में बढ़ती उत्पादन लागत और घटती आय चिंता का विषय बनी हुई है। अतः हमें प्राकृतिक संसाधनों के उचित प्रबंधन के प्रति सजग होने की आवश्यकता है। इस स्थिति में संरक्षित खेती का नाम उभर कर सामने आता है।

संरक्षित खेती से तात्पर्य संसाधन संरक्षण की ऐसी तकनीक से है जिसमें अच्छी फसल की पैदावार का स्तर बनाए रखने के साथ–साथ संसाधनों की गुणवत्ता भी बनी रहे ताकि वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ–साथ भावी पीढ़ियों के लिए भी एक बेहतर वातावरण सुनिश्चित किया जा सके। संरक्षित खेती मुख्यतः तीन सिद्धांतों– न्यूनतम जुताई, फसल अवशेषों का मृदा सतह पर स्थायी आवरण, एवं फसल चक्र विविधीकरण पर आधारित है।

न्यूनतम जुताई

संरक्षित खेती पद्धति के अंतर्गत यांत्रिक भू–परिष्करण केवल मिट्टी में बीज एवं खाद डालने हेतु ही किया जाता है। जबकि परंपरागत खेती के अंतर्गत निरंतर जुताई करने से मृदा में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों का ऑक्सीकरण अधिक होता है जिससे मृदा में इनकी कमी हो जाती है। कार्बनिक पदार्थ मृदा के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये एक महत्वपूर्ण अवयव है। अतःमृदा की न्यूनतम जुताई करने से मृदा में जैविक प्रक्रिया के द्वारा स्थायी मृदा संरचना का निर्माण होता है।

फसल अवशेष का मृदा की सतह पर स्थायी आवरण

संरक्षित खेती का दूसरा मुख्य एवं महत्वपूर्ण सिद्धांत है मृदा सतह पर स्थायी रूप से फसल अवशेषों का आवरण बनाये रखना। फसल अवशेषों का आवरण मृदा को वायु व जल द्वारा होने वाले क्षरण से बचाता है व साथ ही साथ फसल अवशेष कार्बनिक पदार्थ के मुख्य स्रोत भी होते हैं जो मृदा के स्वास्थ्य को उत्तम बनाये रखने के लिये आवश्यक है। वाष्पीकरण से होने वाली जल की हानि को बचाने के साथ खरपतवार को न उगने से भी सतह पर रखे फसल अवशेष मदद करते है। इसके अलावा यह अवशेष मृदा की सतह पर होने के कारण मृदा के भीतर एवं फसल के आस–पास सूक्ष्म जलवायु के तापक्रम एवं वातावरण को सामान्य बनाये रखते हैं। इस तरह खेती की यह पद्धति वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं।

फसल चक्र विविधीकरण

फसल चक्र में अपनाई गई हर फसल की जुताई, पानी एवं पोषक तत्वों की जरूरत, कीटों–बीमारियों का प्रकोप एवं

रसायनों का प्रयोग अलग–अलग होता है। इसलिए फसल चक्र में विविधीकरण विभिन्न जैविक बाधाओं से निपटने में मदद करता है तथा मृदा की उर्वरा शक्ति में भी सुधार लाता है। हर एक फसल चक्र में एक दलहनी फसल का समावेश (दाने वाली या हरी खाद हेतु) करना चाहिये। फसल विविधीकरण से कम लागत में अधिक लाभ कमाया जा सकता है।

भारत में संरक्षित खेती

भारत में संरक्षित खेती तकनीकी गंगा के मैदानी क्षेत्रों में धान–गेहूं फसल प्रणाली के अंतर्गत 23 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में अपनाई जा रही है जिसका प्रमुख कारण यह है कि परंपरागत विधि से धान की फसल के बाद गेहूं की खेती करने से बुआई में अधिक विलंब होता है इसलिए वहां शून्य जुताई से गेहूं की खेती काफी प्रचलित है। हमारे देश में अभी भी पूर्ण संरक्षित खेती अर्थात् जो संरक्षित खेती के तीनों सिद्धांतों पर आधारित हो, का क्षेत्रफल कम है। नवीन कृषि यंत्रों जैसे कि हैप्पी सीडर और डबल डिस्क प्लांटर के आने व परंपरागत खेती की समस्याओं ने कृषकों का ध्यान संरक्षित खेती की ओर खींचा है जिससे यह अनुमान है कि आने वाले समय में संरक्षित खेती का दायरा गंगा के मैदानी क्षेत्रों में धान–गेहूं फसल पद्धति तक सीमित न रहकर अन्य क्षेत्रों में भी बढ़ेगा। इसके अलावा प्रायद्वीपीय भारत के आंध्र प्रदेश, तेलंगाना एवं तमिलनाडु में धान के बाद 1.5 लाख हेक्टेयर में शून्य जुताई मक्का की खेती की जा रही है जिसकी उत्पादकता काफी अधिक हैं।

संरक्षित खेती के लाभ

किसी भी प्रक्षेत्र में फसल अथवा फसल प्रणालियों का प्रबंधन वहां पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों एवं प्रबंधन तकनीकियों के अनुसार करना आज के समय की जरूरत बन गयी है। संरक्षित खेती के अंतर्गत अधिक क्षेत्रफल लाने के लिए इससे मिलने वाले लाभों के प्रति जागरूकता बढ़ानी होगी। इससे मिलने वाले लाभ निम्न प्रकार हैं:–

1. आर्थिक फायदे

भूमि की निम्न उर्वरा शक्ति, भू–जलस्तर में गिरावट, कृषि मजदूरों में कमी व कृषि आयातों की बढ़ती कीमतों की वजह से पारम्परिक खेती के अन्तर्गत उत्पादन खर्च में वृद्धि व शुद्ध लाभ में कमी हो रही है। परम्परागत खेती के अंतर्गत लगभग 4–5 बार ट्रेक्टर द्वारा जुताई की जाती है परंतु संरक्षित खेती में शून्य जुताई या कम से कम जुताई की जाती है, जिससे ईंधन व श्रम की बहुत कम आवश्यकता पड़ती है। जबकि दूसरी ओर संरक्षित खेती को अपनाकर पारम्परिक खेती की तुलना में 25–30 प्रतिशत तक समय, ईंधन व मजदूरी की बचत की जा सकती है तथा खर्च को लगभग 4000–5000 रुपये प्रति हेक्टेयर तक आसानी से कम किया जा सकता है।

2. सिंचाई जल की बचत

आज के समय में जब जल की उपलब्धता एक बड़ी चुनौती है तो संरक्षित कृषि एक वरदान साबित हो सकती है। फसल अवशेषों का मृदा की सतह पर स्थायी आवरण मृदा

चित्र 1 भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, एंव भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के प्रक्षेत्र पर संरक्षित खेती तकनीक द्वारा विगत दस वर्षों से विभिन्न फसलों का सफल उत्पादन किया जा रहा है।

की नमी में उतार–चढ़ाव, पानी के वाष्पीकरण एवं अपवाह को कम करता है। लेजर लेवलिंग कराकर संरक्षित खेती अपनाने पर और भी अधिक जल की बचत की जा सकती है। संरक्षित खेती के अंतर्गत यदि खेत में पर्याप्त नमी हो तो बीजाई से पूर्व पलेवा करने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती तथा बीजाई के बाद भी कम पानी की आवश्यकता होती है। इस खेती में बचत किए गए जल से और अधिक कृषि क्षेत्र सिंचाई के अंतर्गत लाया जा सकता है।

3. मृदा उर्वरा शक्ति में सुधार

खेत में बार–बार जुताई से मिट्टी में सूक्ष्म जीवों की संख्या कम हो जाती है, परिणामस्वरूप कार्बनिक पदार्थों का विघटन एवं पौधों हेतु पोषक तत्वों की उपलब्धता प्रभावित होती है। संरक्षित कृषि में मृदा सतह पर फसल अवशेषों का आवरण बना होने से मृदा सतह का वातावरण लाभकारी व मृदा सूक्ष्म जीवों के लिये अनुकूल हो जाता है जिससे उनकी संख्या में वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप फसल अवशेषों का विघटन होता है और जिससे मृदा में कार्बनिक पदार्थों का स्तर बढ़ता है। कम जुताई मृदा कार्बनिक पदार्थों को बेहतर संचित करती है, जिसके परिणामस्वरूप मृदा उर्वरता एवं मृदा संरचना में सुधार तथा फसलों में गहरी जड़ों का विकास होता है।

4. मृदा क्षरण, बीमारियों, कीटों व खरपतवारों की रोकथाम हेतु उपयोगी

पारंपरिक कृषि में अपरदन और संघनन प्रक्रियाओं के कारण मृदा का क्षरण एक गंभीर समस्या है। संरक्षित खेती में भूमि की सतह पर स्थायी रूप से फसल अवशेषों का आवरण बना होने के कारण न केवल खरपतवारों के अंकुरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है बल्कि यह आवरण मिट्टी की संरचना को बारिश की बूंदों से होने वाले नुकसान से भी बचाता है। जिससे मृदा का अपरदन नहीं होता। धान–गेहूं फसल पद्धति में संरक्षित खेती अपनाने से गेहूं की बीजाई अक्टूबर महीने के अंतिम सप्ताह से शुरू कर सकते हैं जिसके कारण फसल में खरपतवार का प्रकोप कम होता है क्योंकि बीज अंकुरण के समय वातावरण का तापमान 20 डिग्री सेल्सियस से अधिक होता है। अक्टूबर का बोया हुआ गेहूं पकने के समय तापन तनाव (टर्मिनक हीट स्ट्रेस) से भी बच जाता है और अधिक उपज देता है। संरक्षित खेती में फसल विविधीकरण अपनाने से मृदा स्वास्थ्य में सुधार के साथ–साथ फसलों में होने वाली बीमारियों, कीटों व खरपतवारों की रोकथाम होती है। संरक्षित खेती पद्धति भूमि के ऊपरी व निचली सतह की प्राकृतिक जैविक क्रियाओं को बढ़ावा देती है।

5. संरक्षित पर्यावरण

फसल अवशेषों में आग लगाने से न केवल वातावरण प्रदूषित होता है बल्कि जो पोषक तत्व फसल अवशेषों में होते हैं वे भी नष्ट हो जाते हैं। सतह पर छोड़े गए फसल अवशेष हवा से होने वाले मिट्टी के कटाव को कम करते हैं जिससे हवा में धूल की मात्रा कम होती है तथा वायु की गुणवत्ता में सुधार होता है। कम जुताई मिट्टी में कार्बन को कार्बनिक पदार्थों के रूप में बाँधने में सहायक होती है जिससे वायुमंडल में कार्बन डाइ ऑक्साइड की मात्रा भी कम हो जाती है। इसलिए यदि संरक्षित खेती के तीनों सिद्धांतों को पूर्ण रूप से अपनाया जाये तो शुरू के 2–3 वर्षों में फसलों की उपज परम्परागत कृषि पद्धति के समान ही प्राप्त होती है परंतु बाद के वर्षों में फसलों की उपज परम्परागत खेती की तुलना में अधिक प्राप्त होती है। अतः टिकाऊ कृषि उत्पादन हेतु संरक्षित खेती संभवतः एक सषक्त विकल्प साबित हो सकता है।

6. फसल गहनता में बढ़ोतरी

संरक्षित कृषि करने से जुताई में होने वाले समय एवं अन्य संसाधनों (पानी,डीजल इत्यादि) से ग्रीष्मकालीन दलहन (मूंग, उर्द, लोबिया) इत्यादि की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। ये फसलें आमदनी के साथ–साथ मृदा स्वास्थ्य में व्यापक सुधार करती हैं। अतः फसल गहनता बढाने हेतु संरक्षित खेती एक सुगम उपाय है।

भारत में, नीति सलाहकारों और वित्तीय संस्थानों को जागरूक करके संरक्षित कृषि की अवधारणा को विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों के साथ एकीकृत किया जा सकता है। किसानों द्वारा व्यापक रूप से अपनाए जाने के लिए संरक्षित कृषि के लाभों को सभी हित धारकों को प्रभावी ढंग से बताने करने की आवश्यकता है।

"शून्य जुताई (और संरक्षित कृषि) को अपनाने के लिए बहुत सारे बदलाव आवश्यक हैं लेकिन सबसे बड़ा बदलाव जरूरी है मानसिकता में।" – फ्रैंक डीजस्ट्रा

जलवायु परिवर्तनः विनाश की ओर बढ़ते कदम

राघवेन्द्र कुमार एवं संगीता श्रीवास्तव
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)
*संवादी लेखक का ई–मेलः raghwendkumar@gmail.com

बे–मौसम की गर्मी, सर्दी, बरसात तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं से जनमानस त्रस्त है। कृषि कार्य में भी मौसम तथा जलवायु परिवर्तन का व्यापक असर देखा जाता है। कृषि कार्य में लागत खर्चों में निरंतर बढ़ोत्तरी, जबकि उत्पादन में गिरावट देखने को मिलती है। पिछले 150–200 वर्षों में जलवायु परिवर्तन में तेजी आने के फलस्वरूप प्राणी तथा वनस्पति जगत के आपसी सामंजस्य बैठा पाने में कठिनाई हो रही है। परिवर्तन के इस दौर में कहीं न कहीं मानवीय क्रिया–कलाप इस बात के लिए महत्वपूर्ण रूप से जिम्मेदार है। अंधाधुंध औद्योगीकरण, प्रदूषण, वनों का विनाश, जल, संरक्षण का अभाव, नदी–नालो ंको काटकर कुकुरमुत्ते की तरह फैल रहे शहरीकरण, ढेरसारे कारणों ने सम्पूर्ण जैविक अस्तित्व को विनाश के कगार पर ला खड़ा कर दिया है।

हमारी धरती के जलवायु परिवर्तन के लिए अनेक प्राकृतिक कारण जिम्मेदार हैं जैसे महाद्वीपों का निरंतर खिसकना, ज्वालामुखी, समुद्री तरंगें तथा पृथ्वी का घुमाव आदि। पृथ्वी के महाद्वीपों की रचना के लिए समुद्र का प्रमुख योगदान है। द्वीपों के भाग प्रायः समुद्र की सतह पर तैरते रहते है। वायु तथा अन्य प्राकृतिक दबाव के प्रभाव से इनका खिसकना निरंतर गतिमान होता है। समुद्र की तरंगें, वायु प्रवाह, तथा जलसंग्रहण से जलवायु में परिवर्तन देखने को मिलता है। पेड़–पौधे, फल–फूल तथा जीव–जंतु के जीवन–चक्र निरंतर प्रभावित होते हैं।

जलवायु परिवर्तन का दूसरा सब से प्रमुख कारण ज्वालामुखी से फूटकर निकलने वाली हानिकारक गैस जैसे सल्फरडाईऑक्साइड, मिथेन इत्यादि तथा राख, धूलकण, पानी इत्यादि है। इनसे वातावरण में सूर्य की किरणों का मार्ग अवरूद्ध होता है, तथा तापमान घटने लगता है। पृथ्वी का झुकाव 23.5 डिग्री के कोण से बढ़ने तथा घटने से जलवायु परिवर्तन होता है। अधिक झुकाव से अधिक गर्मी एवं अधिक सर्दी और कम झुकाव का मतलब कम गर्मी एवं साधारण सर्दी माना जाता है। समुद्र की सतह पर सूर्य की किरणें दोगुनी दर से अवशोषित होती है। किरणों के प्रभाव से निरंतर ऊष्मा का संचार होता है, जो लहरों के माध्यम से सम्पूर्ण पृथ्वी पर फैलती है। इस से जलवायु में परिवर्तन के क्रमबद्ध प्रक्रिया बनने तथा बिगड़ने से तापमान में परिवर्तन होने लगता है और प्राणी एवं वनस्पति जगत के विकास में असंतुलन देखने को मिलता है।

प्राकृतिक कारक के अलावा अनेक मानवीय कारक जलवायु परिवर्तन को प्रभावित करते हैं। सूरज की तेज किरणों के माध्यम से धरती की सतह गर्म तथा जीवन के लिए अनुकूल होती हैं। जब ऊर्जा का संचार वातावरण से होकर गुजरता है तो लगभग 30 प्रतिशत ऊर्जा वातावरण में ठहर जाती है। हाँलाकि इस प्रक्रिया में ऊर्जा का कुछ भाग पुनः धरती के चमकीली सतह (पर्वत, बालू, समुद आदि) के जरिए परिवर्तित होकर पुनः वातावरण में वापस चला जाता है। वातावरण में विद्यमान अनेक गैस जैसे कार्बन डाई ऑक्साइड, मिथेन, नाईट्रसऑक्साइड तथा जलकण इत्यादि जो वातावरण में एक प्रतिशत से भी कम मात्रा में उपस्थित होते हैं, पृथ्वी के चारों तरफ एक परत–सी बना लेती है। इनके अंदर ऊष्मा ,ऊर्जा के संरक्षण से पृथ्वी जीव धारियों के लिए अनुकूल वातावरण पैदा करता है। वैज्ञानिक शब्दावली में इसे ग्रीन हाउस प्रभाव कहा जाता है। इसे सबसे पहले फ्रांस के वैज्ञानिक जीन वैप्टिस्टफुरियर ने प्रतिपादित किया था। ग्रीनहाउस गैसों की मोटी परत पृथ्वी की उत्पत्ति के समय से इस पर विद्यमान है। मानवीय क्रिया–कलापों के फलरवरूप अत्यधिक गैस के बनने से यह परत दिन प्रति दिन मोटी सतह में परिवर्तित होने लगी है। ऊर्जा प्राप्ति हेतु कोयला, जीवाश्म तेल, प्राकृतिक गैस के निरंतर उपयोग से कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा

दिनों दिन बढ़ती चली जा रही है। पेड़–पौधों को काटने तथा नष्ट करने से संचित कार्बन डाई ऑक्साइड वातावरण में फैल रही है जो जलवायु परिवर्तन के लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार है। कृषि कार्यों में वृद्धि एवं औद्योगिक कार्य में जमीन तथा प्राकृतिक संसाधन का दोहन, मिथेन तथा नाईट्रस ऑक्साइड गैस के प्रभाव को बढ़ा देता है। मानव जीवन की सुख–सुविधा के लिए शीतलीकरण के दौरान उत्सर्जित होने वाले क्लोरोफ्लोरो कार्बन तथा ऑटोमोबाइल से निकलनेवाले धुएँ से पृथ्वी के ऊपर ओजोन परत में छिद्र हो रहे हैं। इनसे सामान्यतः वैश्विक तापमान तथा जलवायु परिवर्तन जैसे परिणाम देखने को मिल रहे हैं।

मानवीय जीवन पर जलवायु परिवर्तन से नकारात्मक प्रभाव देखने को मिलता है। एक रिपोर्ट के अनुसार 19वीं सदी के बाद पृथ्वी की सतह का सकल तापमान लगभग 3 से 6 डिग्री तक बढ़ गया है। तापमान में लगातार हो रही वृद्धि से खेती पर सबसे अधिक नकारात्मक प्रभाव पड़ने की संभावना है। खरीफ तथा रबी फसलों के उत्पादन में उचित तापमान तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों की नितांत आवश्यकता पड़ती है। बढ़ती जनसंख्या के दबाव से भोजन की मांग में वृद्धि होती जा रही है। जलवायु परिवर्तन का सीधा असर कृषि पर पड़ेगा क्योंकि तापमान, वर्षा तथा मृदा संरचना में बदलाव से कीटाणु जनितव्याधियाँ, नाशी कीटप्रकोप में दिनों दिन बढ़ोत्तरी देखने को मिलती है। इस दशा में चावल, मक्का, गेहूँ, दलहन आदि मानवीय जीवन के लिए उपयोगी खाद्य वस्तुओं की कमी बढ़ने लगेगी। दूसरी तरफ बाढ़, सूखा तथा अन्य अजैविक प्रकोप से मानव एवं वनस्पति जगत के बीच सामंजस्य स्थापित करने में विनाशक स्थिति उत्पन्न होने की पूरी संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता।

एक रिपोर्ट के अनुसार जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप समुद्र के जलस्तर में वृद्धि होने की संभावना है। ग्लेशियरों के पिघलने से जलस्तर में लगातार बढ़ात्तरी हो रही है। कई छोटे–छोटे द्वीप जलमग्न हो रहे है। जलीय जीव–जंतु के अस्तित्व खतरे में आ गए है। सुनामी, बाढ़, तूफान से कई तटीय क्षेत्रों में जीवन यापन मुश्किल होता जा रहा है। शहरों की घनी आबादी में जल भराव, भू–स्खलन तथा हृदय विदारक महामारी के फैलने से मानव जीवन त्रस्त होता जा रहा है। संक्रामक बीमारी, कुपोषण ,स्वच्छता तथा अन्य संकट के पीछे जलवायु परिवर्तन ही प्रमुख कारण है। समय रहते इस समस्या पर सरकार तथा जन मानस में जागरूकता लाने की नितांत आवश्यकता है। वनों की कटाई पर प्रतिबंध, वृक्षारोपण, कृषि व्यवस्था को प्रकृति के अनुकूल करना, जल संसाधन का समुचित रख–रखाव, औद्योगिक विस्तार को नियंत्रित करना जैसे ढेरों दीर्घकालीन उपायों के साथ ही वैश्विक स्तर पर पर्यावरण संरक्षण के लिए कठोर कानून बनाना नितांत आवश्यक है। .....तो क्या जलवायु परिवर्तन से मानवीय विनाश की ओर बढ़ते कदम को रोक पाना आज के दौर की सबसे प्रमुख वैश्विक चुनौती है ? क्या जवाब है आपका!

हिंदी भारतीय संस्कृति की आत्मा है।

– कमलापति त्रिपाठी

फसलों की जंगली प्रजातियां एवं जलवायु परिवर्तन अनुकूलन

ममता सिंह एवं विकेंदर कौर
भाकृअनुप–राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली
*संवादी लेखक का ई–मेलः email: mamta.singh@icar.gov.in

फसलों की जंगली प्रजातियों में संभावित मूल्यवान कारकों का भंडार होता है। इनमें से कई लक्षण हैं जो जलवायु परिवर्तन अनुकूलन के लिए प्रासंगिक हैं। फसलों की ये जंगली प्रजातियां पहाड़ों, रेगिस्तान, घास के मैदानों, नमकीन दलदलों एवं वर्षावनों सहित एक विस्तृत निवास श्रंखला में वितरित हैं। इन जंगली प्रजातियों में विविध जलवायु परिस्थितियों में जीवित रहने के लिए कई अलग–अलग रणनीतियों का विकास किया है। ऐसे आनुवंशिक कारक जो इन जंगली प्रजातियों को विभिन्न एवं कभी कभी अत्यधिक कठोर परिस्थितियों में पनपने की अनुमति देतें हैं, और जलवायु परिवर्तन के सन्दर्भ में पौधे के प्रजनन के लिए एक मूल्यवान संसाधन का प्रतिनिधित्व करते हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण सूखे की आवृत्ति बढ़ने, सूखे की गंभीरता बढ़ने, फसलों के उत्पादन के समय तापमान वृद्धि, तटीय क्षेत्रों में मृदा की लवणता में वृद्धि एवं कीटों व बीमारियों के प्रसार में वृद्धि होने का अनुमान है। जंगली प्रजातियां जलवायु परिवर्तन में महत्वपूर्ण योगदान कर सकती हैं, यदि इनके पास ऐसी विशेषता उपलब्ध हो जो फसलों को जलवायु परिवर्तन के कारण बदलती परिस्थियों में अधिक अनुकूल एवं लचीला बनातीं हैं, उदहारण के लिए टमाटर, चना, जौ, धान व गेहूं इत्यादि की फसलों में इनकी जंगली प्रजातियों में सूखे को सहन करने के लिए कारकों की खोज की गई है। इसी प्रकार लवणीय मृदा की सहिष्णुता के लिए जिम्मेदार कारकों की खोज धान की जंगली प्रजाति *ओरिजा कोरक्ताता* एवं जंगली सूरजमुखी की प्रजातियां *हेलिएन्थस पैराडॉक्स* में की गई है। कई जंगली प्रजातियों में कीटों की सहिष्णुता के लिए लक्षण उपलब्ध पाए गए हैं। जंगली प्रजातियां जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिए फसलों को कम कार्बन सघन रूप से विकसित करने के लिए प्रेरित करते हैं (मुख्यतः अंतःकारी उपयोग की दक्षता में वृद्धि के माध्यम से)। उदाहरण के लिए फसलों में नाइट्रोजन उपयोग दक्षता बढ़ने के लिए इनकी जंगली प्रजातियों से लक्षणों को हस्तानान्तरित किया गया है, जो जलवायु परिवर्तन अनुकूलन के लिए उपयोगी हैं सदैव जलवायु परिवर्तन के कारण होने वाली समस्याओं के लिए हल प्रदान करते हैं क्योंकि ऐसे लक्षण फसलों को कमियों के बावजूद अधिक उपज प्रदान करने वाले होते हैं। कुल मिलाकर, पर्याप्त निवेश के साथ फसलों की जंगली प्रजातियों में जलवायु परिवर्तन अनुकूलन में महत्वपूर्ण योगदान करने की क्षमता है। इसके साथ ही यह जंगली प्रजातियां कम कार्बन अर्थव्यवस्थाओं को अधिक लचीला बनाने में मदद कर सकती हैं। निम्नलिखित कुछ उदहारण हैं जो जलवायु परिवर्तन के खतरे से होने वाले कुप्रभावों को कम करके कृषि क्षेत्रों में अपना प्रभाव डाल सकतें हैं।

1. कम व अनियमित वर्षा के कारण सूखे की आवृत्ति व गंभीरता में वृद्धि के साथ पृथ्वी के कई हिस्सों में सिंचाई के पानी की उपलब्धता में कमी होने की आशंका है। सूखे के लिए सहनशील फसलों की खेती जलवायु परिवर्तन के प्रक्षेप्य में कृषि के लिए अति आवश्यक हैं। अतः वैज्ञानिकों ने दुरम गेहूं, ट्रिटिकम डायकोकम एवं इस प्रजाति के अन्य जंगली वंशजों में सूखा सहिष्णुता के लिए समृद्ध आनुवंशिक विविधता की पहचान की है। इस प्रकार की प्रजातियां सूखे के लिए अनुकूल कारकों को फसल प्रजनन में उपयोग करने का एक अच्छा श्रोत हैं।
2. आलू का उत्तरभावी अंगमारी रोग एक बहुत ही व्यापक रोग है जिसने 2009 में यूनाइटेड स्टेट में लगभग 3.5 मिलियन डॉलर मूल्य की आलू फसल को नष्ट कर दिया था। लगभग 1830 से 1840 के बीच में यह रोग एक महामारी के रूप में यूरोप पहुंचा और 1845 में यूरोप की समस्त आलू की फसल नष्ट हो गई तथा आयरलैंड द्वीप में आलू की फसल नष्ट हो जाने के कारण अकाल की स्थिति उत्पन्न

हो गई और लोग आलू खाने से बीमार पड़ने लगे। सौभाग्य से जंगली आलू की प्रजातियां जिनमें सोलानम डेमीसम, सोलानम बलबुकस्टोम, *सोलानम स्टॉलोनिफेराम* एवं *सोलानम वेरुकोसम* शामिल हैं, जो कि इस बीमारी के लिए प्रतिरोधक जीन का एक समृद्ध श्रोत साबित हुए हैं।

3. फसलों की वृद्धि के समय यदि तापमान बढ़ता है तो यह फसलोत्पादन को कम कर सकता है। धान की फसल विशेष रूप से तापमान के दुष्प्रभाव के लिए संवेदनशील है। पेंग व उनके साथियों ने 2004 में बताया है की धान की फसल की वृद्धि के समय प्रति 1 डिग्री सेल्सियस तापमान बढ़ने से फसल के उत्पादन में 10 प्रतिशत तक की कमी आ जाती है। पुनः धान के जीनपूल में उपलब्ध जंगली प्रजाति *ओरिजा ओफ्फिसिनालिस* में प्रातःकाल में जल्दी पुष्पन होने वाला लक्षण उपलब्ध है। वैज्ञानिकों ने इस लक्षण की कार्यप्रणाली की पहचान करके इसे कई संवर्धित धान की किस्मों में हस्तानांतरित किया है ।

4. सूरजमुखी की जंगली प्रजातियां लवण सहिष्णुता का प्रतिरोधक गुण प्राप्त करने का एक अच्छा श्रोत हैं। हलिएन्थस पराडोक्सस नामक सूरजमुखी की जंगली प्रजाति खारी मिट्टी के लिए विशेष रूप से अनुकूल है और नमकीन दलदली मृदा में जो सूरजमुखी की अन्य किस्में लगाने के लिए अक्षम हैं, यह जंगली प्रजाति ऐसी दशा में उगने के लिए सक्षम हैं। सूरजमुखी के प्रजनन कार्यक्रम में इस प्रजाति का उपयोग करके लवणीय मृदा में सूरजमुखी द्वारा लगभग 25 प्रतिशत की अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है। किन्तु यह चिंता का विषय है कि *हलिएन्थस पराडोक्सस* को अमरीका के प्रजाति अधिनियम एक्ट के तहत लुप्तप्राय प्रजातियों में सूचिबद्धध किया गया है जो पशुओं की चराई एवं आक्रामक प्रजातियों के कारण असुरक्षित है।

जलवायु परिवर्तन के कारण खतरे में आने वाली जंगली प्रजातियों को पहचानने और इन्हें प्रभावी ढंग से संरक्षित करने के लिए अधिवास संरक्षण तो महत्वपूर्ण होगा ही किन्तु साथ ही ऐसी प्रजातियां जो विस्तृत क्षेत्रों की सीमा में विलुप्त हो सकती हैं उन्हें जीन बैंक में संगृहीत एवं समावेश करने को प्राथमिकता देनी चाहिए।

अपनी मातृभाषा बंगला में लिखकर मैं बंगबन्धु तो हो गया, किन्तु भारतबन्धु मैं तभी हो सकूँगा जब भारत की राष्ट्रभाषा में लिखूंगा ।

– बंकिम चन्द्र चट्टोपाय

प्राकृतिक संसाधन नियोजनः कृषक आय बढोतरी में सहायक

रजनी जैन, सोनिया चौहान एवं मंगल सिंह चौहान
भाकृअनुप– राष्ट्रीय कृषि आर्थिकी एवं नीति अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
*संवादी लेखक का ई–मेलः sonia.chauhan@icar.gov.in

भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है। स्वतन्त्रता के सात दशक बाद भी लगभग 60 प्रतिशत आबादी अपनी जीविकापार्जन के लिए कृषि पर ही निर्भर है। समय परिवर्तन के साथ भारतीय कृषि ने भी कई परिवर्तन देखे है, परन्तु किसानों की दशा मे कुछ खास बदलाव नही आया है। भारतीय सरकार, अनुसंधान कर्मी और अर्थ शास्त्री किसानों की आर्थिक स्थिति की समीक्षा करते रहते है और उनकी स्थिति में सुधार को कार्येरत है। मौजूदा भारतीय सरकार भी किसानों की दशा तथा आय बढ़ाने को प्रयासरत है। इसी दिशा में 2020 तक किसानों की आय दुगनी करने का लक्ष्य भी रखा गया है। इसके अंतर्गत अनेक योजनाएँ जैसे मृदा स्वास्थ्य कार्ड, फसल बीमा योजना आदि को शामिल किया गया है। किसानों की आय बढ़ाने को अनेक तकनीकियों और प्रणालियों को अपनाने पर भी जोर दिया जा रहा है। जल एवं मृदा उपयोग नियोजन भी इसी का हिस्सा है।

मृदा नियोजन

भूमि उपयोग नियोजन पृक्रिया मे सर्वप्रथम मृदा की जांच कर उसकी प्रकृति को देखा जाता है कि मृदा अम्लीय, क्षारीय या लवणीय है। फिर इस बात को समझा जाता है कि किस प्रकार के पोषक तत्वो को मिलाने से इसकी गुणवत्ता को बढ़ाया जा सकता है। जैसे अगर मृदा अम्लीय है तो मृदा में चूना मिलाने से उसकी उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है। अगर मृदा क्षारीय है तो उसमे कई पोषक तत्वो जैसे लोहा, जिंक कॉपर, मैगनिज आदि की कमी हो सकती है जिसे जिप्सम और जैविक खाद मिलाकर पूरा किया जा सकता है। इसी प्रकार मृदा की प्रकृति को जानकर उसमे किस फसल की पैदावार ज्यादा हो सकती की जानकारी भी किसानों को दी जाती है। इस दिशा मे सरकार ने फरवरी 2015 में मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना का शुभ आरंभ किया। इस योजना के तहत हर किसान को उसके खेत की मिट्टी की जांच कर मृदा स्वास्थ्य कार्ड दिया जा रहा है जिससे किसान अपनी मिट्टी को जानकर उसमे आवश्यक सुधार कर सकते है। मृदा में पोषक तत्वो की कमी और अधिकता की जानकारी होने पर किसान भाई मृदा विशेषकों से अपनी मिट्टी के स्वास्थ्य को सुधारने की सलाह ले कर अधिक उपज ले अपनी आय बढ़ा सकते है। इससे एक तरफ खेती मे प्रयोग होने वाले अनावश्यक रसायनिक खाद पर अंकुश लगेगा जिससे मृदा और जल का स्वास्थ्य बना रह पाएगा और दूसरी तरफ उत्पाद सामग्री पर होने वाले खर्चे मे भी कमी आयेगी । मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के तहत दस करोड़ से अधिक स्वास्थ्य कार्ड बाटें जा चुके है।

जल नियोजन

प्राकृतिक संसाधन नियोजन के अंतर्गत केवल मृदा का ही नही अपितु जल के उचित नियोजन के सुझाव भी किसानों को बताए जाते है। आईआईटी द्वारा किया गया एक अधध्यन दिखाता है कि वर्ष 2005 से 2013 तक भारत के उत्तरी और पूर्वी राज्यों (असम, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिमी बंगाल) में उपयोग योग्य भूजल मे काफी गिरावट दर्ज की है जिसके फलस्वरूप भयंकर सूखा, खाद्यान संकट और पीने योगय जल की कमी का खतरा बढ़ रहा है। अधिक खाद्यान उत्पादन में अत्यधिक भूजल के प्रयोग के कारण भूजल स्तर खतरे के निशान तक पहुँच गया है इसलिए समय की मांग है कि कौन सी फसल मे कब–कब और कितना पानी देने की आवश्कता है के बारे में भी बताया जाता है। "पर ड्रॉप मोर क्रॉप" अर्थात हर बूंद पर ज्यादा फसल की नीति अपनाने की जानकारी उपलब्ध कराई जाती है। सिंचाई के नवीनम तरीके जैसे फव्वारा सिंचाई और बूंद–बूंद सिंचाई के साथ ही सरकार द्वारा मिलने वाली सबसिडी का ज्ञान भी किसानों को दिया जाता है। कुछ प्रदेशों मे धान– गेहूं फसल

चक्र के कारण भू–जल स्तर चिंतनीय अवस्था में पहुँच गया है। घटते जल स्तर को ध्यान मे रखते हुए कम जल खपत वाली फसलों का विकल्प भी सुझाया जाता है।

समेकित कृषि

किसानो की आय मे बढ़ोतरी के लिए समेकित कृषि पर भी जोर दिया जाता है। इसमें एक फसल पर निर्भर न रहते हुए अंतर फसले लेने पर जोर दिया जाता है। इससे अगर एक फसल खराब भी हो जाए तो दूसरी फसल से उसकी भरपाई की जा सकती है। इस योजना मे इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि किसानो को सालभर रोजगार मिलता रहे इसलिये कृषि के साथ–साथ मवेशी पालन, वानिकी, बागवानी तथा मत्स्य पालन को समायोजित करने के सुझाव भी मुहाएया कराये जाते हैं। खेती के साथ किन लघु उद्योगो को किसान अपना सकते हैं और खेत के पास ही उपज (उत्पाद) को संसाधित कर उसका मूल्य संवर्धित कर अधिक आय कमा सकते है। इस योजना मे किसानों को सामाजिक तौर पर अपनाये जा सकने वाले और आर्थिक तौर पर प्रभावी सुक्षाव दिये जाते हैं। भारत के कई गावों के किसान इस योजना से लाभान्वित हो रहे है तथा उनके जीवन स्तर में सुधार हो रहा है।

कटाई उपरांत प्रसंस्करण एवं बाजार ज्ञान

इस योजना मे केवल प्राकृतिक संसाधनों के नियोजन के बारे में ही नही बताया जाता अपितु अधिक मुनाफे के लिए विभिन्न मंडियों के भावों की जानकारी भी दी जाती है। "जो बिके वो उगे" का ज्ञान भी किसानों के साथ साझा किया जाता है। इसके साथ ये बताया जाता है की किसान खेती के साथ साथ कौन कौन से लघु उद्योग अपनाकर अपना मुनाफा बढ़ा सकते है। जैसे दलहन फसलों के साथ ही उन्हे साफ कर पेकिंग का काम किया जा सकता है। कई तरह के अचार बना कर उनकी बिक्री की जा सकती है जो निश्चित तौर पर फलो सब्जियों के नुकसान को तो कम करेगा ही, रोजगार बदने मे भी मददगार होगा।

जानकारी स्रोत

इस दिशा मे किसानों को मदद देने के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की विभिन्न संस्थान काम कर रहे हैं। भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान द्वारा जारी हेल्पलाइन का उपयोग किसान भाई सहज ही कर सकते है। भूमि उपयोग नियाजन और फसलों से संबन्धित जानकारी किसान आईसीएआर के 109 संस्थानों से प्राप्त कर सकते है। ये संस्थान विभिन्न फसलों, मवेशी पालन, वानिकी, बागवानी और मत्सय पालन से संबंधित शोध करते है। मृदा के बारे में सभी तरह की जानकारी और सुझाव राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग संस्थान से लिए जा सकते है। इसके अलावा राज्य तथा केंद्र कृषि विश्वविद्यालय कृषि आधारित कोर्सेस कराते है और किसानों को जागरूक करते है। हर जिले के कृषि विज्ञान केंद्र भी किसानों की हर तरह से सहायता करते है किसान भाई वहाँ से भी मदद और जानकारी ले सकते हैं।

निष्कर्ष

किसान जो भारतीय अर्थ वयवथा की रीढ़ माने जाते रहे हैं। अगर वे आर्थिक रूप से मजबूत होंगे तो अर्थव्यवस्था भी प्रगति के पथ पर अग्रसर होगी। इसके लिए आवश्यक है कि एक तरफ सीमित प्राकृतिक संसाधनों को बचाया जाए और उनके अत्यधिक दोहन पर अंकुश लगे और दूसरी तरफ किसानों की आय मे बढोतरी हो। मृदा तथा जल के नियोजन से दो तरफा लाभ लिया जा सकता है। आवश्यकता है किसान मृदा की जांच करवाएं, उस समझे और कृषि विशेषज्ञों के निर्देशों का पालन करे तो निश्चित तौर पे उनकी आय मे बढोतरी संभव है।

अपनी मातृभाषा बंगला में लिखकर मैं बंगबन्धु तो हो गया, किन्तु भारतबन्धु मैं तभी हो सकूँगा जब भारत की राष्ट्रभाषा में लिखूंगा ।

– बंकिम चन्द्र चट्टोपाय

मृदा कार्बन प्रच्छादन : जलवायु परिवर्तन की स्थिति में खाद्य सुरक्षा हेतु समाधान

अमरेश चौधरी[1], अल्का रानी[2] एवं योगेश्वर सिंह[1]
[1]भाकृअनुप – राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रेस प्रबंधन संस्थान, बारामती, (महाराष्ट्र)
[2]भाकृअनुप – भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल, (मध्यप्रदेश)
*संवादी लेखक का ई–मेलः amu8805@gmail.com

सारांश

कृषि के मुख्यतः तीन प्रमुख स्तम्भ हैं– मिट्टी, पानी और बीज। परंतु गत कुछ दशकों में परंपरागत कृषि तकनीकों जैसे अत्यधिक जुताई, रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग एवं जैविक खाद के कम उपयोग, इत्यादि के कारण मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट आई है। मृदा में उपस्थित जैविक कार्बन उसके प्राणों के समान है, जो मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों को बनाए रखने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जलवायु परिवर्तन एवं वैश्विक ऊष्मीकरण ने जैविक कार्बन की ह्रास की दर को और अधिक गति प्रदान की है, जिस कारण मिट्टी की उर्वरता घट रही है। अतः मृदा की गुणवत्ता को बनाए रखने एवं कार्बन प्रच्छादन को बढ़ाने के लिए अनुशंसित प्रबंधन विधियों को अपनाने की अत्यंत आवश्यकता है। अतः संरक्षण खेती, एकीकृत पोषक तत्वों का प्रबंधन, बंजर एवं निम्न कोटि की भूमि को उपजाऊ बनाना, मृदा अपरदन की रोकथाम, सिंचाई प्रबंधन एवं एकीकृत कृषि प्रणाली जैसी अनुशंसित प्रबंधन विधियों को अपना कर किसान फायदा भी कमा सकते हैं एवं पर्यावरण का संरक्षण करने में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। वैज्ञानिकों के एक अनुमान के अनुसार अगर हम इन अनुशंसित प्रबंधन विधियों के द्वारा मृदा में 1 टन कार्बन की मात्रा को बढ़ाते हैं, तो फ़सलों की उपज में 20 से 40 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर तक की वृद्धि संभव हो सकती है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कार्बन प्रच्छादन जलवायु परिवर्तन की समस्या के समाधान के साथ– साथ खाद्य सुरक्षा को बढ़ाने एवं हमें एक बेहतर भविष्य प्रदान करने में भी सक्षम है।

आज पूरा विश्व जलवायु परिवर्तन एवं वैश्विक ऊष्मीकरण (ग्लोबल वार्मिंग) की समस्या का शिकार हो रहा है। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन खाद्य सुरक्षा के लिए सबसे बड़ी चुनौती के रूप में प्रकट हुआ है और हमारे किसान इससे सबसे ज्यादा प्रभावित हो रहे हैं। आज किसानों को भविष्य को ध्यान में रखते हुए जलवायु परिवर्तन से बचने के लिए तैयार होने की अत्यंत आवश्यकता है। जलवायु परिवर्तन के कारण भविष्य में हमें कई प्रकार की समस्याओं जैसे अनियमित वर्षा, सूखा, बाढ़, आदि का सामना करना पड़ सकता है। इन सबका कृषि उत्पादकता पर हानिकारक प्रभाव पड़ सकता है। अतः हमें ऐसी कृषि की आवश्यकता होगी जो कि हमारे प्राकृतिक संसाधनों जैसे कि मृदा एवं पानी का समुचित संरक्षण करें, कृषि द्वारा उत्पन्न ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को भी कम करें और कार्बन प्रच्छादन के द्वारा वायुमंडलीय कार्बन को मृदा में लंबे समय तक संरक्षित रखें। इन बातों को ध्यान में रखते हुए विश्व खाद्य संगठन ने जलवायु सहिष्णु कृषि तकनीक के विकास पर ज़ोर दिया है। इसके अंतर्गत कृषि उत्पादन की उन विधियों की पहचान एवं कार्यान्वयन करना है, जो भविष्य के असामान्य जलवायु के जोखिम को कम करें एवं अच्छी उपज दें। इन उत्पादन विधियों (अनुशंसित प्रबंधन विधियों) में ना केवल वर्तमान परिस्थितियों का सहज करने की क्षमता, बल्कि भविष्य में होने वाली समस्याओं का मजबूती से सामना करने वाला होना चाहिए।

जलवायु परिवर्तन का मृदा में उपस्थित कार्बन से संबंध

मृदा में मौजूद कार्बन का वायुमंडलीय तापमान के साथ बहुत गहरा संबंध है। बढ़ते ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा से वायुमंडलीय तापमान में वृद्धि से मृदा में मौजूद जैविक कार्बन के ह्रास की दर तीव्र हो जाती है, जिससे मृदा में उपस्थित कार्बन की मात्रा तेजी से घटने लगती है। इसलिए विश्व के

उन भागों में जहां तापमान अधिक है, वहां जैविक कार्बन की मात्रा कम पाई जाती है और ठंडे प्रदेशों में जैविक कार्बन की मात्रा अधिक पाई जाती है। औद्योगिकरण, शहरीकरण एवं जीवाश्म ईंधन के प्रयोग से हाल के कुछ दशकों में ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा में भारी वृद्धि हुई है। ग्रीन हाउस गैसों में मुख्यतः कार्बन डाई ऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड, मीथेन एवं क्लोरो फ्लोरो कार्बन आते हैं। इन गैसों के उत्सर्जन का मुख्य स्रोत जीवाश्म ईंधन का जलना, कृषि अपशिष्ट एवं फसल अवशेषों का जलना, वनों की कटाई, खेतों की अत्यधिक जुताई एवं रासायनिक उर्वरकों का अंधाधुंध प्रयोग, चारागाह एवं वनों का कृषि भूमि में परिवर्तन, आदि शामिल हैं। मृदा में मौजूद जैविक कार्बन के अपघटन से मृदा से निकलने वाले कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा और तीव्रता से बढ़ रही है, जो जलवायु परिवर्तन के संकट को और गहरा करती जा रही है। वैज्ञानिकों ने अपने अध्ययन में यह पाया है कि विश्व के कृषि योग्य भूमि से आधा से दो तिहाई गुना तक जैविक कार्बन का ह्रास हुआ है, जो मुख्यतः मृदा के कुप्रबंधन एवं अत्यधिक जुताई का परिणाम है। अतएव, कृषि भूमि पर अनुशंसित प्रबंधन पद्धतियों (चित्र 2) को अपनाने से ना केवल पर्यावरण पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा, बल्कि हमारी खाद्य सुरक्षा एवं प्राकृतिक संसाधनों जैसे कि जलवायु एवं मृदा की गुणवत्ता में भी सुधार होगा ।

मृदा कार्बन प्रच्छादन

मृदा कार्बन प्रच्छादन का तात्पर्य है, वायुमंडल में मौजूद कार्बनडाइऑक्साइड को बहुत लंबे समय तक कार्बनिक पदार्थों के रूप में मृदा में संग्रहित करना एवं वायुमंडल में उसकी मात्रा को कम करना है। इस संदर्भ में मृदा प्रबंधन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सीधे तौर पर कहा जाए तो भूमि कार्बनडाइऑक्साइड का स्रोत एवं अवशोषक दोनों की तरह कार्य करता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम उसका प्रबंधन कैसे कर रहे हैं। अगर हम भूमि का प्रबंधन उसकी उपयोगिता के आधार पर करेंगे, तो भूमि कार्बन के अवशोषक के रूप में कार्य करेगी। भूमि का कार्बन अवषोषक होने का मतलब है कि विभिन्न अनुशंसित कृषि विधियों के द्वारा भूमि कार्बन पदार्थ की मात्रा में बढ़ोतरी करना। भूमि का कुप्रबंधन उसे एक औद्योगिक मशीन की तरह बना देगी जो वातावरण में कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा को बढ़ाते रहेगी। मृदा में कार्बन प्रच्छादन करने की सामान्य विधि में मुख्यतः खेतों में पलेवा का प्रयोग करना, न्यूनतम जुताई, एकीकृत पोषक तत्वों का प्रबंधन, समन्वित कीट प्रबंधन एवं प्रिसिषन खेती है। अत्यधिक जुताई के द्वारा भी कार्बनिक पदार्थों की मात्रा कम होती है, जिससे मिट्टी में संरक्षित जैविक कार्बन वायुमंडल के संपर्क में आती है एवं सूक्ष्मजीवों द्वारा उनका अपघटन तीव्र होता है। इसके साथ ही जुताई मिट्टी को भुरभुरी बना देती है, जिससे मृदा अपरदन की समस्या भी बढ़ जाती है।

पारंपरिक एवं अनुशंसित प्रबंधन विधियों के बीच का तुलनात्मक अध्ययन

पारंपरिक विधियां	अनुशंसित प्रबंधन विधियां
1. फसल अवशेषों को जलाना एवं अवशेषों को खेतों से हटाना	1. फसल अवशेषों का पलेवा के रूप में प्रयोग करना
2. खेतों की अत्यधिक जुताई	2. संरक्षण एवं न्यूनतम जुताई
3. फ़सलों के ना होने पर उन्हें परती छोड़ देना	3. आवरण फसलों का प्रयोग
4. लगातार एक ही फसल का उत्पादन	4. फसल चक्र का प्रयोग
5. केवल रसायनिक उर्वरकों का अधिकतम प्रयोग	5. समन्वित पोषक तत्वों का प्रयोग
6. सिंचाई हेतु भारी मात्रा में जल का प्रयोग	6. नई विधियों जैसे कि फुहारा एवं टपक सिंचाई तकनीक का प्रयोग
7. रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग	7. समेकित कीट प्रबंधन

मृदा में मौजूद जैविक कार्बन का महत्व

मृदा में मौजूद जैविक कार्बन उसके आत्मा की तरह है। जिस प्रकार शरीर से आत्मा के निकल जाने से उसकी मृत्यु हो जाती है, उसी प्रकार मिट्टी से कार्बनिक पदार्थों का क्षय उसके गुणवत्ता को कम करती है। जैविक कार्बन मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों को प्रभावित करता है (चित्र. 1)। मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की प्रचुर मात्रा होने पर मृदा की जलधारण क्षमता बढ़ती है, जो भूमि के जल स्तर को बढ़ाने के लिए अत्यंत आवश्यक है। मृदा में उपस्थित जैविक कार्बन उसकी जैव विविधता को भी प्रभावित करती है। यह कार्बनिक पदार्थ उन सूक्ष्मजीवों का मुख्य भोजन होता है जो मृदा में मौजूद अपशिष्ट को सड़ा–गलाकर उनमें मौजूद पोषक तत्वों को पौधों के लिए उपयुक्त रूप में परिवर्तित करते हैं एवं मृदा की उर्वरता को भी बढ़ाते हैं। इसके अतिरिक्त मृदा में मौजूद सूक्ष्मजीव विभिन्न प्रकार के कार्बनिक पदार्थों का निर्माण करते हैं, जो कि मृदा के स्वास्थ्य एवं फ़सलों की उत्पादकता को बढ़ाने में सहायक होते हैं।

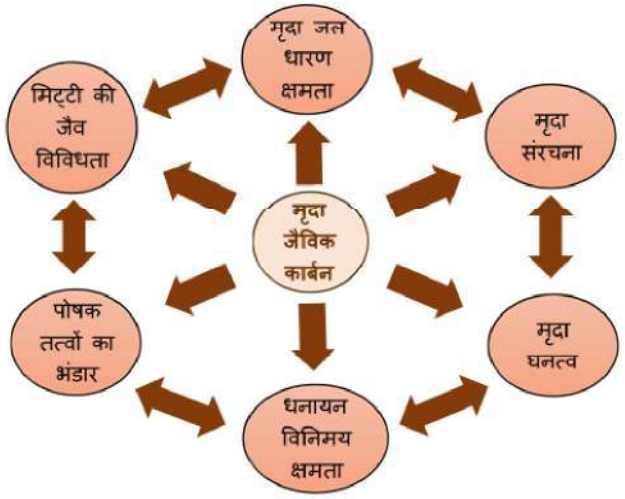

चित्र 1 मृदा में मौजूद जैविक कार्बन का महत्व

कार्बन प्रच्छादन हेतु मृदा प्रबंधन की प्रमुख विधियां

1. शून्य जुताई एवं संरक्षण खेती

परंपरिक जुताई एवं मृदा अपरदन जैविक कार्बन की मात्रा के तीव्र गति से ह्रास होने का मुख्य कारण है। अतः पारंपरिक जुताई के स्थान पर शून्य जुताई या संरक्षण जुताई का प्रयोग, फसल चक्र में दलहनी फ़सलों का प्रयोग, ग्रीष्म ऋतु में शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में परती भूमि को फसल अवशेषों से ढकने, आदि से मृदा अपरदन की गति में कमी आती है, साथ ही साथ जैविक कार्बन की मात्रा में भी बढ़ोतरी होती है। पलेवा के प्रयोग से मृदा में नमी की मात्रा भी अधिक समय तक बनी रहती है। संरक्षण जुताई का प्रयोग लंबे समय तक करने से मृदा द्वारा उत्पन्न ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा में भी कमी आती है।

संरक्षण खेती एक ऐसी कृषि उत्पादन तकनीक है जिसके तीन मुख्य भाग हैं– (1) न्यूनतम जुताई, (2) फसल चक्र एवं (3) फसल अवशेषों का पलेवा (मल्चिंग) के रूप में प्रयोग। यह ना केवल फसल की उत्पादकता को बढ़ाता है, बल्कि मृदा को जल एवं वायु अपरदन से भी बचाता है। यह मृदा की गुणवत्ता में सुधार एवं जैवविविधता को बढ़ाने में भी सहायक होता है।

2. आवरण फसल

संरक्षण जुताई अपनाने का अधिकतम लाभ फसल चक्र में आवरण फसलों को शामिल करने पर होता है। दलहनी फसलों का फसल चक्र में समावेश जैवविविधता को बढ़ाता है एवं कार्बन प्रच्छादन की क्षमता का संवर्धन भी करता है। वैज्ञानिकों ने अपने शोध में इस बात को प्रतिस्थापित भी किया है कि मृदा में उचित जैवविविधता अधिकतम कार्बन प्रच्छादन करने में सहायक होती है।

3. एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन से तात्पर्य पोषक तत्वों के सभी संभावित स्रोतों जैसे जैव उर्वरकों, खाद, कंपोस्ट, वर्मीकंपोस्ट, हरी खाद एवं रासायनिक उर्वरकों का फ़सलों में संतुलित मात्रा में प्रयोग करना है, ताकि मृदा की उर्वरता भी बनी रहे एवं फ़सलों की उत्पादकता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव ना पड़े। केवल रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से मृदा के स्वास्थ्य तथा वातावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है एवं किसानों पर आर्थिक बोझ भी बढ़ता है। इसीलिए एकीकृत पोषक तत्वों के प्रबंधन से कम लागत में बेहतर कृषि उत्पादन किया जा सकता है एवं मृदा स्वास्थ्य को भी सुरक्षित रखा

जा सकता है। एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन से मृदा की कार्बन प्रवर्धन क्षमता में भी वृद्धि होती है।

4. समस्या ग्रस्त मृदा का सुधार

समस्या ग्रस्त मृदा में मुख्यतः अम्लीय, क्षारीय एवं लवणीकृत मृदा होती हैं, इनमें पोषक तत्वों का असंतुलन पाया जाता है। अम्लीय मृदा में लौह तत्व की अधिकता फ़सलों में इसकी विषाक्तता को उत्पन्न करती है, जबकि क्षारीय मृदा में इसकी भारी कमी पाई जाती है। लवणीकृत मृदा में लवणों की अधिक मात्रा पौधों की जड़ों से पानी के सोखने की क्षमता कम करती है, जो फ़सलों के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। अम्लीय मृदा में चूने के प्रयोग एवं क्षारीय मृदा में जिप्सम के प्रयोग से सुधार किया जा सकता है। लवणीय मृदाओं का सुधार, उच्च गुणवत्ता वाले पानी के द्वारा लवणों के निक्षालन से संभव है। खाद, कंपोस्ट एवं हरी खाद के प्रयोग से इनमें कार्बन की मात्रा बढ सकती है, जिसके परिणाम स्वरूप इन समस्या ग्रस्त खेतों में सकारात्मक परिवर्तन आ सकता है। इनके समुचित प्रबंधन से इनकी उर्वरा शक्ति को पुनः स्थापित किया जा सकता है। निम्न कोटि एवं बंजर भूमि पर कृषि वानिकी के द्वारा मृदा अपरदन की रोकथाम करके कार्बन प्रवर्धन को बढ़ाया जा सकता है।

5. सिंचाई प्रबंधन

भारत में लगभग 85% पानी का प्रयोग केवल कृषि में सिंचाई के लिए होता है, परंतु सिंचाई में प्रयुक्त होने वाले पानी का बहुत कम ही भाग पौधों को प्राप्त हो पाता है। इसका कुछ भाग वाष्पीकृत हो जाता है, कुछ भाग मिट्टी में रिसकर गहराई में चला जाता है एवं कुछ भाग बह जाता है। अतः सिंचाई का दक्षता पूर्ण प्रयोग ही भविष्य की जल संकट की समस्या को हल कर सकता है। इसके लिए सूक्ष्म सिंचाई विधियां जैसे टपक सिंचाई, फव्वारा सिंचाई, आदि के द्वारा सिंचाई हेतु पानी की मात्रा में काफी कमी की जा सकती है एवं सिंचाई की दक्षता को भी बढ़ाया जा सकता है। वर्षा आश्रित क्षेत्रों में वर्षा ऋतु के दौरान पानी को मिट्टी में संरक्षित करने हेतु जिओलाइट एवं हाइड्रोजेल का प्रयोग मुख्यतः रेतीली या बलुई मिट्टी में भी काफी कारगर सिद्ध हुआ है। वर्षा के पानी को जिओलाइट एवं हाइड्रोजेल रोक लेते हैं एवं सूखे की स्थिति में पौधों को जल उपलब्ध कराते है।

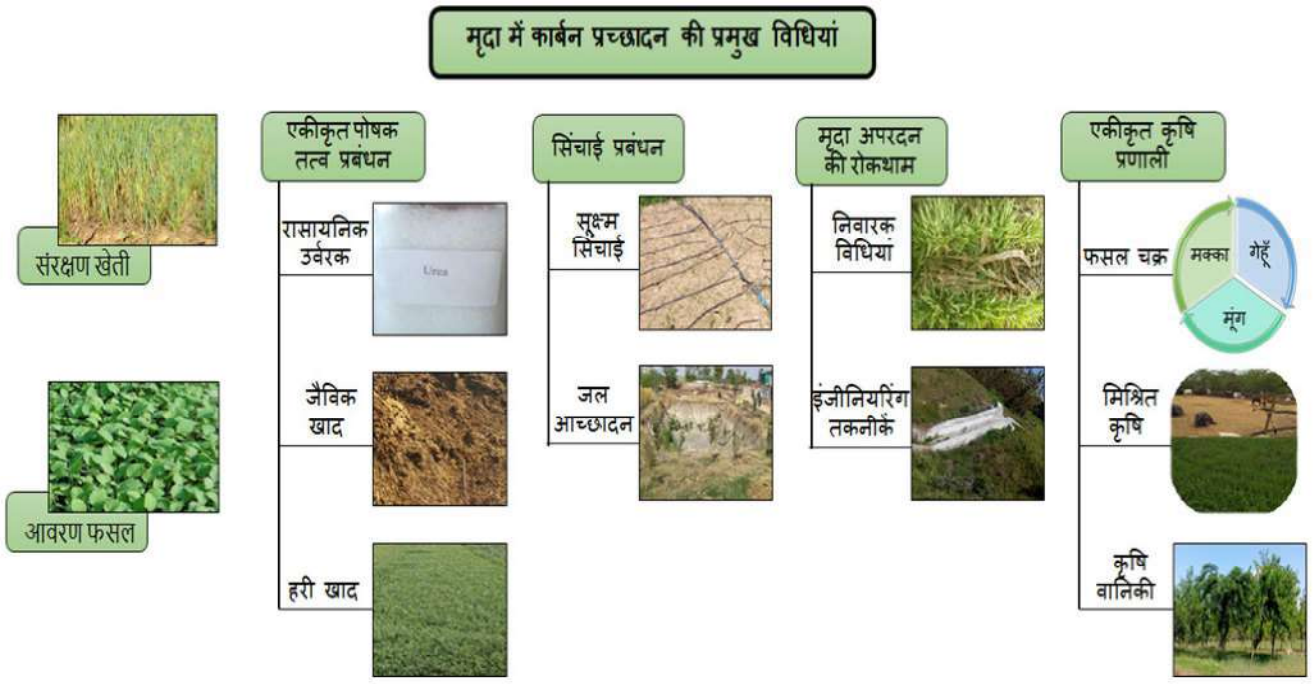

चित्र. 2 मृदा में कार्बन प्रच्छादन की प्रमुख विधियां

6. मृदा अपरदन की रोकथाम

जल एवं वायु मृदा अपरदन के मुख्य कारक है। जल का तेज बहाव सतही मिट्टी को बहाकर अपने साथ ले जाता है। वायु की तेज गति भी मिट्टी को अपने साथ उड़ाकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाती है। अतः मृदा में उपस्थित जैविक कार्बन भी मिट्टी के साथ विस्थापित हो जाती है एवं हवा के संपर्क में आने से इसका जल्दी ऑक्सीकरण हो जाता है । अपरदन की रोकथाम भी मृदा कार्बन प्रच्छादन में सहायक होती है। मृदा अपरदन की रोकथाम निवारक विधियों तथा इंजीनियरिंग तकनीकों के द्वारा संभव है। निवारक विधियों में पलेवा का प्रयोग, आवरण फसलों की खेती, न्यूनतम या शून्य जुताई, इत्यादि हैं। इंजीनियरिंग तकनीकों में खेतों में मेढ़ों को बनाना, पहाड़ों एवं ढाल वाली ज़मीन पर सीढ़ीदार खेती सम्मिलित हैं।

7. एकीकृत कृषि प्रणाली

खेती एवं पशुपालन का किसानों से बहुत गहरा संबंध है। खेती के साथ–साथ पशुपालन करने की विधि को ही मिश्रित खेती कहते हैं। एकीकृत कृषि प्रणाली से तात्पर्य कृषि में प्रयुक्त संसाधनों का दक्षता पूर्ण प्रयोग करके ऐसी व्यवस्था स्थापित करना है जिससे किसानों को पूरे साल अच्छी पैदावार के साथ–साथ अच्छी आमदनी भी प्राप्त हो सके। इसके अंतर्गत फसल विविधीकरण, पशुओं का समुचित रख–रखाव, तथा पशुधन और कृषि अपशिष्टों का खाद या कंपोस्ट के रूप में प्रयोग किया जाता है, ताकि रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम हो एवं भूमि की गुणवत्ता में भी सुधार हो।

ऊपर बताई हुई सभी विधियों के वास्तविक कार्यान्वयन से मृदा में कार्बन की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है, जो कि जलवायु परिवर्तन की मार को झेलने में हमारी सहायता कर सकता है और बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्य की मांग को पूरा करने में भी सक्षम है।

AgriApp

हिन्दी का आन्दोलन समूचे देश को आत्म निर्भर और समृद्ध बनाने का संकल्प है।

– डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी

कुशल प्रक्षेत्र प्रबन्धन के आयाम

*राघवेन्द्र कुमार एवं संगीता श्रीवास्तव
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)
*संवादी लेखक का ई–मेलः raghwendkumar@gmail.com

चाणक्य के अर्थशास्त्र का आज भी हमारे जनमानस में व्यापक महत्व है। जीवन और समृद्धि से जुड़े, सभी प्रकार के आर्थिक कार्य–कलापों में 'लेन–देन' का अनवरत सिलसिला वर्षों से चला आ रहा है जो मानव के विकास तथा अस्तित्व के लिए एक अनिवार्य शर्त है।

महान अर्थशास्त्री स्मिथ ने वर्षों पहले अर्थशास्त्र को धन, सम्पत्ति और समृद्धि का विशेष ज्ञान बतलाया तो, वहीं मार्शल जैसे अर्थवादी चिन्तक ने इसे हमारे जीवन के प्रत्येक दिन समस्त व्यावसायिक तथा गैर–व्यावसायिक सक्रियता तथा स्वभाव का अध्ययन माना है। आधुनिक काल में व्यक्ति विशेष की व्यावसायिक गतिविधियों जैसे खेती, किसानी को व्यष्टि या सूक्ष्म अर्थशास्त्र (माईक्रोइकोनॉमिक्स) तथा सामूहिक आर्थिक कार्य–कलापों को समष्टि अर्थव्यवस्था (मैक्रोइकोनॉमिक्स) के अन्तर्गत परिभाषित किया जाता है। इस क्रम में यह सर्वविदित है कि कृषि हमारे जीवन यापन के लिए सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है जबकि कृषि एक जोखिम का धंधा है, इन दोनों कथन के पीछे मूल रूप से कहीं न कहीं चिन्ता छिपी है। कृषि प्रधान होते हुए भी हमारे देश के किसान के पास खेती करने की औसतन भूमि जिसे जोत कहा जाता है सबसे कम लगभग 1.5 हेक्टेयर है। आस्ट्रेलिया, कनाडा, अमेरिका में जहाँ औसतन जोत क्रमशः अधिक है जबकि ताजा आँकड़ों के मुताबिक भारत में कम खेती योग्य भूमि बची है। खेती की जमीन और वन सम्पदा को नष्ट करके कंक्रीट के जंगल बसाए जा रहे है, विवेकहीन औद्योगिकीकरण से प्रदूषण तथा जल संसाधन के संकट पैदा होने लगे है। खेतिहर किसान शहरों की तरफ भागकर मजदूर बनते जा रहे है।

खाद्यान्न के संकट से उबरने के लिए विदेशों से अनाज मँगाया जा रहा है और ऐसे तमाम कुनीतिगत आर्थिक संजाल निःसन्देह जिम्मेदार है। हाँलाकि इन दिनों समाज और सरकार का ध्यान कृषि के विकास की तरफ गया है किन्तु ढेर सारी आर्थिक समस्याओं को नज़र–अन्दाज नहीं किया जा सकता। जनसंख्या विस्फोट, जल संकट तथा पर्यावरण में कार्बन डाई ऑक्साइड का तेजी से बढ़ रहा खतरनाक स्तर जिसे 'ग्लोबल वॉर्मिंग' कहा जाता है, आर्थिक विकास में सबसे बड़ी बाधा है।

तमाम नीतिगत बाधाओं के सुखद समाधान में कुशल कृषि प्रबन्धन की अहम भूमिका है। टुकड़ों में बँटी जोत को विस्तार देना बहुत जरूरी है। सहकारी, संयुक्त तथा सामूहिक कृषि इस दिशा में व्यापक बदलाव ला सकते है। दूसरी तरफ कृषि के व्यवसायीकरण की दिशा में संसाधनों का भरपूर दोहन होता है।

कृषि अर्थशास्त्र का महत्व

सामान्य अर्थशास्त्र की अति विशिष्ट शाखा कृषि अर्थशास्त्र या एग्रोनॉमिक्स के अन्तर्गत फसल उत्पादन तथा कृषि सम्बन्ध रखने वाले अन्य आर्थिक क्रिया–कलाप जैसे पशु पालन, फल उत्पादन, मत्स्य पालन, डेयरी, वानिकी इत्यादि शामिल होते हैं। किसी भी राष्ट्र के विकास में कृषि का व्यापक महत्व जैसे खाद्य व्यवस्था, उद्योग के लिए कच्चे माल की उपलब्धता, सेवा योजन, पर्यावरण के प्रदूषण स्तर को नियंत्रित रखने, जल सम्पदा की संरक्षा इत्यादि होता है। हाँलाकि कृषि व्यवसाय की अनेक समस्याएँ जैसे कृषि कार्य हेतु संसाधनों की व्यवस्था, पैदावार में वृद्धि, जनसंख्या दबाव, उपज का कुशल विपणन इत्यादि महत्वपूर्ण है।

कृषि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत कृषि में उपयोग में लाए जा रहे संसाधनों से अधिकतम उत्पादन प्राप्ति के लक्ष्य का अध्ययन किया जाता है। इसके साथ ही प्रक्षेत्र प्रबन्धन, भूमि सुधार, जोत सम्बन्धित विसंगतियों का निराकरण,

श्रमिकों की मजदूरी से जुड़े श्रम सम्बन्धित कानूनी मसले, किसानों के वित्त से सम्बन्धित ऋण, बीमा तथा विपणन से जुड़े कृषि संवृद्धि तथा विकास की योजनाओं का समावेश होता है। कृषि अर्थशास्त्र का मुख्य मापदण्ड मुद्रा है जो वस्तुओं के मूल्य परिवर्तन के कारण बदलता रहता है। हाँलाकि किसानों की व्यक्तिगत समस्याएँ जो धन से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से जुड़ी नहीं होती, उनका अध्ययन नहीं किया जाता है।

प्रक्षेत्र प्रबन्धन के आयाम

प्रक्षेत्र प्रबन्धन कृषि अर्थशास्त्र की महत्वपूर्ण शाखा है जिसके अन्तर्गत खेती किसानी से जुड़े सभी प्रकार के कार्य एक विशिष्ट प्रबन्धन के माध्यम से सम्पन्न किया जाते हैं। इसके अन्तर्गत खेती के लिए जरूरी संसाधन जैसे भूमि, बीज, सिंचाई, उर्वरक, यांत्रिक उपकरण इत्यादि के एवज में उत्पादन से प्राप्त शुद्ध आय में बढ़ोत्तरी होना अनिवार्य लक्ष्य होता है। साधारण शब्दों में कहे तो कुशल प्रक्षेत्र प्रबन्धन के माध्यम से कम से कम खर्च, हानि/हर्जाना, श्रमिकों के अक्षमता, बेरोजगारी के एवज में ज्यादा से ज्यादा लाभ, उत्पादन, दक्ष, मानव संसाधन तथा समग्र रोजगार सृजन होते रहना आवश्यक है।

कृषि कार्य से कैसे अधिकतम उत्पादन तथा लाभ प्राप्त किया जाए और, कैसे उत्पादन लागत को काबू में रखा जाए? इन दो प्रश्नों के समाधान में प्रक्षेत्र प्रबन्धन से जुड़े सभी क्रिया–कलाप सुलभतापूर्वक पारिभाषित होते है। उत्पादन में बढ़ोत्तरी के लिए श्रमिकों तथा खेती से जुड़े तमाम कार्य नियत समय पर सम्पन्न होना जरूरी है। बुवाई से लेकर कटाई तक के समग्र कार्य में मौसम की पृकृति को ध्यान में रखना होता है।

फसल–चक्र, सहफसली कृषि प्रणाली तथा मृदा परीक्षण के अनुकूल सभी प्रकार के किसानी कार्य जैसे सिंचाई खर–पतवार, कीट तथा रोग नियंत्रण, गुड़ाई, उर्वरक तथा अन्य कार्यों की देख–रेख में खास दिशा–निर्देश का व्यापक महत्व होता है। नुकसान को काबू में रखने के लिए अन्य कृषि उपक्रमों का समावेश जरूरी होता है जिसमें पशुपालन, मधुपालन, जल संचन की उपलब्धता की स्थिति में मछली पालन, सामाजिक वानिकी, फल–फूल उत्पादन इत्यादि शामिल होते है। इससे लागत खर्च को नियंत्रित करने में सहयोग मिलता है तो अनेक लम्बित परियोजनाओं को शुरू करने के लिए पूंजीगत संसाधनों में बढ़ोत्तरी होती है। ट्रैक्टर संचालित उपकरण जैसे फसलों के कटाई में उपयोगी

कम्बाइंड हार्वेस्टर, टपक सिंचाई व्यवस्था, जल संचयन हेतु तालाब का निर्माण जैसे बृहद कार्य योजना आदि प्रमुख है।

इन सबके अलावा कृषि से जुड़े संसाधनों की देखभाल जरूरी होता है। मृदा स्वास्थ्य कार्ड के माध्यम से मिट्टी की उर्वरक शक्ति के बारे में जानकारी मिलती है। मिट्टी में जल संचयन हेतु बरसात के पानी का संचयन, जैविक खाद (गोबर की खाद, हरित ढैंचा, प्रेसमड इत्यादि), कीट नियंत्रण हेतु प्रकृति में विद्यमान शत्रुकीट की संख्या में बढ़ोत्तरी आदि कार्य में एकीकृत कृषि प्रबन्धन जैस व्यावसायिक निर्णयों से आर्थिक अवधारणों (लागत, कीमत, माँग आदि) के विश्लेषण किए जाते है। विभिन्न प्रकार के प्रबन्धन कार्यों का लेखांकन किया जाता है, जिससे नियोजन (प्लानिंग), निर्णय तथा नियंत्रण के साथ ही विक्रय, माँग, पूर्ति, उत्पादन तथा लागत की समग्र जानकारी संख्यात्मक रूप से दर्ज की जाती है। इन दिनों लेखा–जोखा से सम्बन्धित कार्य प्रायः कम्प्यूटर के विशेष सॉफ्टवेयर की मद्द से किए जाते हैं। फसलों से जुड़ें इतिहास, खेतों की प्रति हेक्टेयर औसत उपज, खर्चे तथा नुकसान के भुगतान सम्बन्धित जानकारी डेटा के स्वरूप में उपलब्ध होने से कुशल कृषि प्रबन्धन के लिए लाभकारी होता है। बैंकों के डिजिटलीकरण सेवा से इन दिनों कृषि प्रबंधन में व्यापक बदलाव हुए है। इससे द्वारा मजदूरों के श्रमिकीय भुगतान, क्रय–विक्रय से संबंधित लेखा–जोखा तथा अन्य महत्वपूर्ण वित्तीय कार्य–कलापों में व्यापक पारदर्शिता सुनिश्चित किया जाता है।

अन्त में प्रक्षेत्र प्रबन्धन के लिए उत्पादन कार्य से सम्बन्धित वक्र को समझना आवश्यक है जो ह्रासमान प्रतिफल के सिद्धान्त पर आधारित होता है। इसके मुताबिक किसी उत्पादन प्रक्रिया में जब किसी एक उत्पादन कारक जिसे आम बोल–चाल की भाषा में 'इनपुट' कहा जाता है, की मात्रा को अधिक बढ़ाने से प्राप्त प्रतिफल (आउटपुट), में होने वाली वृद्धि निरन्तर कम होती चली जाती है। इसे समझने के लिए अगर हम किसी प्रक्षेत्र की उपज बढ़ाने के लिए अधिक सिंचाई तथा रासायनिक उर्वरक जैसे यूरिया आदि की मात्रा बढ़ा देते है तो लागत खर्च में वृद्धि होने के साथ ही मिट्टी की उर्वरा शक्ति का नाश होने के साथ ही नाशीकीटों की संख्या में जबरदस्त वृद्धि होगी। भूमि के बंजर होने तथा कीड़े–मकोड़ों में प्रतिरोधक क्षमता का प्रभाव अगले कई वर्षों तक देखा जा सकता है। मुमकिन है कि ऐसे प्रक्षेत्र को कृषि के लिए योग्य ही नहीं माना जा सके। यही बात जेनेटिक मॉडीफॉयड बीज को लेकर भी है। आउटपुट यानी पैदावार बढ़ाने के लिए इन दिनों इसका व्यापक इस्तेमाल करने की सिफारिश की जाती है जबकि इसके दीर्घ कालिक परिणाम निराशाजनक साबित हो सकते हैं। पारम्परिक बीज के नष्ट हो जाने से भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के किसानों के मन में घोर निराशा छाने लगती है। इस दशा में वित्तीय संस्थाओं से कृषि कार्य हेतु प्राप्त कर्ज की अदायगी समय से नहीं हो पाने की स्थिति कभी–कभार आत्म–हत्या जैसे अप्रिय समाचार, समाचार पत्रों की सुर्खियाँ बनते हैं।

सूक्ष्म अर्थशास्त्र के सूत्र के अनुसार खेती–किसानी के लिए उपयोगी संसाधन को दो प्रमुख वर्ग में वर्गीकृत किया जाता है। पहले वर्ग में स्थाई–अति महत्वपूर्ण संसाधन कृषि करने योग्य पर्याप्त भूमि (जोत) तथा अन्य साजों सामान जैसे ट्रैक्टर, ट्यूबवेल, पशुधन इत्यादि सम्मिलित होते है। दूसरे वर्ग में खेती में काम आने वाले तमाम भौतिक संसाधन जैसे श्रमिक, बीज, खाद, पानी, ट्रैक्टर संचालन हेतु डीजल, ट्यूबवेल के लिए बिजली इत्यादि जरूरी खर्चों के भुगतान हेतु निश्चित पूँजी की आवश्यकता होती है।

उदाहरण के लिए किसी 10 हेक्टेयर जोत वाले निम्नतम मानक के प्रक्षेत्र प्रबन्धन पर कृषि कार्य में व्यय धनराशि, उससे प्राप्त आमदनी तथा बदलते मौसम के नुकसान को कुल भौतिक वस्तु उत्पाद (टोटल फिजिकल प्रोडक्ट या टीपीपी) माने तो प्रस्तुत चित्रण में वक्र की स्थिति निम्नलिखित रूप से व्यक्त की जाती है।

1. आउटपुट के बढ़ने से वक्र के तीन स्तर (ज़ोन) I,II और III में टीपीपी का आंकलन किया जाता है। प्रबंधन सूत्र के मुताबिक ज़ोन I में टीपीपी के उत्पाद लोचमान (प्रोडक्शन इलास्टिसिटि / Ep) ठीक–ठाक यानी Ep>1 दिखता है। इस स्थिति में लाभ ही लाभ मिल सकता है। कहने का मतलब कुल खर्च तथा आय से थोड़ा अधिक मुनाफा भी मिलने की स्पष्ट भावना दिखलाई पड़ती है। एक आदर्श प्रक्षेत्र प्रबंधन ज़ोन I के नक्शे कदम पर चलने में विवश होता है।

2. फसलों की देखभाल, कटाई मड़ाई, भण्डारण इत्यादि कृषि कार्य में थोड़े से भी चूक हो जाने की स्थिति में ज़ोन I में इन्फेलेशन बिन्दु A पर पहुँचने की दशा में लोचमान Ep = 1 के बराबर होने लगता है। इस अवस्था में एक वक्र (अवतल) बनने के साथ ही एमपीपी में झुकाव के दर बढ़ते जाते है। इस तरह इनपुट में लागत भौतिक उत्पाद (मार्जिनल फिजिकल प्रॉडक्ट/एमपीपी) नीचे की तरफ झुकने को विवश होने लगता है।

   निष्कर्ष यह है कि आउटपुट में बढ़ोत्तरी करने के साथ ही प्रबंधन के इनपुट को संयमित रखना नितांत आवश्यक है। इस दशा में प्रबंधन को कुल व्यय तथा उससे प्राप्त की गई कुल आमदनी बगैर मुनाफा को प्राप्त हो सकते है।

3. ज़ोन I में टीपीपी इनफ्लेशन बिन्दु A पर पहुँचने की स्थिति में लोचमान घटने से इनपुट में घाटा बढ़ने की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इसे ज़ोन का अतार्किक स्तर भी कहा जाता है।

4. टापीपी के बिन्दु C पर पहुँचने की स्थिति अत्यन्त निराशाजनक हो सकती है। इस दशा में लोचमान शुरूआती स्तर में Ep< 0 और आगे बढ़कर Ep ऋणात्मक स्थिति में चली जाती है। इसे रेशनल (तार्किक) ज़ोन कहा जाता है। निष्कर्ष यह है कि इस दशा में आय–व्यय का संतुलन बराबर होकर शून्य की स्थिति आ जाएगी।

5. अन्तिम दशा जिसे ज़ोन III के अन्तर्गत दर्शाया गया है,

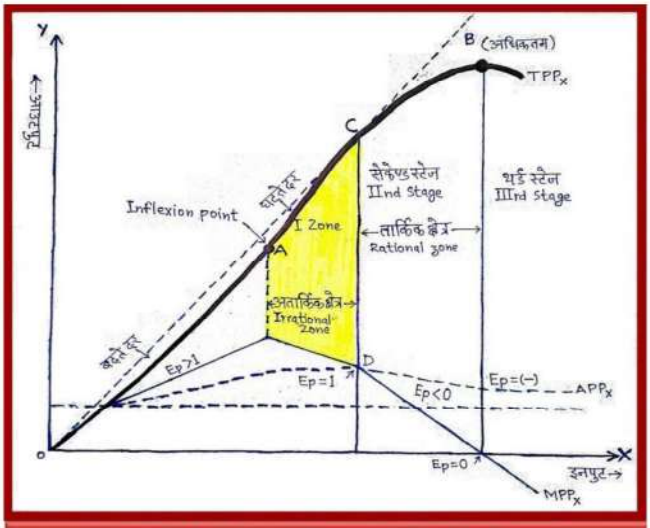

कुशल प्रक्षेत्र प्रबंधन में उत्पादन वक्र का महत्व

   में आउटपुट तथा इनपुट के क्रमशः टीपीपी और समपीपी में नकारात्मक भाव के दर्शन हो सकते है। इस दशा में लोचमान Ep= (-) नकारात्मक होता है।

कहने का मतलब है कि इस दशा में औसत भौतिक उत्पाद (एपीपी) भी नीचे उतरकर समग्र प्रबंधन को भारी नुकसान का सामना करना पड़ सकता है। प्रक्षेत्र को अगले वर्ष में कृषि के लिए अनके प्रकार के जरूरी बिल तथा अर्थदण्ड अलग जेब से जमा करवाने की नौबत आ सकती है। हांलाकि नुकसान के भौतिक कारण में मौसम तथा पारिस्थिति के प्रतिकूलता को भी शामिल किया जाता है इसलिए यह कथन सर्वथा चरितार्थ है कि खेती एक जोखिम का धंधा है और इसे उद्योग की श्रेणी से बिल्कुल अलग रखा जाता है।

एपीपी और एमपीपी हमेशा बढ़ते क्रम में रहना चाहिए ताकि ज़ोन I में प्रबंधन को कम से कम घाटा का सामना करना पड़े। इस ज़ोन में प्रबंधन को कृषि से प्राप्त आय के अलावा आय के अन्य संसाधनों को तलाशना आवश्यक है। पंजाब, हरियाणा और पश्चिम उत्तर प्रदेश में प्रबंधन में जुड़े किसान पैदावार बढ़ाने के एवज में अंधाधुंध रासायनिक खाद तथा दवाओं के इस्तेमाल करते है। कैंसर तथा अन्य घातक बीमारी के प्रकोप देखे गए है। दूसरी तरफ सूखे की मार और सिंचाई में पानी की कमी से तमिलनाडु के किसान सरकारी कुप्रबंधन के शिकार होने को मजबूर है। इसलिए आउटपुट को अधिकतम रखने के लिए संसाधन संजाल को कुशल दिशा निर्देशन के अनुरूप रखना होगा। यानी आमदनी ज्यादा करने के साथ ही संसाधन और प्रबन्धन के खर्चे को काबू में रखना महत्वपूर्ण है। 'सबका साथ, सबका विकास' अर्थशास्त्र के जटिल सूत्रों का सरल प्रस्तुतीकरण होता है।

हिंदी और नागरी का प्रचार तथा विकास कोई भी रोक नहीं सकता।

– गोविन्दवल्लभ पंत।

गेहूँ की फसल में लगने वाले मुख्य कीट तथा उनका प्रबंधन

दिनेश चौधरी, निधि कम्बोज एवं आर. एस. छोकर
भाकृअनुप– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
*संवादी लेखक का ई–मेलः dineshagmjrp@gmail.com

गेहूँ भारत देश की मुख्य खाद्यान्न फसल है। इस फसल के द्वारा कई विकसित देशों में रहने वाले निम्न और मध्यम आय वाले लोगों के भोजन की पूर्ति होती है। गेहूँ की फसल में कीटों, रोगों व सूत्रकृमियों के द्वारा 5–10 प्रतिशत तक उपज में हानि होती है। इससे गेहूँ के दानों की गुणवत्ता में अधिक गिरावट आ जाती हैं। विभिन्न प्रकार के कीटों के द्वारा फसलों को उगाने से लेकर पकने तक तथा कटाई के बाद भंडारग्रहों में भी नुकसान पहुँचता हैं। गेहूँ की फसल में मुख्य रूप से दीमक, सैनिक कीट, कटन कीट, माहू तथा तना मक्खी आदि कीटों का प्रकोप अधिक होता है। देश की बढ़ती हुई जनसंख्या के आधार पर खाद्यान्न कि पूर्ति के लिए कीटों के द्वारा होने वाली क्षति को कम करना अति आवश्यक है। अगर कीटों का समय पर नियंत्रण नही किया गया तो यह कीट खाद्यान्न आपुर्ति में बाधक बन सकते है। इन कीटों के नियंत्रण के लिए ऐसी तकनीक का उपयोग किया जाना चाहिए जिससे अधिक उत्पादन के साथ–साथ उत्पादन लागत भी कम हो एवं मानव स्वास्थ्य के लिए भी सुरक्षित हो। जहाँ तक संभव हो इन कीटों का भंक्षण जैविक कीटों के द्वारा तथा गर्मियों (मई–जून) के महीने में गहरी जुताई करके खेत को खुला छोड़ कर करना चाहिए। इससे लागत में भी कमी आएगी तथा कीटों का नियंत्रण भी लम्बे समय के लिए हो सकेगा।

गेहूँ कि फसल के मुख्य हानिकारक कीट

1. दीमक

दीमक छोटे–छोटे कीट है। गेहूँ की फसल में इसका प्रकोप अधिक होता है। इसके प्रकोप से गेहूँ के अंकुरित 25 प्रतिशत पौधे नष्ट हो जाते है। दीमक ज़मीन में सुंरग बनाकर रहती हैं यह मुख्य रूप से असिंचित व हल्की भूमि में अधिक नुकसान पहुंचाती है। दीमक का रंग हल्का भुरा होता है। दीमक अपना प्रभाव जड़ से तने की ओर करती है। पहले यह जड़ को नष्ट करके पौधे को सूखा देती है तथा फिर उसके तने को नष्ट कर देती है। एक दीमक रानी एक दिन में 40,000 अंडे दे सकती है। यह अधिकतर फसल अवशेष तथा बिना सड़ी गोबर की खाद से प्रभावित होती है।

प्रबंधन

1. गोबर की अच्छी तरह से विघटित खाद का उपयोग करना चाहिए।
2. बीजों को बुवाई से पूर्व इमिडाक्लोप्रिड 70 डब्ल्यू.एस. 0.1 प्रतिशत से उपचारित करके बुवाई करनी चाहिए।
3. दीमक का प्रकोप होने पर नीम या करेले के रस का छिड़काव करना चाहिए। जिससे वातावरण में कड़वी महक से भी दीमक धीरे–धीरे समाप्त हो जाती है।
4. खेत से फसल अवशेषों को नष्ट देना चाहिए।
5. परभक्षी का उपयोग करना चाहिए।

2. सैनिक कीट

इस कीट की सूंड़ी गेहूँ की फसल को अधिक नुकसान पहुँचाती है। इस कीट के अण्डों से निकलने वाली सुण्डी हवा

के प्रकोप से एक पौधे से दुसरे पौधे में पहुँच जाती हैं। इस सूण्डी का प्रभाव सर्वाधिक फरवरी–मार्च के महीने में दिखाई देता है। इसकी नवजात सुण्ड़ी बहुत अधिक गतिशील होती है। इसके कीट का रंग भूरा होता है।

इसकी सूण्डी सबसे पहले पौधे की कोमल पत्तियों को खाती है तथा धीरे–धीरे पौधे की पुरानी पत्तियों को भी नष्ट कर देती है। इस सुण्ड़ी के आक्रमण से पौधे का आकार कंकाल जैसा हो जाता है।

प्रंबधन

1. गर्मियों (मई –जून) के दिनों में गहरी जुताई।
2. खेतों के आस–पास किसी भी प्रकार का खरपतवार हो उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए।
3. फसल अवशेषों को जलाकर नष्ट कर देना चाहिए।
4. कीटों का अधिक प्रकोप होने पर क्विनॉलफॉस 25 ई. सी. 1 लीटर मात्रा को 700 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टेर छिड़काव करना चाहिए।
5. जैविक नियंत्रण एजेंटों का उपयोग करना चाहिए।

3. माहू

यह कीट आकार में छोटा होता है। यह पौधों का रस चुसने का कार्य करता है। यह कीट भारत के लगभग सभी क्षेत्रों में पाया जाता है। इस कीट को हरी मक्खी के नाम से भी जाना जाता है। इसका प्रकोप जनवरी से मार्च तक अधिक होता है। इस कीट का रूप पंखहीन तथा पंखवाला दोनों अवस्था में पाया जाता है। इस कीट के द्वारा पौधे की वृद्धि को अत्यधिक मात्रा में हानि होती है।

प्रंबधन

1. इस कीट का आक्रमण दिखाई देने पर शुरूआती अवस्था में ही पौधे को उखाड़ कर उसे नष्ट कर देना चाहिए।
2. आक्रमण अधिक होने पर बी.टी. 1 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
3. नीम का रस या नीम का तेल 100 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
4. गेहूँ की फसल में नत्रजन उर्वरकों का उपयोग पौधे की आवश्यकता अनुसार ही करना चाहिए।
5. जैसे ही कीट का प्रकोप दिखाई देने लगे पीले चिपचिपे ट्रैप का प्रयोग करें जिससे माहू ट्रैप पर चिपक कर मर जाये।

4. गुलाबी तना (बेधक)

इस कीट का प्रकोप पूरे भारत में है। यह अपना प्रभाव रबी के मौसम में दिखाता है। इस कीट का प्रांरभिक चरण फसलों के लिए अत्यधिक हानिकारक है। इसके झांझे सूंडी चिकनी बैलनाकार शरीर के साथ गुलाबी भुरे रंग के होते है। यह पौधे के तनों के अन्दर पहुँच कर उन्हें बीच से खोखला बना देती है तथा इसके कारण पौधा धीरे–धीरे नीचे से सूखता हुआ नष्ट हो जाता है और पुराने पौधे पर सफेद बालियाँ उत्पन्न हो जाती है। यह कीट पत्तियों पर तथा भूमि पर अण्ड़े देता है।

प्रबंधन

1. फसल–चक्र का उपयोग करना चाहिए।
2. संक्रमित पौधों को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

3. फसल में अधिक प्रकोप होने पर क्लॉरपइफास 20 ई.सी. का 40 एम.एल./टंकी (15 लीटर) की दर से छिड़काव करें।
4. गर्मियों (मई–जून) के महीने में गहरी जुताई करके खेत को खुला छोड़ देना चाहिए।

5. तना मक्खी

इस कीट का प्रकोप नवम्बर से मार्च तक अधिक होता है। इसमें मादा मक्खी नर से बड़ी होती है। इसका भुनगा (मेगट) गुलाबी सफेद रंग का होता है। इस कीट का प्रोढ़ घरेलू मक्खी के जैसा दिखाई देता है।

यह कीट पौधे के तने का अन्दर वाला भाग खाकर उसमें सुरंग बना देता है तथा इससे तना कमजोर होकर पौधा पीला पड़ जाता है। इस कीट की मादा मक्खी अण्ड़े पत्तियों के निचले भाग में देती है।

प्रबंधन

1. गेहूँ की फसल की बुआई 15 नवम्बर के बाद करें।

2. फसल–चक्र का उपयोग करना चाहिए।
3. खेत में पानी की मात्रा पर्याप्त रखनी चाहिए।
4. कीट का प्रकोप अधिक होने पर मोनोक्रोटोफास 36 प्रतिशत एस.एल. 650 मि.ली. मात्रा का पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।
5. खेत के आस–पास खरपतवार जैसे पौधों को नष्ट कर देना चाहिए।

भारतवर्ष के लिए हिंदी भाषा ही सर्वसाधारण की भाषा होने के उपयुक्त है।

– शारदाचरण मित्र

प्रमाणित बीज : सुदृढ़ खेती का आधार

पवन कुमार[1], जीत राम चौधरी[2], दिनेष कुमार[1], दिनेष कुमार जींगर[1], मुकेष चौधरी[3], प्रदीप कुमार[3], बी. एस. जाट[3], मनेश चन्द्र डागला[3], अनुराग त्रिपाठी[4] एवं भारत भूषण[3]

[1]भाकृअनुप– भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, देहरादून (उत्तराखण्ड)

[2]राजस्थान राज्य बीज और जैविक प्रमाणीकरण संस्था, जयपुर (राजस्थान)

[3]भाकृअनुप– भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना, (पंजाब) [4]शारदा विश्वविद्यालय ग्रेटर नोएडा, (उत्तर प्रदेश)

*संवादी लेखक का ई–मेलः pawanchoudhary2@gmail.com

कृषि उत्पादन में वृद्धि के विभिन्न कारकों में से बीज का एक विशेष महत्व है, क्योंकि बीज, कृषि की शुरुआत से लेकर अब तक, फसल उत्पादन की स्थापना, विस्तार, विविधीकरण एवं सुधार में प्रमुख घटक रहे हैं। बीज, फसल प्रसार का सबसे कुशल और प्रभावी साधन है। बीजों द्वारा पौधों की आबादी को विभिन्न समय और स्थान पर वितरित किया जाता है। कुछ फसलों में उपयोग किए जाने वाले वनस्पतिक प्रवर्ध की तुलना में, बीज छोटे होते हैं, इसलिए संग्रह और परिवहन करने के लिए सुविधाजनक, कठोर एवं अधिक जीवनक्षमता वाले होते है तथा इनकी बुवाई करना आसान है, अपेक्षाकृत बीमारियों से मुक्त होते है और उत्पादन का केवल एक बहुत छोटा हिस्सा प्रसार के लिए आवश्यक होता है। बीज, पौधों के प्रसार के लिए अद्भुत रूप से अनुकूलित होते हैं जिनकी फसल सुधार कार्य में भी अधिक महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

एक अच्छी गुणवत्ता वाले बीज के लिए कहावत है कि ***"सुबीजम् शुक्षेत्रे जायते संप्रदायते"*** मतलब एक अच्छा बीज अच्छे क्षेत्र में अधिक पैदावार देता है। बीज कृषि का एक अभिन्न अंग होते हुए भी हम इसकी कृषि उत्पादन और फसल सुधार में भूमिका को अनदेखा कर देते हैं। अधिक उत्पादन करने में सक्षम और समृद्ध होने के लिए किसानों को प्रमाणीकरण मानदंडों के अनुसार ही शुद्ध और स्वस्थ बीजों का उपयोग करना चाहिए। अच्छी गुणवत्ता वाले बीजों में, बीज प्रमाणीकरण मानकों के अनुसार उच्च अंकुरण क्षमता, आनुवंशिक एवं भौतिक शुद्धता, ओज, अधिक उत्पादकता, विस्तृत क्षेत्र व जलवायु के लिए उपयुक्तता, रोग एवं सूखा रोधिता आदि गुणों का समावेष होना आवश्यक है। प्रमाणित बीज ही किसान की इस मांग के अनुरूप गुणवत्ता सुनिश्चित करता है। कृषक स्वयं के उपयोग तथा आपस में आदान प्रदान करने के लिए बीजोत्पादन कर सकते हैं।

किसानों द्वारा उच्च गुणवत्ता के बीज से बुवाई करने पर प्रति इकाई क्षेत्रफल में उत्पादन में सामान्य बीज से बुवाई कराने पर प्राप्त उत्पादन की अपेक्षा लगभग 20 प्रतिशत की वृद्धि होती है। किसान अपनी फसल के अच्छे उत्पादन के लिए कई आदानों का प्रयोग करते हैं परन्तु उच्च गुणवत्ता के बीज सभी आदानों में सबसे अधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण आदान है। यदि बीज खराब या निम्न गुणवत्ता वाला है तो फसल उत्पादन में लगा परिश्रम तथा अन्य साधनों जैसे उर्वरक, सिंचाई आदि पर किया गया खर्च व्यर्थ हो जाता है। अतः उच्च उपज की खाई को पाटने के लिए गुणवत्ता बीज की कमी सबसे बड़ी बाधाओं में से एक मुख्य बाधा है। इसलिए, फसल प्रजाति की संभावित वसूली योग्य उपज के लिए, गुणवत्ता वाले बीज का उत्पादन और वितरण बहुत आवश्यक है। प्रमाणित बीज सुदृढ़ खेती का एक महत्वपूर्ण भाग है। बीज पौधे का वह अंग है जो परिपक्व होने पर नई पीढ़ी को जन्म देता है। बीज उत्पादन एक विशेष तकनीकी कार्य है जिसके माध्यम से किसान भाई उत्तम गुणवत्ता वाले बीज का उत्पादन सरलता से कर सकते हैं ।

प्रमाणित बीज

ऐसे बीज जो भारत सरकार द्वारा निर्धारित भारतीय न्यूनतम बीज प्रमाणीकरण मानकों की पालना करते हुए राज्य बीज प्रमाणीकरण संस्थान द्वारा प्रमाणित किये जाते है, वह प्रमाणित बीज कहलाते है।

प्रमाणित बीज आधार बीज से बनता है। प्रमाणित बीज का उत्पादन बीज उत्पादक संस्था द्वारा प्रगतिशील किसानों को आधार बीज उपलब्ध करवाकर बीज प्रमाणीकरण संस्था की देखरेख में किया जाता है। बीज प्रमाणीकरण संस्था द्वारा

निर्धारित न्यूनतम बीज प्रमाणीकरण मानकों के अनुरूप पाये जाने पर प्रमाणित किया जाता है। बीज की यही श्रेणी किसानों को सामान्य वितरण के दौरान फसल उगाने के लिए उपलब्ध करवायी जाती है। प्रमाणित बीज की थैली/कट्टे पर नीला टैग लगा होता है।

बीज प्रमाणीकरण का उद्देश्य

बीज प्रमाणीकरण का उद्देश्य फसलों की अधिसूचित किस्मों का केन्द्रीय बीज प्रमाणीकरण मंडल द्वारा निर्धारित बीज प्रमाणीकरण के सामान्य नियमों तथा विभिन्न फसलों के विशिष्ट मानकों के अंतर्गत प्रमाणीकरण करना एवं उच्च गुणवत्ता के बीज की सामयिक उपलब्धता सुनिश्चित करना है।

प्रमाणित बीज का महत्व

1. प्रमाणित बीज अनुवांशिक एवं भौतिक रूप से शुद्ध होते है, तथा इनसे उत्पन पौधों में एकरूपता, गुणों में समानता एवं पकने की अवधि एक पाई जाती है।
2. बीज की अंकुरण क्षमता मानकों के अनुरूप होती है।
3. बीज की जीवन क्षमता उत्तम होती है। तथा पुष्ट भरा एवं चमकदार होता है।
4. प्रमाणित बीजों के उपयोग से सामान्य बीज की अपेक्षा उत्पादन में 15 से 20 प्रतिशत तक की वृद्धि होती है।

उन्नत बीज की श्रेणियां

आमतौर पर उन्नत बीजों की चार मान्यता प्राप्त श्रेणियां हैं।

1. **केंद्रीय बीज**–केंद्रीय बीज प्रजनक (वैज्ञानिक) द्वारा स्वयं तैयार किया जाता है। जो अनुवांशिक रूप से 100 प्रतिशत शुद्ध होता है।
2. **प्रजनक बीज**–केंद्रीय बीज से प्रजनक बीज स्वयं प्रजनक (वैज्ञानिक) के देख रेख में तैयार किया जाता है। यह केन्द्रीय बीज की संतति होती है। यह बीज भौतिक एवं अनुवांशिक रूप से 100 प्रतिशत शुद्ध होता है। प्रजनक बीज के बोरे पर पीले रंग का टैग लगा होता है।
3. **आधार बीज**–इसका उत्पादन बीज प्रमाणीकरण संस्था की निगरानी में होता है। यह प्रजनक बीज की संतति होती है। आधार बीज की थैली पर प्रमाणीकरण संस्था का सफेद रंग का टैग लगा होता है।
4. **प्रमाणित बीज**–यह बीज आधार बीज से तैयार किया जाता है। अतः यह आधार बीज की संतति होती है। प्रमाणित बीज उत्पादन बीज प्रमाणीकरण संस्था की देख रेख में किया जाता है। यह भी भौतिक एवं अनुवांशिक रूप से शुद्ध होता है। इसके बोरे/थैली पर प्रमाणीकरण संस्था का नीले रंग का टैग लगा होता है। स्व–परागित या परागित फसलों में बीज दो पीढ़ी तक मानी किया जा सकता है।

विभिन्न बीज की श्रेणियों के अंकुरण का मानक प्रतिशत, बीज के अंकुरण के आधार पर देखा जाता है जो कि निम्न तालिका में दिया गया है–

क्र. सं.	बीज की श्रेणी	अंकुरण का मानक प्रतिशत
1.	नाभिकीय बीज	95 प्रतिशत से अधिक
2.	प्रजनक बीज	90 प्रतिशत से अधिक
3.	आधार बीज	85 प्रतिशत से अधिक
4.	प्रमाणित बीज	80 प्रतिशत से अधिक
5.	सत्यरूप बीज	80 प्रतिशत से अधिक

विभिन्न फसलों के अंकुरण का माप दंड– बीज की कम मात्रा से फसल के पौधों की अच्छी आबादी प्राप्त करने के लिए उच्च अंकुरण प्रतिशत आवश्यक है। विभिन्न फसलों में अंकुरण के मापदंड भिन्न भिन्न होते है।

क्र. सं.	फसल का नाम	अंकुरण प्रतिशत
1	धान, अलसी, रामतिल, तिल, बरसीम	80
2	गेंहू, चना, राई, सरसों	85
3	मक्का (संकर)	90
4	अरहर, उड़द, मूंग, मसूर	75
5	मूंगफली, सोयाबीन, सूर्यमुखी, (संकर)	70
6	कपास	65

बीजोत्पादन की निम्न शस्य प्रबंधन प्रणाली का पालन कर किसान अपने ही खेत में शुद्ध बीजोत्पादन कर स्वावलम्बी बन सकते हैं।

खेत का चयन एवं तैयारी :– बीजोत्पादन हेतु उपजाऊ, समतल, अच्छी जल धारण क्षमता व जल निकास वाली मृदा जो मृदा जनित रोग व कीड़ों से मुक्त हो उपयुक्त होती है। खेत का चयन करते समय पृथक्करण दूरी, स्व–परागित फसलों में दो किस्मों के बीज मानक दूरी 3 मी. तथा पर–परागित फसलों के बीज की दूरी 100 मी. से एक किमी. निर्धारित की गई है तथा पिछले वर्ष जो फसल उस खेत में ली गई वहां पर उसी फसल को दुसरे वर्ष में न लें। खेत की तैयारी अच्छी होने से बीज का अंकुरण ठीक होता है तथा खरपतावारों को नियंत्रण करने में सहायता मिलती है, खेत में क्रास कल्टीवेटर के बाद दो बार डिस्क हैरो चलाकर अंत में पाटा लगाकर समतल करें। प्रत्येक तीन वर्ष के पश्चात् मिट्टी पलटने वाले हल से खेत की गहरी जुताई गर्मियों में अवश्य करें, इससे भूमि की जल धारण क्षमता में वृद्धि तथा मृदा–जन्य रोग व कीटों का नियंत्रण करने में मदद मिलती है।

क्र.स.	फसल का नाम	पृथक्करण दूरी	
		आधार बीज उत्पादन (मी.)	प्रमाणित बीज उत्पादन (मी.)
1	धान	3	3
2	मूंगफली	3	3
3	सोयाबीन	5	3
4	उड़द, मूंग	10	5
5	गेहूं	3	3
6	चना	10	5
7	मक्का	400	200

बीज स्रोत :– शुद्ध एवं उन्नत बीज किसी भी प्रमाणीकरण संस्था या कृषि विश्वविद्यालय फार्म या बीज निगम या विश्वसनीय स्रोत के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं। प्रजनक बीज उत्पादन हेतु नाभिकीय बीज, आधार बीज उत्पादन हेतु प्रजनक बीज तथा प्रमाणित बीज उत्पादन हेतु आधार बीज का उपयोग किया जाता है।

बुवाई का समय :–प्रत्येक मौसम में फसलों की बुवाई निर्धारित समय पर करनी चाहिए, उचित समय पर बुवाई करने से बीज अंकुरण अच्छा होता है तथा पौधे स्वस्थ रहते हैं। बुवाई में बिलम्ब करने से बीजोत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

बीज–दर व बीज उपचार :– उच्च गुणवत्ता के बीजोत्पादन हेतु अधिक बीज–दर का उपयोग नहीं करना चाहिए। फसलों के अनुसार निर्धारित बीज दर के अनुरूप बुवाई करनी चाहिए, सामान्यतः बीज उपचारित ही प्राप्त होता है, यदि बीज उपचारित नहीं हो तो बोने से पूर्व बीज को केप्टान, थीरम वाविस्टीन या बीटोवेक्स दवा को 3 ग्राम/किग्रा बीज की दर से या एप्रीन एस.डी. –35, दवा को 6 ग्राम/किग्रा बीज को उपचारित कर बुवाई हेतु उपयोग करें।

बुवाई की विधि :– बीजोत्पादन हेतु फसल की बुवाई साफ सीडड्रिल से कतारों में निर्धारित दूरी पर उचित नमी में करनी चाहिए। प्रत्येक 10 मीटर बाद एक मीटर का निरीक्षण पथ छोड़ना चाहिए जिससे रोगिंग, उर्वरक, छिड़काव एवं कीटनाशक दवाओं के उपयोग करने में कठिनाई नहीं होती है।

खाद एवं उर्वरक उपयोग :– बीजोत्पादन फसल के अनुरूप उचित मात्रा में गोबर की खाद, रासायनिक एवं जैव उर्वरकों का उपयोग संतुलित मात्रा में करने से फसल की बढ़वार तथा उत्पादन में सहायता मिलती है।

निराई–गुड़ाई :– फसल की क्रान्तिक अवस्था पर खरपतवार नियंत्रण उपाय अपनायें। फसल को खरपतवारों से रहित रखने के लिए यांत्रिक व रासायनिक विधियों द्वारा नियंत्रण करें। खेत में फसल के दौरान सफाई का विशेष ध्यान रखें ताकि फसल उगने से पकने तक खेत खरपतवारों से मुक्त रह सके।

सिंचाई :– बीजोत्पादन में फसल की अच्छी वृद्धि के लिए फसल की क्रान्तिक अवस्थाओं पर पर्याप्त नमी का होना आवश्यक है। यदि नमी कम है तो इन अवस्थाओं जैसे–

बुवाई के समय, फसल बढ़वार के समय, फूल आने पर, दाना भरते समय सिंचाई अवश्य करें ताकि दाना ठोस, बड़ा व चमकीला होने के फलस्वरूप उत्पादन अच्छा होता हैं।

पौध रांरक्षण :– प्रत्येक फराल में अलग–अलग कीट एवं बीमारियों का प्रकोप होता है। अतः फसल सुरक्षा हेतु उपयुक्त कीट नाशक एवं कवक नाशक दवाओं का उपयोग सही समय पर एवं उचित मात्रा में करना चाहिए।

रोगिंग (आवांछित पौधों को निकालना) :– बीजोत्पादन में खरपतवार, रोग व कीट ग्रस्त पौधों के अलावा बोई गई फसल किस्म के प्रमाणीकरण मानक गुणों से भिन्न पौधों को निकाल देना चाहिए। ताकि बीज की आनुवंशिक शुद्ध ता बनाई रखी जा सके। रोगिंग फसलों की तीन अवस्थाओं में की जाती है ताकि अवांछित पौधों को आसानी से अलग किया जा सके।

1. फूल आने से पूर्व (असमान ऊंचाई वाले पौधे निकाल कर)
2. फूल के समय (फूल का रंग तथा पत्तियों का आकार–प्रकार देखकर)
3. बीज पकने से पूर्व (फलियाँ, घेटियों का रंग देखकर)

बीज फसल की कटाई :– फसल उत्पादन में बीज के पूर्णतः परिपक्व हो जाने पर उचित नमी अवस्था में फसल की कटाई करना उपयुक्त होता है। इसमें असावधानी बरतने पर उपज व गुणवता में कमी आती है। अतः फसल पकने की स्थिति में तकनीकी बिन्दुओं का निरीक्षण एवं प्रमाणीकरण कराकर ही फसल को काटना चाहिये। कटाई एवं गुहाई करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बीज को यांत्रिक क्षति न हो, बीजों में यांत्रिक प्रदूषण न हो तथा बीज ढेर की पहचान बनाये रखी जाये।

बीजों को सुखाना :– कटाई के बीज में आर्द्रता मानक स्तर से अधिक होती है, अतः मानक स्तर आर्द्रता प्रतिशत लाने के लिए बीज को पक्के फर्श या टारपोलिन बिछाकर उस पर फैला कर सुखाना अति आवश्यक है। अनाज वाली फसलों में 12 प्रतिशत, दलहनी फसलों में 9 प्रतिशत, तिलहनी फसलों में 8 प्रतिशत व सब्जी बीज में 7–8 प्रतिशत नमी भण्डारण के लिए उपयुक्त पायी गई है।

भण्डारण :– सूखे हुए बीज को प्लास्टिक या जूट की बोरियों में भरकर भण्डारण आर्द्रता रहित साफ–सुथरे पक्के गोदामों में भण्डारित करना चाहिए। गोदामों में कीड़े, चूहों के नियंत्रण हेतु कीटनाशक दवा, फ्यूमीगेशन व चूहों के मारने हेतु जिंक फास्फॉइड का उपयोग करना चाहिए। भण्डारण में बीज को अलग–अलग किस्म के आधार पर टैग लगाकर रखना चाहिये जिससे किसी भी प्रकार का सम्मिश्रण न हो।

बीज प्रसंस्करण (प्रोसेसिंग) कार्य :– बीज प्रसंस्करण बीज व्यवसाय की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, जो बीजों की गुणवत्ता को बनाये रखने तथा बीज से अवांछनीय पदार्थ निकालने के लिए उत्तरदायी है, इस प्रक्रिया से खरपतवारों के बीज व अन्य फसलों के बीज अलग कर दिये जाते हैं। इसके उपरान्त चुनाई–बिनाई आवश्यकतानुसार कराकर भंडारण किया जाता है।

बीज परीक्षण :– बीज की भौतिक व आनुवांशिक शुद्ध ता की जाँच के लिए बीज परीक्षण प्रयोगशाला में लॉट के अनुसार निर्धारित मात्रा में बीज का नमूना भेजा जाता है। इसके अन्तर्गत अंकुरण क्षमता आर्द्रता प्रतिशत आदि परीक्षण भी किये जाते हैं। परीक्षण के उपरांत ही बीज की शुद्धता का प्रमाणीकरण निश्चित होता है। मानक स्तर के अनुरूप पाये जाने पर निरीक्षकों की देख–रेख में ही निर्धारित आकार की बोरियों में बीज की पैकिंग व टैंगिग की जाती है।

बीज प्रमाणीकरण हेतु कुछ जरूरी बातें

1. बीज उत्पादक किसान के पास उपयुक्त जमीन, सिंचाई सुविधा व अन्य आवश्यक संसाधन उपलब्ध हो या जिसकी व्यवस्था करने में सक्षम हो।
2. खेत में केवल एक ही फसल ले, मिश्रित खेती एवं पेढी फसल मान्य नही होती।
3. बीज उत्पादक किसान निर्धारित प्रपत्र में आवश्यक जानकारी भरकर निर्धारित समस्त शुल्कों (पंजीकरण शुल्क, कुल बोये गये क्षेत्र हेतु निरीक्षण शुल्क आदि) के साथ स्वयं या बीज उत्पादन संस्था के माध्यम से बीज प्रमाणीकरण संस्था को भेजें।
4. निरीक्षण के दौरान प्रमाणीकरण संस्था द्वारा बीज स्त्रोत सत्यापन हेतु खाली थैली/कट्टे, टैग, लेबल एवं बिल

सम्भाल कर रखें इसके अभाव में बीज उत्पादन कार्यक्रम बीज प्रमाणीकरण संस्था द्वारा निरस्थ किया जा सकता है।

5. बीज प्रमाणीकरण रांस्था द्वारा निरीक्षण के दौरान बीज उत्पादक किसान स्वयं अथवा उसके प्रतिनिधि को साथ रहना चाहिए, जिससे बीज की गुणवत्ता को सुनिश्चित करने वाली क्रियाओं जैसे– रोगिंग, कटाई, गहाई (थ्रेसिंग) व भण्डारण के दौरान ध्यान रखने वाली बातों आदि पहलूओं को भली प्रकार से समझा जा सके।

6. बीज प्रमाणीकरण संस्था द्वारा अन्तिम निरीक्षण के दौरान फसल निर्धारित मानकों के अनुरूप पाई जाती है तो अनुमानित उपज प्रति एकड़ के हिसाब से निरीक्षण प्रपत्र में भरकर एक प्रति बीज उत्पादक किसान को सौंप दी जाती है, उसी के अनुसार ही असंसाधित–बीज विधायन केन्द्र पर जमा करवाना होता है।

7. बीज उत्पादक द्वारा स्वयं के द्वारा उपलब्ध करवाये गये बारदाने में उत्पादित असंसाधित–बीज भरकर यथाशीघ्र या निर्धारित अन्तिम तिथि से पूर्व सम्बन्धित बीज विधायन केन्द्र पर पूर्व सूचना भिजवायें।

8. बीज विधायन केन्द्र से सम्बन्धित रअसंसाधित–बीज की ग्रेडिंग की अनुमानित तिथि प्राप्त कर निर्धारित तिथि को अपनी/अपने प्रतिनिधि की उपस्थिति में विधायन कार्य सम्पन्न करावें।

हिंदी भाषा की उन्नति का अर्थ है राष्ट्र और जाति की उन्नति।

– रामवृक्ष बेनीपुरी।

फ्लोराइड एवं इसके प्रभाव

प्रियंका रानी[1,2] एवं अम्लान कुमार घोष[1]
[1]बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उत्तर प्रदेश)
[2]बिहार कृषि विश्वविद्यालय, साबौर, (बिहार)
*संवादी लेखक का ई–मेलः rani.6priyanka@gmail.com, amlankumar@yahoo.com

प्रकृति में कुछ ऐसे तत्व पाये जाते हैं जो जीवों पर अपना दोहरा असर दिखलाते हैं। उनकी मात्रा मानक सीमा सूक्ष्म से अल्पतम के भीतर स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये अत्यन्त आवश्यक होती है। परन्तु मानक सीमा के पार उनकी मात्रा से स्वास्थ्य पर उल्टा प्रभाव पड़ने लगता है और गम्भीर बीमारिया पैदा होने लगती हैं। फ्लोराइड भी ऐसी तत्वों के श्रेणी में आता है।

फ्लोरीन एक अत्यधिक सक्रिय तत्व है जो अन्य तत्वों के साथ संयुक्त होने की दृढ़ क्षमता द्वारा फ्लोराइड नामक यौगिक का निर्माण करता है। फ्लोराइड भू–पटल में बहुतायत से पाया जाने वाला तेरहवां (13वां) तत्व है। यह विस्तृत रूप से चट्टानों, भू–जल, मिट्टी और वनस्पति में पाया जाता है। प्रोफेसर हेनरी मॉइसन द्वारा सन् 1886 में इसकी खोज कि गई थी। फ्लोराइड सभी तत्वों में सर्वाधिक विद्युत ऋणात्मक तत्व है, अतः यह हमारी जानकारी में सबसे मजबूत ऑक्सीकारक तत्व है। स्वतंत्र अवस्था में यह एक हल्के पीले रंग कि उत्तेजक गंध वाली गैस है। इसका क्वथनांक –188 डिग्री सेल्सियस एवं हिमांक –220 डिग्री सेल्सियस है। मानव शरीर में फ्लोराइड कि उपस्थिति अति आवश्यक है। कुछ एन्जाइम प्रक्रियाएं फ्लोराइड की कम मात्रा से या तो धीमी अथवा तेज हो जाती हैं। मानव शरीर के अस्थियों एवं दांतों में कैल्शियम की सर्वाधिक मात्रा पाई जाती है (दांत के इनामेल में करीब 110 पी.पी.एम. फ्लोराइड पाया जाता है) कैल्शियम एक विद्युत धनात्मक तत्व है और अपने धनात्मक प्रभाव के द्वारा विद्युत ऋणात्मक फ्लोराइड को अधिक मात्रा में अपनी तरफ खींचता है। इस प्रकार फ्लोराइड "कैल्शियम फ्लोरएपेटाइट क्रिस्टल" के रूप में जमा होता है। इस क्रिस्टल का मानव शरीर में अत्यधिक जमाव ही फ्लोरोसिस नामक बीमारी को जन्म देता है। अत्यधिक फ्लोराइड मानव शरीर में प्रोटीन, एन्जाइम एवं डी.एन.ए. को भी प्रभावित करता है।

सीरिया, जार्डन, लीबिया, अल्जीरिया, सूडान, केन्या, तुर्की, इराक, इरान, अफगानिस्तान, भारत, उत्तरी थाइलैंड और चीन फ्लोराइड प्रभावित देश है। अमेरिका और जापान के कुछ इलाके भी इससे प्रभावित हैं (डब्लूएचओ, 2001)।

भारत के लगभग 22 राज्यों में 200 से भी अधिक जिले, 1 लाख गांव और 10 मिलियन लोग पेयजल में फ्लोराइड की अधिकता से गंभीर शारीरिक रोग से ग्रसित हैं। भारत में फ्लोराइड प्रभावित राज्य क्रमशः ये हैं : राजस्थान > आंध्र प्रदेश > कर्नाटक > महाराष्ट्र > गुजरात > मध्य प्रदेश > बिहार > पश्चिम बंगाल > हरियाणा > तमिलनाडु > असाम > पंजाब > छत्तीसगढ़ > केरल > उत्तर प्रदेश।

संपूर्ण भारत में फ्लोराइड कि सर्वाधिक मात्रा राजस्थान के भूजल में लगभग 31.0 पी.पी.एम. तक पाई गई है।

फ्लोराइड के स्रोतः

प्रकृति में फ्लोराइड के दो मुख्य स्त्रोत हैं : प्राकृतिक स्त्रोत एवं मानवजनित स्त्रोत।

अ. प्राकृतिक स्त्रोतः

1. भूमिगत जल में फ्लोराइड कि सर्वाधिक मात्रा फ्लोराइड वाले चट्टानों की वजह से पाई जाती है। अधिक सांद्रता वाले फ्लोराइड युक्त जल अधिकतर समुद्री इलाकों और पर्वत के निचले इलाकों में पाए जाते हैं। फ्लोराइड आग्नेय और परतदार चट्टानों में पाए जाते हैं। पेय जल में फ्लोराइड की मात्रा 1–1.5 पी.पी.एम. (मि.ग्रा./लीटर से अधिक होने पर स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं उत्पन्न होने लगती हैं, अर्थात मानव शरीर फ्लोराइड कि मात्रा एक सीमा (1.0 से 1.5 पी.पी.एम.) तक सहन करने कि क्षमता रखता है। भारतीय मानक ब्यूरो एवं विश्व स्वास्थ्य संगठन ने फ्लोराइड कि अधिकतम सीमा 1.5 पी.पी.एम. तय की है।

2 मिट्टी में फ्लोराइड : मिट्टी में फ्लोराइड, फ्लोराइड युक्त चट्टानों और खनिजों के अपक्षय द्वारा आते हैं। चट्टानों में फ्लोरिन की औसत मात्रा लगभग 100–1300 मि.ग्रा./कि. ग्रा. और मृदा में 20–500 मि.ग्रा./कि. ग्रा. होती है।

3. ज्वालामुखी की राखः ज्वालामुखी की चट्टानों में अक्सर फ्लोराइड भारी मात्रा में पाया जाता है। हाइड्रोजन फ्लोराइड मैग्मा में आसानी से घुल जाता है और विसरण कि क्रिया के दौरान धीरे–धीरे रिसता है। ज्वालामुखी विस्फोट के दौरान ज्वालामुखी के राख के रूप में फ्लोराइड वायुमंडल में चला जाता है और बारिश के पानी के साथ धरातल पर पहुंच जाता है। धरातल पर मौजूद फ्लोराइड बारिश के पानी के साथ बहुत आसानी से भूमिगत जल में चले जाते हैं।

4. फ्लोराइड कुछ मात्रा में खाद्य पदार्थों में भी उपस्थित होती है परंतु समुद्री मछली, पनीर, तुलसी एवं चाय में फ्लोरीन अधिक गात्रा गें उपस्थित होती है। तंबाकू एवं पान–गराला में भी फ्लोराइड बहुतायत में पाया जाता है। विभिन्न खाद्य पदार्थों जैसे कि हरी सब्जियों, दाल, मांस–मछली एवं फलों में फ्लोराइड अल्प मात्रा में उपस्थित होता है। फ्लोराइड कि मात्रा पान में 7.8 से 12 मिग्राध्लीटर सुपारी में 3.8 से 12 मिग्रा/लीटर एवं तंबाकू में 3.1 से 38.0 मिग्रा/लीटर तक होती है।

खाद्य–सामग्री में फ्लोराइड कि मात्रा मुख्यतः मिट्टी के प्रकार, भू–पटल में उपस्थित लवणों एवं उपलब्ध पानी पर निर्भर करती हैं। उच्च फ्लोराइयुक्त पानी भोजन एवं सब्जियों में फ्लोराइड कि मात्रा को बढाता है।

ब. मानवजनित स्त्रोतः

1. फ्लाई एश : जीवाश्म ईंधन के जलने से निकले फ्लाई एश में फ्लोराइड अधिक मात्रा में पाई जाता है। पावर प्लांटों में कोयले के दहन कि वजह से पूरी दुनिया में 100 से 150 मिलियन टन से अधिक फ्लाई एश हर साल तैयार होता है (प्रसाद और मंडल, 2006; पीकोस और पास्लावास्का, 1998)। फ्लाई एश का ठीक से विसर्जन नहीं किए जाने की वजह से फ्लोराइड भूमिगत जल में घुल जाता है। कोयले में फ्लोराइड कि मात्रा कोयले के प्रकार पर निर्भर करती है। ईंट भट्ठे में जलने वाले कोयले से भी फ्लोराइड निकलता है (झा एवं अन्य, 2008)।

2. उर्वरक एवं खेती में प्रयोग होने वाले अन्य रसायन : फास्फेट वाले उर्वरकों कि वजह से पानी और मिट्टी में फ्लोराइड घुल जाता है (मोटालाने और स्ट्रायडोम, 2004; फारूकी एवं अन्य, 2007)। यह जाहिर है कि इन उर्वरकों में फ्लोराइड की निर्णायक मात्रा मौजूद रहती है, जैसे सुपरफास्फेट में (2750 मिग्रा प्रति किलो), पोटाश (10 मिग्रा प्रति किलो) और एनपीके (1657 मिग्रा प्रति किलो) आदि (श्रीनिवास राव, 1997)। सिंचाई के पानी में भी लगभग 0.34 मिग्रा प्रति लीटर फ्लोराइड होता है। खेती के इलाके में लगातार सिंचाई की वजह से भूमिगत जल में फ्लोराइड कि मात्रा बढ़ जाती है (यंग एवं अन्य, 2010)। अगर एक हेक्टेयर खेतिहर जमीन में 10 मिग्रा प्रति लीटर फ्लोराइड वाले पानी से 10 से०मी० सिंचाई की जाए तो मिट्टी में 10 किलो फ्लोराइड घुल जाता है। यह भूमिगत जल और मिट्टी में फ्लोराइड घुलने के खतरे को दर्शाता है। इसके अलावा खरपतवार नाशक, कीटनाशक, व खेती में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न रसायन, विभिन्न औद्योगिक क्रियाएं जैसे एल्युमीनियम को पिघलाना, स्टील, सीमेंट उत्पादन, रंग–रोगन, सीसा और सीरामिक की भट्ठी की वजह से भी वातावरण में फ्लोराइड घुलने लगता है।

3. टूथपेस्ट एवं माउथवॉश : हम सभी जानते है कि अधिकांशतः टूथपेस्ट फ्लोराइड युक्त होते हैं। माउथवॉश भी एक प्रकार का फ्लोरीनयुक्त पानी है, मुख में उपस्थित रक्त वाहिनियां फ्लोराइड को कुछ ही मिनटों में सोख लेती हैं। इनका लम्बे समय से और अधिक मात्रा में इस्तेमाल कि वजह से हमारा स्वास्थ्य एवं विभिन्न जलाशय प्रदूशित हो रहे हैं।

फ्लोराइड के दुष्प्रभावों को ध्यान में रखते हुए ड्रग एवं कॉस्मेटिक एक्ट (1945) के तहत रखी गई शर्तों के अनुसार किसी भी टूथपेस्ट में 1000 पी.पी.एम. से अधिक फ्लोराइड नहीं होना चाहिए।

दवाईयां

सोडियम फ्लोराइड (NaF) ऑस्टियोस्क्लेरोसिस ऑस्टियोपारोसिस एवं डेंटल केरीज जैसी बीमारियों में लाभदायक है। फ्लोरोसिस एवं फ्लोराइड संबंधी बीमारियाँ फ्लोराइड के लगातार लंबे समय तक व अधिक मात्रा में इस्तेमाल किए जाने से उत्पन्न होती हैं।

फ्लोराइड का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव

शरीर में फ्लोराइड का कम मात्रा में होना उतना ही हानिकारक है जितना की अधिक मात्रा में होना, क्योंकि फ्लोरीन की सहायता से अस्थियों का सामान्य लवणीकरण होता है एवं दांतों के इनामेल का निर्माण होता है। शरीर में उपस्थित कुल फ्लोराइड का 96% फ्लोराइड अस्थियों एवं दांतों में पाया जाता है।

(अ) शरीर में अल्पमात्रिक फ्लोराइड का प्रभाव

खासतौर पर बच्चों में फ्लोराइड के अपर्याप्त उपभोग (0.5 पीपीएम से कम) से कुछ स्वास्थ्य समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं, जैसे–दातों का सड़ना, दांतों के इनामेल की बनावट में कमी, अस्थियों के सामान्य लवणीकरण में कमी।

(ब) अधिक मात्रा में फ्लोराइड के उपभोग से शरीर पर दुष्प्रभावः

अधिक मात्रा में फ्लोराइड के उपभोग से जैविक क्रियाओं पर दुष्प्रभाव निम्न कारणों पर निर्भर करता है–

पेयजल में उपस्थित फ्लोराइड की मात्रा

अधिक क्षारीय पेयजल एवं कैल्शियम की कमी

फ्लोराइड प्रतिदिन ग्रहण की गई मात्रा

फ्लोराइड के संपर्क में रहने कि अवधि

गर्भवती महिलाएं एवं स्तनपान कराने वाली माताएं फ्लोराइड के प्रभाव कि दृष्टि से सर्वाधिक असुरक्षित हैं क्योंकि इन महिलाओं में फ्लोराइड आवॅलनाल एवं स्तनपान द्वारा बच्चे के शरीर में प्रविष्ट होता है।

फ्लोराइड की अधिकता के कारण शरीर में हारमोन संबंधी अनियमितताएं भी आरम्भ होने लगती हैं। स्वस्थ हड्डियों के निर्माण एवं कार्य के लिए आवश्यक हारमोन कैल्सिटोनिन पैराहारनोन, विटामिन–डी एवं कॉर्टीजोन इत्यादि हैं। फ्लोराइड की अधिकता से उत्पन्न फ्लोरोसिस एक धीमी गति से बढ़ने वाली बीमारी होती है।

सारिणी 1.1 फ्लोराइड कि मात्रा एवं उसका शरीर पर प्रभाव

फ्लोराइड (मि.ग्रा./लीटर)	मनुष्य के शरीर पर प्रभाव
0.5 से कम	दंत – क्षरण
0.5 से 1.0	दंत – क्षरण से बचाव, दांतों एवं हड्डियों की सुरक्षा
1.5 से .0	दंत फ्लोरोसिस
3.0 से 10	अस्थि – फ्लोरोसिस
10 से अधिक	पंगु अस्थि – फ्लोरोसिस एवं अस्थिजड़ता

फ्लोरोसिस तीन प्रकार के होते है–

1. दंत फ्लोरोसिस
2. अस्थि फ्लोरोसिस
3. अस्थि के अतिरिक्त

1. दंत फ्लोरोसिसः

दाँतों की ऊपरी सतह (इनामेल) कि श्वेतता एवं चमक धीरे–धीरे लुप्त होना ही दंत फ्लोरोसिस के प्राथमिक लक्षण है। तत्पश्चात दाँतों पर पीले धब्बे गहरे होते हैं तथा क्रमशः भूरे एवं काले धब्बों का रूप ले लेते हैं। फ्लोरोसिस की तीव्रता दाँतों के निर्माण की प्रक्रिया में फ्लोराइड ग्रहण करने की मात्रा पर निर्भर करती है।

(स्त्रोतः ग्रामीण विकास विज्ञान समिति 2/10/2014)

अ. लक्षणः

1. प्रारंभिक अवस्था– सफेद दांत पीले होने लगते हैं एवं दांतों की चमक खत्म हो जाती है।

2. मध्यम अवस्था– दांतों पर यह पीला रंग चकते के रूप में या रेखा के आकार में स्पष्ट उभरने लगते हैं तथा धीरे–धीरे दांतों पर समतल रेखाएं बढ़ती जाती हैं, जो क्रमशः पीले, भूरे व काले रंग की हो जाती हैं।

3. अंतिम अवस्था– सभी दांत काले हो सकते हैं। इसके बाद दाँतों में खड्डे या छेद हो जाते हैं तथा वे टूट जाते हैं। कम उम्र में दांतों का टूटना उन इलाकों में होता है जहां फ्लोरोसिस महामारी की तरह फैला होता है।

ब. उपाय :

दंत फ्लोरोसिस से प्रभावित दांत फिर से सामान्य अवस्था नहीं प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि यह दाँतों का अभिन्न हिस्सा बन चुका होता है। अतः फ्लोराइडरहित पेयजल एवं खाद्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए।

2. अस्थि फ्लोरोसिस

मानव यदि उच्च फ्लोराइड युक्त पानी का सेवन लम्बे समय तक जारी रखता है तो शरीर पर अस्थि फ्लोरोसिस के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। इसके प्रभाव से व्यक्ति के संरचनात्मक कंकालीय तंत्र में विकृति पैदा हो जाती है। इसमें हड्डियों का बढ़ना, जोड़ों में जड़ता आना, जोड़ों में दर्द व जोड़ों का लचीलापन खत्म हो जाता है।

(स्त्रोतः इंडिया वाटर पोर्टल सईदा अम्बीअ जहाँन 15/09/2017)

फ्लोराइड की विषाक्तता के कारण सर्वाइकल (गर्दन) एवं लंबर (कटि–प्रदेश) मेरूदंड के जोड़, घुटनों के जोड़ व कूल्हे की हड्डी के जोड़ों में तीव्र दर्द, कठोरपन एवं जड़ता आ जाती है। ऐसा अस्थियों में असामान्य वृद्धि व अत्यधिक मात्रा में फ्लोराइड का अस्थियों पर जमा होना एवं हड्डियों की कड़ियों के बीच का स्थान असामान्य रूप से बढ़ना या सिकुड़ जाने के कारण होता है।

अस्थि के जोड़ों में कठोरता एवं अस्थि विरुपता के कारण निम्न रोग उत्पन्न होते हैं।

1. कुबड़ापन
2. पार्श्वकुटजता
3. अधरांगघात दोनों टांगों सहित शरीर के निचले भाग में होने वाला पक्षाघात।
4. चतुरांगघात दोनों हाथ व पैर मे पक्षाघात हो जाना।
5. घुटने के जोड़ों की मुड़ने संबंधी (कुंचन) विरुपताअस्थि–फ्लोरोसिस बच्चों एवं बूढ़ों दोनों को समान रूप से प्रभावित करता है।

(स) प्रबंध

अस्थि संबंधी फ्लोरोसिस एक अपरिवर्तनीय प्रक्रिया है अर्थात फ्लोरोसिस रोग से पीड़ित होने के पश्चात पुनः सामान्य अवस्था प्राप्त नहीं किया जा सकता है, परंतु रोग की प्रारंभिक अवस्था को आगे बढ़ने से रोकने के कुछ उपाय व सावधानियां व्यवहार में लाए जा सकते हैं जो निम्न प्रकार हैं :–

क) भोजन में विटामिन–सी एवं कैल्शियम की भरपूर मात्रा ग्रहण करनी चाहिए एवं संतुलित भोजन लेना चाहिए।

ख) फ्लोराइड मुक्त करके ही पेयजल को उपयोग में लेना चाहिए।

ग) जिन साधनों में फ्लोराइड उपस्थित हो उन साधनों के प्रयोग से बचना चाहिए। फ्लोराइडयुक्त साधन हैं– टूथपेस्ट, माउथवॉश, तंबाकू, फ्लोराइड युक्त कुछ दवाईयों आदि।

घ) फ्लोरोसिस के किसी भी लक्षण के प्रकट होते ही डॉक्टर की सलाह लेनी चाहिए।

3. शरीर के अन्य अंगों पर फ्लाराइड के दुष्प्रभावः

फ्लोरोसिस न सिर्फ अस्थियों एवं कंकाल को प्रभावित करता है बल्कि मासपेशियों, लाल रक्त कणिकाओं, पाचन तंत्र एवं स्नायु (लिगामेंट) इत्यादि को भी प्रभावित करता है। फ्लोराइड कोमल अंग तथा शरीर की तंत्रिकाओं पर भी अपना प्रभाव डालता है। जिसकी वजह से (i) पेट में तीव्र दर्द (ii)

दस्त या कब्ज (iii) शौच में खून आना (iv) पेट में गैस बनना (v) जी घबराना (अप) मुंह में छाले होना (vii) भूख कम लगना (viii) सिर दर्द (ix) तंत्रिका तंत्र पर प्रभाव (x) शुक्राणु पर प्रभाव

नेशनल कैंसर इंस्टीट्यूट के भूतपूर्व प्रधान कैमिस्ट डॉ. डीन बर्क के अनुसार किसी भी अन्य रसायन की तुलना में फ्लोराइड के प्रयोग से सबसे अधिक मौतें कैंसर से हो रही हैं।

फ्लोराइड–विषाक्तता को रोकने संबंधी उपाय

(i) फ्लोराइड के दुष्प्रभाव को रोकने के लिए प्रतिदिन 500–1000 मि.ग्रा. विटामिन–सी ग्रहण करना चाहिए।

(ii) फ्लोराइड के दुष्प्रभावों को कम करने के लिए भोजन में कैल्शियम की पर्याप्त मात्रा का होना भी अति आवश्यक है अर्थात एक वयस्क व्यक्ति को प्रतिदिन 1.5 ग्राम कैल्शियम लेना चाहिए। दूध, दही, हरी पत्तेदार सब्जियां आदि खाद्य पदार्थ कैल्शियम से परिपूर्ण होते हैं। आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग एवं अशिक्षित लोगों में फ्लोरोसिस का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। संपूर्ण संतुलित भोजन फ्लोराइड के दुष्प्रभाव को रोक सकता है।

फ्लोराइड का पशु स्वास्थ्य पर प्रभावः

यदि मवेशी लगातार लम्बे समय तक फ्लोराइडयुक्त पानी पीते हैं तो इन्हें 'हाइड्रोफ्लोरोसिस' नामक बीमारी हो जाती है। जो पशुओं को लंगड़ा तो बनाती ही है साथ में इनमें बाँझपन, मृत बछड़े होना, प्रजनन में कठिनाई जैसे समस्याएं भी होने लगती हैं। फ्लोराइड के दुष्प्रभाव से पशुओं में दूध देने की क्षमता भी घट जाती है और इससे पशु की मांसपेशियाँ कमजोर पड़ने से मांस का उत्पादन भी कम हो जाता है जिससे पशुपालकों की आर्थिक स्थिति और कमजोर होने लगती है। इसके दुष्प्रभाव से बचने के लिये पशुपालक अपने पशुओं को ऊपर वर्णित विभिन्न फैक्टरियों से जहाँ तक हो सके दूर रखना चाहिए व इनके आसपास की घास को भी नहीं चरने देना चाहिए व फ्लोराइड प्रदूशित पानी को भूलकर भी पशु को नहीं पिलाना चाहिए।

(स्त्रोतः ग्रामीण विकास विज्ञान समिति 2/10/2014)

फ्लोराइड के दुष्प्रभावों के फैलाव का प्रमुख कारण विकराल रूप से बढ़ती हुई जनसंख्या का पेयजल के स्रोतों

पर अत्यधिक दबाव डालना है। पेयजल की गुणवत्ता को नजरअंदाज करते हुए नलकूपों की अंतहीन खुदाई, बढ़ता हुआ औद्योगीकरण व शहरीकरण पानी में फ्लोराइड की मात्रा को तेजी से बढ़ा रही है।

स्वास्थ्य व पर्यावरण दोनों के लिये खतरा होने के बावजूद वर्तमान में केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड व पर्यावरण एवं वन विभाग ने फ्लोराइड को अपने प्रदूषक मानकों में शामिल नहीं कर रखा है। इसी वजह से औद्योगिक प्रबन्धन फ्लोराइड प्रदूषण की अनदेखी व अपनी मनमानी करते हैं। प्रबन्धन चाहे तो अपनी फैक्टरियों में उच्च गुणवत्ता के फिल्टर लगाकर इस औद्योगिक फ्लोराइड प्रदूषण को रोक सकते हैं। यदि केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड अपनी खतरनाक वायु प्रदूषकों की सूची में फ्लोराइड प्रदूषक को भी शामिल कर दें तो औद्योगिक फ्लोराइड प्रदूषण करने वालों पर कानूनी अंकुश लगाया जा सकता है।

फ्लोरोसिस की रोकथाम के लिये यह अति आवश्यक है कि सामूहिक रूप में प्रयास किये जाएँ और समाज के सभी वर्गों को इस कार्य में सम्मिलित किया जाये जिनमें रोगी, लोक स्वास्थ्य इंजीनियर, जल वैज्ञानिक, नीति निर्धारणकर्ता, जन सामान्य, राज्य सरकारें, दन्त चिकित्सक, वैज्ञानिक, शोधकर्ता, चिकित्सक, एनजीओ इत्यादि शामिल हों।

भाषा देश की एकता का प्रधान साधान है।

– आचार्य चतुरसेन शास्त्री।

फसल सुधार के लिए नई प्रजनन तकनीक ''जीनोम एडिटिंग'': अनुप्रयोग, क्षमता और चुनौतियाँ

संगीता श्रीवास्तव
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)
*संवादी लेखक का ई–मेल: sangeeta.srivastava@icar.gov.in

कृषि में फसल सुधार एक सतत प्रक्रिया है जो दुनिया की आबादी के लिए भोजन, चारा और फाइबर की पर्याप्त आपूर्ति सुनिश्चित करती है। उपज से संबंधित लक्षणों को पादप प्रजनन और द्वारा सुधारा जाता है। परन्तु आनुवंशिक संशोधनों की अपनी सीमाएं हैं। इस कारण नई प्रजनन तकनीक द्वारा फसल सुधार दुनिया भर में लोकप्रिय हो रहा है। आणविक आनुवंशिक में नवाचार तथा जीनोम–संपादन और जीनोम में सटीक बदलाव ने फसल सुधार में क्रांति ला दी है। जीनोम या जीन एडिटिंग (जीईया जीनोम संशोधन/संपादन) एक प्रकार का आनुवांशिक संशोधन है, जिसमें डीएनए को सम्मिलित किया जाता है, हटा दिया जाता है या फिर इंजीनियर न्यूक्लियेस का उपयोग करके किसी जीव के जीनोम में बदलाव किया जाता है। जीनोम में एक विशिष्ट साइट पर डबल स्ट्रेन्डेड ब्रेक (डीएसबी) बनाने के लिए, ब्रेक साइट पर या उसके निकट वांछित डीएनए संशोधन को प्रेरित करने के लिए इंजीनियर न्यूक्एिज का उपयोग किया जाता है। ये इंजीनियर न्यूक्लियेस नाभिक जीनोम में वांछित स्थानों पर साइट–विशिष्ट डबल–स्ट्रैंड ब्रेक (डीएसबी) बनाते हैं। पिछले एक दशक में, पौधों की प्रजातियों की एक विस्तृत श्रृंखला में विभिन्न न्यूक्एिज लक्षित डीएसबी उत्पन्न करने में सक्षम प्रभावकारिता को सिद्ध किया है। इन डीएसबी की मरम्मत गैर–सजातीय अंत को जोड़ना (नॉन–होमोलॉगस एंड जॉइनिंग) या सजातीय पुनर्संयोजन (होमोलॉगसरी कोम्बिनेशन) के माध्यम से की जाती है, जिसके परिणाम स्वरूप जीनोम में लक्षित उत्परिवर्तन होते हैं।

जीनोम–संपादन तकनीक में चार मुख्य प्रकार के साइट–विशिष्ट न्यूक्लियेस (SSN) जो जीनोम संपादन संयंत्र के लिए इंजीनियर हैं शामिल हैं–मैगान्यूक्लियेस (MNs), जिंक–फिंगर न्यूक्लियेस (ZFNs), प्रतिलेखन उत्प्रेरक–जैसे प्रभावक (TALENs), और नियमित रूप से छोटा पैलिंड्रोम दोहराता संकुल/CRISPRassociated प्रोटीन 9 (CRISPR@Cas9)।

मैगान्यूक्लियेस (एमएन)

मैगान्यूक्लियेस (एमएन)या होमिंग एंडोन्यूक्लियेज (HÈ) बड़े क्लीवेज साइट्स (>14–40 बीपी) के साथ अत्यधिक विशिष्ट एंडोन्यूक्लिगेज हैं। इन साइट स्पेसिफिक न्यूक्एिज का यूकेरियोट्स में विशिष्ट लोसाई पर लक्षित डीएसबी का उत्पादन करने के लिए उपयोग किया जाता है। एमएन द्वारा उत्पादित डीएसबी को नॉनहोमोलोजिक एंड जॉइनिंग या होमोलोजी द्वारा निर्देशित रिपेयर किया जा सकता है। चूहे, बैक्टीरिया, मच्छरों, पौधों और मक्खियों मेंयह तकनीक जीनोम–एडिटिंग टूल के रूप में कार्य करती है लेकिन लक्ष्य–अनुक्रम विशिष्टता के कारण मैगान्यूक्लियेस (meganucleases) प्रौद्योगिकी का आमतौर पर उपयोग नहीं किया जाता है।

जिंक–फिंगर न्यूक्लियेस् (ZFN)

जिंक–फिंगर न्यूक्लियेस जो कि काईमेरिक फ्यूजन प्रोटीन हैं, डीएनए पहचान मॉड्यूल और डीएनए क्लीवेज डोमेन के साथ एक डीएनए बाइंडिंग डोमेन से युक्त होते हैं। डीएनए–बाइंडिंग डोमेन Cys2-His2 जिंक–फिंगर के एक सेट का बना होता है तथा प्रत्येक 3 से 6 बीपी डीएनए को पहचानता है। जिंक–फिंगर के डाइमर्स डीएनए में डीएसबी बना सकते है। जिंक–फिंगर (जेडएफएन)–मध्यस्थता जीनोम संशोधन की प्रमुख बाधा है इसका अधिक समय लेना, रोगाणु कोशिकाओं में कम दक्षता और कम प्रजनन क्षमता हालांकि दैहिक कोशिकाओं में आम तौर पर उच्च दक्षता पाई जाती है।

ट्रांसक्रिप्शन एक्टीवेटर जैसे इफ़ेक्टर न्यूक्लियेज़ (TALENs)

रोगज़नक़ जीवाणु ज़ैंथोमोनास कई फसल को संक्रमित करता है जिसमें धान, खट्टे फल, टमाटर और सोयाबीन आदि शामिल है। ज़ैंथोमोनास द्वारा पौधों को वितरित प्रोटीन की बैटरी को ट्रांसक्रिप्शनल एक्टिवेटर–जैसे इफ़ेक्टर्स (टेल्स) कहा जाता है। एक प्राथमिक प्रयोग में टेल डीएनए बंधन डोमेन को Fok। एंडोन्यूक्लाइज के उत्प्रेरक डोमेन के साथ फ्यूज किया गया जिस के परिणामस्वरूप TALENs- **ट्रांसक्रिप्शन एक्टीवेटर जैसे इफ़ेक्टर न्यूक्लियेज़** की उत्पत्ति हुई। बड़ी लक्ष्य साइट **ट्रांसक्रिप्शन एक्टीवेटर जैसे इफ़ेक्टर न्यूक्लियेज़** को विशिष्ट बनाती है। अन्य न्यूक्लिएज़ की तुलना में कई जीवों में **ट्रांसक्रिप्शन एक्टीवेटर जैसे इफ़ेक्टर न्यूक्लियेज़** का उपयोग लक्षित संशोधन उत्पन्न करने के लिए किया गया है। **ट्रांसक्रिप्शन एक्टीवेटर जैसे इफ़ेक्टर न्यूक्लियेज़** का फायदा यह है कि वे औसतन हर 10 बीपी में एक डीएनए स्थान पर लक्ष्यीकरण की अनुमति देते हैं। **ट्रांसक्रिप्शन एक्टीवेटर जैसे इफ़ेक्टर न्यूक्लियेज़** के डीएनए बाध्यकारी डोमेन को आसानी से वस्तुतः किसी भी डीएनए अनुक्रम को पहचान करने के लिए इंजीनियर किया जा सकता है। जिंक–फिंगर न्यूक्लियेस और ट्रांसक्रिप्शन एक्टीवेटर जैसे इफ़ेक्टर न्यूक्लियेज़ दोनों में एक बड़ी बाधा है। प्रत्येक नए लक्ष्य के लिए एक नया प्रोटीन इंजीनियरिंग जटिल और समय लेने वाली प्रक्रिया है जो संभव नहीं है। **ट्रांसक्रिप्शन एक्टीवेटर जैसे इफ़ेक्टर न्यूक्लियेज़** आकार में बहुत बड़ा है, ~950 से ~1900 एए प्रति जोड़ी, अतः पौधों कीकोशिका में लगाने के लिए टैलेन की डिलीवरी भी चुनौतीपूर्ण है। **ट्रांसक्रिप्शन एक्टीवेटर जैसे इफ़ेक्टर न्यूक्लियेज़** के अतिरिक्त, एक नया डिनोवो इंजीनियर प्रतिलेखन उत्प्रेरक जैसे प्रभावकारक (dTALEs) विकसित किया गया है जो पौधों में जीन अभिव्यक्ति को सक्रिय करने या दबाने में मदद करता है।

क्लस्टर किए गए नियमित रूप से छोटे पैलिंड्रोमिक रिपीट प्रतिच्छेदन (क्रिस्पर–कैस 9)

जीनोम–एडिटिंग टूलबॉक्स की सबसे नवीन साधन "नियमित रूप से छोटे पैलिंड्रोमिक रिपीट प्रतिच्छेदन प्रणाली" ने जीनोम संपादन में क्रांति ला दी है। सक्षम और कुशल लक्षित जीनोम संपादन, के अतिरिक्त इसमें अंतर्जात जीन अभिव्यक्ति या विशिष्ट गुणसूत्र LOCI लेबल करने के लिए जीव या कोशिका को विनियमित करने की क्षमता है। इस प्रणाली की सादगी और मजबूती ने इसे दुनिया भर में उपयोग करने में आसान और आकर्षक जीनोम संपादन संयंत्र बना दिया है। इसमें एक काइमरिक आरएनए और एक एकल मोनोमेरिक प्रोटीन, कैस 9 शामिल है। कैस 9 में दो हिस्से होते हैं। एक बड़े गोलाकार मान्यता (आरईसी) और एक छोटा न्यूक्लिएज़ (NUC)। क्लस्टर किए गए नियमित रूप से छोटे पैलिंड्रोमिक रिपीट प्रतिच्छेदन (क्रिस्पर–कैस 9) प्रणाली का दूसरा घटक है एकल गाइड आरएनए (sgRNA) जो कैस 9 न्यूक्लिएज के साथ एक जटिल संरचना बनाता है।

जीनोम–संपादन तकनीकों का अनुप्रयोग

फसलों के आनुवंशिक सुधार का मुख्य उद्देश्य है खाद्य उत्पादन में वृद्धि। प्रमुख खाद्य, फाइबर और औद्योगिक फसलें जैसे कि सरसों, गेहूं, आलू, कपास, सेब, मूंगफली, गन्ना, और साइट्रस आदि में उनकी जीनोम जटिलता बाधक बन जाती है हालांकि, साइट–विशिष्ट न्यूक्लियेस की मध्यस्थता वाली जीनोम–संपादन प्रणाली के अनुप्रयोग द्वारा फसल आनुवंशिक सुधार प्रक्रिया को बहुत तेज किया गया है। बैक्टीरिया पौधों में रोग पैदा कर सकते हैं और कई विषाक्त पदार्थ, पॉलीसेकेराइड, पेक्टिक एंजाइम और हार्मोन सहित मेटाबोलाइट्स पैदा कर सकते हैं। जब साइट्रस CsLOB1 जीन को नियमित रूप से छोटे पैलिंड्रोमिक रिपीट प्रतिच्छेदन (क्रिस्पर–कैस 9) तकनीक का उपयोग करके लक्षित किया गया, तब संपादित पौधों ने जीवाणु ज़ैंथोमोनास के खिलाफ उच्च प्रतिरोध दिखाया इसके अलावा, संपूर्ण प्रभाव–बंधन तत्व (EBEPthA4) अनुक्रम के विलोपन से उत्पन्न होमोजीगस म्यूटेंट में दोनों CsLOB1 एलील्स ने सिट्रस पौधे को बैक्टीरिया प्रतिरोध की एक उच्च डिग्री प्रदान की।

फंगल रोग के कारण आधुनिक कृषि घाटे से बचने के लिए रसायनों पर निर्भर है जो मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण को प्रभावित करते हैं। कवक प्रतिरोधी गेहूं की खेती का

विकास गेहूं प्रजनन का एक प्रमुख उद्देश्य रहा है। गेहूं में TaMLO-A1, TaMLO-B1,TaMLO-D1 जीन का एक साथ लक्ष्यीकरण नियमित रूप से छोटे पैलिंड्रोमिक रिपीट प्रतिच्छेदन (क्रिस्पर–कैस 9) प्रणाली और ट्रांसक्रिप्शन एक्टीवेटर जैसे इफ़ेक्टर न्यूक्लियेज के साथ पार्टिकिल बमबारी का उपयोग कर फफूंदी प्रतिरोध उत्पन्न किया गया। गेहूं में फ्यूसेरियम हेड ब्लाइट (एफएचबी) प्रतिरोध भी तीन गेहूं जीन को लक्षित करके प्राप्त किया गया। ये तीन जीन 42.2% म्यूटेशन दक्षता के साथ संपादित किये गये और एफएचबी के खिलाफ प्रति रक्षा में शामिल पाये गये। कृषि क्षति में कीटनाशक पारिस्थितिकी तंत्र को अस्थिर करता है। कृषि फसल कीटों के प्रतिरोध के लिए जैविक नियंत्रण का उपयोग बढ़ रहा है। कपास में एक जटिल जीनोम होता है जो जीनोम अनुक्रम जानकारी अपूर्ण होने के कारण प्रयोग करना बहुत कठिन है। कपास में एक फिर से इंजीनियर किये गये मेगानुक्लिज़ का उपयोग एक ट्रांसजेनिक कीट नियंत्रण लोकस से सटे एक अंतर्जात लक्ष्य अनुक्रम की विशिष्ट दरार के लिए किया गया था। लक्षित डीएनए की दरार और सजातीय पुनर्संयोजन की मरम्मत ने कपास में अतिरिक्त जीन की प्रविष्टी को संभव बनाया। cry2Aelbar जीन के फ्लैंकिग हिस्से में उत्परिवर्तन और हर्बिसाइड के साथ मरम्मत के क्षेत्र सहिष्णुता जीन के परिणामस्वरूप हर्बिसाइड–टॉलरेंस और कीट–प्रतिरोध की स्टैकिंग सम्भव हो पाई।

वायरस फूल, बीज जड़ें, तना और पत्तियां सहित पौधों के सभी हिस्सों को नुकसान पहुंचा सकते हैं, वायरस को रासायनिक रूप से नियंत्रित करना कठिन है। रोगाणुरोधी उपायों से संक्रमित पौधों को नुकसान होता है और वायरस वाहक आबादी को सीमित करने के लिए अत्यधिक कीटनाशक प्रयोग की आवश्यकता होती है। पारंपरिक प्रजनन ने कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। पॉलीप्लाइड फसलों में वायरस की चरम आनुवंशिक प्लास्टिसिटी की जरूरत है। वायरस प्रतिरोधी निकोटियाना बेंथैमिना पौधों विकसित करने के प्रयास में कोडिंग और गैर–कोडिंग अनुक्रमों को लक्षित करके एक sgRNAs विशेष रूप से डिजाइन किए गए थे। टमाटर की पीला पत्ती कर्ल वायरस (TYLCV) क्लस्टर किए गए नियमित रूप से छोटे पैलिंड्रोमिक रिपीट प्रतिच्छेदन (क्रिस्पर–कैस 9) ने लक्ष्य क्षेत्र में उत्परिवर्तन उत्प्रेरण द्वारा TYLCV को निशाना बनाया जिस के परिणामस्वरूप पौधों में वायरल डीएनए का संक्रमण कम हुआ।

किसान जुताई, हाथ की निराई, और शाकनाशी प्रयोग द्व ारा खेतों रो अवांछित पौधों को हटाने की कोशिश करते हैं। जुताई द्वारा शीर्ष परत को उजागर करने से कई समस्याओं जैसे मिट्टी से हवा और पानी का क्षरण, साथ ही साथ श्रम में वृद्धि आदि होता है। जीनोम संपादन द्वारा एसिटोलैक्टेट सिंथेज़ जीन (SuRAऔर SuRB) को तंबाकू के पौधों में इमिडाज़ोलिनोन और सल्फोनीलयूरिया के खिलाफ प्रतिरोध हेतु लक्षित किया गया। प्रोटोप्लास्ट के विद्युतीकरण के साथ जिंक–फिंगर न्यूक्लियेस तकनीक का उपयोग किया गया। हर्बीसाइड–रेसिस्टेंस म्यूटेशन को सफलतापूर्वक एसआरआर लोकी और >40% पुनः संयोजक पौधों में पेश किया गया। अरैबिडोप्सिस थालियाना में, 5–enolpyruvylshikimate-3-phosphate (EPSPS) जीन को एकल स्टैंड ऑलिगोन्यूक्लियोटाइड्स (ssODN) **ट्रांसक्रिप्शन एक्टीवेटर जैसे इफ़ेक्टर न्यूक्लियेज**, और क्लस्टर किए गए नियमित रूप से छोटे पैलिंड्रोमिक रिपीट प्रतिच्छेदन **(क्रिस्पर–कैस 9)** का उपयोग करके सफलतापूर्वक संपादित किया गया जिसमें उच्च लक्षित जीनोम–संपादन आवृत्ति प्राप्त की गई। एक मॉडल पौधे में प्रयोग के बाद, ssODN और **क्रिस्पर–कैस** 9 में EPSPS जीन का सफल संपादन करके उसे सन (फ्लैक्स) के पौधों में पहुंचाया गया। इन पौधों ने ग्लाइफोसेट के प्रति उच्च सहिष्णुता दिखाई। आलू में, एक जेमिनीवायरस प्रतिकृति का उपयोग एसिटोलैक्टेट सिंथेज़ 1 (ALS1) जीन के लक्ष्य स्थल पर क्लस्टर किए गए नियमित रूप से छोटे पैलिंड्रोमिक रिपीट प्रतिच्छेदन **(क्रिस्पर–कैस 9)** घटकों को बदलने के लिए किया गया था और उत्परिवर्तित ट्रांसजेनिक पौधों ने हर्बिसाइड्स के लिए कम संवेदन वाष्पशीलता प्रदर्शित की।

निष्कर्ष और दृष्टिकोण

विश्व की चुनौतियों का सामना करने के लिए पादप प्रजनन और आनुवंशिक में, नवोन्मेषी दृष्टिकोण आवश्यक है। फसल में सुधार के लिए नए एलील वैरिएंट्स के निरंतर निर्माण और प्रतिस्थापन की आवश्यकता है। जीनोम–संपादन तकनीक, विशेष रूप सेक्लस्टर किए गए नियमित रूप से छोटे पैलिंड्रोमिक रिपीट प्रतिच्छेदन **(क्रिस्पर–कैस 9)**

प्रणाली, फसलों में उच्च आवृत्ति के साथ उत्परिवर्तन उत्पन्न करने के लिए एक मूल्यवान मंच प्रदान करती है। जीनोम एडिटिंग से फसलों में सुधार की आशा है। इस तकनीक द्वारा फसल की उपज, गुणवत्ता, जीवन क्षमता और तनाव प्रतिरोध सहित कृषि संबंधी लक्षणों में सुधार की काफी संभावनाएं हैं। विभिन्न स्थन–विशेष न्यूक्लियेस–मध्यस्थता वाले जीनोम–संपादन संयंत्रों की अपनी–अपनी विशेषताएं हैं। **जिंक–फिंगर न्यूक्लियेस** और **ट्रांसक्रिप्शन एक्टीवेटर जैसे इफ़ेक्टर न्यूक्लियेज** दोनों को एक विशिष्ट स्थान पर एक जीनोम को उत्परिवर्तित करने के लिए उपयोग किया जाता है। इन सिस्टम को दो अलग–अलग डीएनए बाइंडिंग प्रोटीन की आवश्यकता होती है। ये विधियां व्यापक रूप से नहीं हुई हैं, और केवल कुछ फसलों में उपयोग किया गया है। एमएन का उपयोग भी आमतौर पर पौधों में नहीं किया जाता है। लेकिन इन्होंने एक लॉन्चिंग पैड के रूप में कार्य किया जिस पर वैज्ञानिक समुदाय नई तकनीकों को विकसित करने में सक्षम है।

समूह किए गए नियमित रूप से छोटे पैलिंड्रोमिक रिपीट प्रतिच्छेदन (क्रिस्पर–कैस) आधारित जीनोम संशोधन प्रणाली फसल आनुवंशिक सुधार के लिए एक प्रभावी रणनीति के रूप में उभरी है। कई फसल जीनोम में **क्रिस्पर–कैस 9** जैसे जीनोम संपादन उपकरण लगाए गए हैं। ये दोहरे फंसे हुए डीएनए ब्रेक के सटीक लक्ष्यीकरण और परिचय को सक्षम करते हैं। बाद में सेलुलर मरम्मत तंत्र, मुख्य रूप से गैर–समरूप अंत में शामिल होने (NHEJ), अंतर्जात जीन संपादन या सुधार के लिए महत्वपूर्ण कदम के रूप में कार्य करते हैं। हालांकि हल की जाने वाली चुनौतियां कई हैं, लेकिन निकट भविष्य में सटीक फसल प्रजनन और जैव प्रौद्योगिकी के लिए क्रिस्पर–कैस 9 प्रणाली निःसंदेह एक अजेय रणनीति के रूप में विकसित होगी। इसके अलावा, उन्नत जैव सूचनात्मक उपकरणों की उपलब्धता जो म्यूटेंट (उत्परिवर्तक) की पहचान करने के लिए विशेषता विशिष्ट gRN। डिजाइन और उच्च थ्रूपुट स्क्रीनिंग तकनीकों मे सहायता करती हैं,निःसंदेह जीई मंच को नए क्षितिज के लिए नेतृत्व करेगी, जो मानव आबादी को लाभान्वित करेगा। एक उचित नियामक नीति जो जीएमओ और जीई जीवों के बीच अंतर करती है, हमें इन तकनीकों का कुशल तरीके से दोहन करने में सक्षम बनाएगी।

फल के आने से वृक्ष झुक जाते हैं, वर्षा के समय बादल झुक जाते हैं, संपत्ति के समय सज्जन भी नम्र होते हैं। परोपकारियों का स्वभाव ही ऐसा है।

– तुलसीदास

कुछ हम बदले कुछ तुम बदलो

*संवादी लेखक का ई–मेलः sonia.chauhan@icar.gov.in

कुछ हम बदले
कुछ तुम बदलो
संसार ये बदल जाएगा
छोटे छोटे प्रयासों से
क्रांति सा सैलाब आएगा

एक पेड़ हम लगाए
एक पेड़ तुम लगाओ
धरती का श्रृगार हो जाएगा
प्रदूषण का राक्षक खड़ा–खड़ा,
भस्म हो जाएगा
छोटे छोटे प्रयासों से
क्रांति सा सैलाब आएगा

कुछ जल हम बचाए
कुछ जल तुम बचाओ
भावी पीढ़ियों का जल बच जाएगा
बूंद बूंद पानी से ही ,
भूतल का घड़ा भर जाएगा
छोटे छोटे प्रयासों से
क्रांति सा सैलाब आएगा

कुछ पेज (कागज) में बचाऊँ
कुछ कागज तुम बचाओ
रददी का ढ़ेर कम हो जाएगा
हर पेज पे कटता पेड़ है
वन उपवन न बच पाएगा
छोटे छोटे प्रयासों से
क्रांति सा सैलाब आएगा

एक थैला में ले आऊँ
एक थैला तुम ले आओ
पॉलिथीन चलन रुक जाएगा
नदी–नालों, मवेशियों का भी
कुछ भला हो जाएगा
छोटे छोटे प्रयासों से
क्रांति सा सैलाब आएगा

कुछ योग मैं करूँ
कुछ योग तुम अपनाओ
जीवन निरोग हो जाएगा
दवाइयों का बढ़ता चक्र
कुछ तो धीमा हो जाएगा
छोटे छोटे प्रयासों से
क्रांति सा सैलाब आएगा

कुछ मैं (अहम) मैं छोड़ूँ
कुछ अहं तुम छोड़ो
जीवन सरल हो जाएगा
मानव से मानव का
अपनापन बढ़ जाएगा
छोटे छोटे प्रयासों से
क्रांति सा सैलाब आएगा

एक उपवास मैं रखूँ
एक उपवास तुम रखो
स्वास्थ्य (मिजाज) ठीक हो जाएगा
जाने–अनजाने ही अन्न (अनाज)– यज्ञ मे
कुछ योगदान हो जाएगा
छोटे छोटे प्रयासों से
क्रांति सा सैलाब आएगा

उतना लो थाली मे,
व्यर्थ न जाए नाली,

कुछ तुम अपनाओ
अन्न बहुत बच जाएगा
लाखों भूखे गरीबो को
अन्न –भगवान मिल जाएगा
छोटे छोटे प्रयासों से
क्रांति सा सैलाब आएगा

महिला का सम्मान करो को कुछ मै चरितार्थ करूँ कुछ तुम चरितार्थ करो
महिला अपराधो का ग्राफ नीचे आ जायेगा
भारत की बेटियों के उड़ान–पंखों को,
नया आसमान मिल जाएगा
छोटे छोटे प्रयासों से
क्रांति सा सैलाब आएगा

एक बेटी हम बचा बचाऊँ
एक बेटी तुम बचाओ
धरती पे पाप कम हो जाएगा
लिंग–अनुपात का भारी अन्तर,
सहज ही पट जाएगा
छोटे छोटे प्रयासों से
क्रांति सा सैलाब आएगा

सोनिया चौहान
राष्ट्रीय कृषि अर्थशास्त्र और नीति अनुसंधान संस्थान,
नई दिल्ली –110012

विशेष मक्का

पॉप, स्वीट एवं बेबी कॉर्न, विशेष मक्का में हैं आते,
हैं विभिन्न पोषक तत्वों से भरपूर, सब चाव से हैं खाते।

सबसे पहले पॉपकॉर्न की विशेषता पर डालते है प्रकाश,
व्यस्त जीवन में मस्ती का साथी, हर उम्र का है ये खास।

चल–चित्र देखते एवं भ्रमण करते लेते सब इसका स्वाद,
मख्खन, गुड अथवा कोल्ड ड्रिंक के साथ बढ़ता इसका स्वाद।

आओ अब हग करें बेबीकॉर्न की बात,
किसानों को भाया ओर आमदनी बढ़ाये रातों रात।

डिब्बाबंदी कर विदेशों में हैं इसको पहुचातें,
विदेशी मुद्रा अर्जित कर देश का मान बढ़ाते ।

पिज्जा, पकोड़ें, बर्गर जैसे प्रसंस्कृत पदार्थो के उपयोग में आता,
छोटे से लेकर बढ़े उद्यामिता में खूब है अपना रंग जमाता।

बिना स्वीट कॉर्न के रह जाएगी विशेष मक्का हमारी अधूरी,
क्योंकि बच्चो से बुजुर्गों तक यह करती सबकी इच्छा पूरी।

घर में भुन कर या उबालकर बढ़े चाव से सब हैं खाते,
सड़कों पर बेचकर, गरीब परिवार अपना घर चलाते।

रवीट एवं बेबीकॉर्न की खेती देती है अच्छा चारा,
पशु भी खुश होते और मुस्कुराता किसान हमारा।

वैज्ञानिकगण
भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान

हिंदी पखवाडा 2019

भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना में दिनांक 02 से 16 सितम्बर के दौरान हिंदी पखवाडा मनाया गया। पखवाड़े का शुभारम्भ 02 सितम्बर को संस्थान निदेशक महोदय डॉ. सुजय रक्षित की उपस्थिति में किया गया। इस अवसर पर निदेशक महोदय ने हिंदी भाषा के महत्व के बारे में बोलते हुए कहा कि सरकार द्वारा समय समय पर हिंदी भाषा से सम्बंधित जरी अध्यादेशों की पलना करने के साथ हमें कार्यालय में ज्यादा से ज्यादा कार्य हिंदी में करना चाहिये तथा साल भर में होने वाले हिंदी भाषा के विभिन्न कार्यक्रमों में भाग लेना चाहिये। हिंदी पखवाड़े के दौरान कुल पांच प्रतियोगिताएं– हिंदी टिप्पण व प्रारूप लेखन, प्रशन मंच, वाद–विवाद एवं निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमे संस्थान के सभी कर्मचारियों ने भाग लिया।

हिंदी पखवाड़े का समापन समारोह 16 सितम्बर, 2019 को मनाया गया समारोह की अध्यक्षता निदेशक महोदय ने की एवं समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में श्रीमती किरण सहनी, सदस्य सचिव एवं सहायक निदेशक, राजभाषा कार्यान्वयन समिति, लुधियाना ने शिरकत की। कर्यक्रम के दौरान संस्थान के सभी कर्मचारी उपस्थित थे।

समारोह का शुभारम्भ निदेशक महोदय की अनुमति से राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्य सचिव डॉ.बहादुर सिंह जाट ने समारोह में उपस्थित सभी कर्मचारियों का स्वागत करते हुए किया। समारोह में अपने अध्यक्षीय सबोधन में निदेशक महोदय ने सवर्प्रथम हिंदी प्रतियोगिताओं के विजेताओं को बधाई दी एवं हिंदी पखवाड़ा आयोजन समिति के सदस्यों को पखवाड़े के सुचारु ढंग से संचालन के लिए धन्यवाद दिया। संस्थान निदेशक ने जीवन में भाषा के महत्व के बारे बताते हुए कहा कि अपने विचारों की अभिव्यक्ति को व्यक्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति की अपनी भाषा होती हैप् भाषा ही एक ऐसा माध्यम है जो हमें एकता के सूत्र में बांधती है। हिंदी हमारी राजभाषा है और देश में अनेकता में एकता का स्वर हिंदी से ही गूंजता हैप् अतः हिंदी भाषा का सम्मान और उसकी गरिमा बनाये रखना हमारा कर्तव्य हैप् भले ही आज अंग्रेजी भाषा का ज्ञान होना जरुरी है लेकिन सफलता पाने के लिये हमें अपनी राष्ट्रभाषा को कभी नही भूलना चाहिये। क्योकि हमारे देश की भाषा और हमारी संस्कृति हमारे लिये बहुत मायने रखती है।

मुख्य अतिथि ने हिंदी भाषा के सम्मान में बोलते हुए कहा कि हिंदी भाशा अपने आप में सम्पूर्ण भाषा है जो सभी भाषाओँ की जननी है हिंदी हमारे भारत देश की मातृभाषा है और हमें गर्व होना चाहिये कि हम हिंदी भाषी है। हमारे देश की राष्ट्रभाषा का सम्मान करना हम नागरिकों का कर्तव्य है। हम सब की धार्मिक विभिन्नताओं के बीच एक हमारी राष्ट्रभाषा ही है जो एकता का आधार बनती है। प्रत्येक देश के विकास में राष्ट्रभाषा का बहुत महत्त्व होता है महात्मा गाँधी राष्ट्र के विकास के लिए राष्ट्रभाषा नितांत आवश्यक मानते थे उनका कहना था की "राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गुणगा है" गाँधी जी हिंदी के प्रश्न को स्वराज का प्रश्न मानते थे।

मुख्य अतिथि ने बताया कि पिछले कुछ वर्षों से हमारे देश में हिंदी भाषा का महत्व दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है और कहा कि अब हिंदी भाषा को केवल हमारे देश में ही नही बोला जाता बल्कि हिंदी को अब विश्व के विभिन्न देशों

में भी बोली और पढाई जाती है हमें बढ़े गर्व और उत्साह के साथ हर साल हिंदी दिवस मानना चाहिये और स्कूल, कॉलेज, सोसाइटी और संस्थानों में होने वाली विभिन्न गतिविधियों में हिस्सा लेना चाहिये ताकि हम. सब लोगों में हिंदी भाषा के प्रति प्रेम को उजागर कर सके और हिंदी के महत्व को बता सके। कार्यक्रम के अंत में प्रतियोगिताओं में चुने गये सभी विजेताओं को मुख्य अतिथि तथा निदेशक महोदय द्वारा प्रमाण पत्र देकर सम्मानित किया गया।

समारोह के अंत में प्रधान वैज्ञानिक डॉ. कर्मवीर सिंह हुडा ने सभा कक्ष में उपस्थित मुख्य अतिथि, संस्थान परिवार के सभी सदस्यों आयोजन समिति के अध्यक्ष एवं संयोजक का धन्यवाद ज्ञापन किया। हिंदी पखवाड़ा से संबंधित समारोह का मंच संचालन तथा सभी प्रतियोगिताओं का समन्वयन डॉ. बहादुर सिंह जाट, वैज्ञानिक एवं सदस्य सचिव, राजभाषा द्वारा किया गया।

हिंदी भाषा उस समुद्र जलराशि की तरह है जिसमें अनेक नदियाँ मिली हों।

– वासुदेवशरण अग्रवाल।

संस्थान में आयोजित हिंदी पखवाडा (02–16 सितम्बर) कार्यक्रम में आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत प्रतिभागियों के नाम एवं पुरस्कार

क्र.स.	प्रतियोगिता का नाम	विजेता का नाम	पुरस्कार
1.	हिंदी टिप्पण एवं प्रारूप लेखन प्रतियोगिता	डॉ.बहादुर सिंह जाट	प्रथम
		श्री.दीप मोहन महला	द्वितीय
		डॉ.प्रदीप कुमार	तृतीय
		श्री.मुकेश चौधरी	प्रोत्साहन
2.	प्रश्न मंच प्रतियोगिता **(टीम आधार पर तथा प्रत्येक टीम में 3 सदस्य)**	श्री.मुकेश चौधरी श्री.दीप मोहन महल डॉ. भारत भूषण	प्रथम प्रथम प्रथम
		डॉ.आला सिंह डॉ. प्रदीप कुमार डॉ. धर्मपाल चौधरी	द्वितीय द्वितीय द्वितीय
		श्री. विशाल सिंह श्री.अश्वनी कुमार श्री. प्रशांत गर्ग	तृतीय तृतीय तृतीय
3.	वाद–विवाद प्रतियोगिता (सभी वर्गों के लिए) **शीर्षक–क्या निजीकरण देश के विकास हेतु जरुरी है?**	श्री.विशाल सिंह	प्रथम
		डॉ.आला सिंह	द्वितीय
		श्री.अश्वनी कुमार	तृतीय
		श्री.मुकेश चौधरी	तृतीय
		डॉ.प्रदीप कुमार	प्रोत्साहन
4.	आशुभाषण प्रतियोगिता	श्री.विशाल सिंह	प्रथम
		डॉ. भारत भूषण	द्वितीय
		डॉ.प्रदीप कुमार	तृतीय
		डॉ.आला सिंह	प्रोत्साहन
		डॉ.बहादुर सिंह जाट	प्रोत्साहन
5.	हिंदी निबंध प्रतियोगिता, अंग्रेजी भाषा : कितनी जरुरी कितनी मजबूरी	डॉ.आला सिंह	प्रथम
		श्री.मुकेश चौधरी	द्वितीय
		डॉ. भारत भूषण	तृतीय
		डॉ.प्रदीप कुमार	प्रोत्साहन
		डॉ.बहादुर सिंह जाट	प्रोत्साहन
6.	संस्थान में वर्ष 2018–19 में हिंदी में सर्वाधिक कार्य हेतु नकद पुरस्कार	श्री.धर्मवीर सिंह	प्रथम
		डॉ.भारत भूषण	द्वितीय
		श्रीमती.कमलेश मलिक	तृतीय
		श्री.रामकिशन	तृतीय

पखवाडा के दौरान मुख्य अतिथि द्वारा पुरस्कार प्राप्त करते प्रतिभागी

कार्यालय में हिंदी कार्यशालाओं का आयोजन

छोटे कार्यालय की श्रेणी में सर्वाधिक कार्य का निष्पादन हिंदी में करने पर नराकास द्वारा प्रोत्साहन पुरस्कार से सम्मानित

हिंदी पत्रिका 'कृषि चेतना' प्रकाशित करने पर नराकास द्वारा सम्मानित

स्वच्छता अभियान के अंर्तगत महात्मा गांधी की 150वी जयंती के उपलक्ष पर राजकीय सीनियर सैकंडरी स्कूल अयाली खुर्द में भाकृअनुप– भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना द्वारा आयोजित चित्रकला प्रतियोगता मे प्रथम पुरस्कार चित्र

स्वच्छता अभियान के अंर्तगत महात्मा गांधी की 150वी जयंती के उपलक्ष पर राजकीय सीनियर सैकंडरी स्कूल अयाली खुर्द में भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना द्वारा आयोजित प्रतियोगता मे गांधी जी के सपनो का भारत एक पर बनायी गयी चित्रकला

Name = Kajal
School = Govt. Sen. Sce. School Ayali Khurd

गाँधी जी के सपनों का भारत

बापू के सपनों को
फिर से सजाना है
देकर लहू का कतरा
इस चमन को बचाना है
गाँधी जी के सपनों को
साकार कर दिखाना है।

आज़ादी के छह दशक बाद भी भारत की स्थिति में सुधार नहीं आया है। महात्मा गाँधी जी का सपना था कि हमारा भारत स्वच्छ और स्वस्थ रहे। गाँधी जी के सपनो भारत अभी तक साकार नहीं हुआ है। गाँधी जी चाहते थे उनके सपनों का भारत बहुत सुन्दर हो। वह चाहते थे कि भारत के सभी नागरिको को बराबर अधिकार मिले। पुरुष और महिलाओं के बीच किसी भी तरह से भेदभाव नहीं किया जायेगा। जाति, छुआछुत, रंग आदि किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जायेगा। सब को बराबर समझा जायेगा। भारत के नागरिकों को यह समझकर आगे बढना चाहिए कि भारत उनका अपना देश है और भारत के प्रति उनका फर्ज है कि भारत के विकास के लिए योगदान दे। वह इक्क्सवीं सदी के प्रभावशाली देशभक्ति थे। उन्हें बहुत ही सम्मान से याद किया जाता है। गाँधी जी ने कहा है कि हमें आस-पास की स्वच्छता से ज्यादा अपने अंदर स्वच्छता रखनी चाहिए। तभी हमारे देश को प्यार और सम्मान मिलेगा। गाँधी जी ने सपनो के भारत में यह चाहते हैं कि देश सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तौर से मज़बूत हो। सब स्थान जैसे कि गाँव, शहर को अपने पैरों पर खड़ने का मौका देना चाहिए। गाँधी के अनुसार भारत में विभिन्न प्रकार के जाति के करोड़ों लोग रहते है इसी लिए हमारा भारत सबसे अलग और अच्छा है। उन्होंने महिलाओं की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। स्वदेशी चीज़ों को अपनाकर भारत का विकास कर सकते हैं। हम सबको मिलकर कर भारत को स्वच्छ और स्वस्थ बनाने के लिए बापू गांधी जी के सपनों का भारत साकार कर दिखाना चाहिए। उच्च अकांक्ष वाले व्यक्ति को अपने विकास के लिए जो कुछ भी चाहिए वो सब सुविधा भारत मे है। इस समय गाँधी जी के महान विचार स्मरण आते हैं। जिसने स्वच्छ और स्वस्थ भारत का सपना देखा। अगर हम सब एकता से बंधकर शांति और चैन से रह सकते है। भारत के गरीब से गरीब आदमी भी यह सोचे कि यह भारत उनका अपना देश है और इस भारत के विकास के लिए पूरी ताकत लगा देनी चाहिए। महात्मा गाँधी जी चाहते थे कि उनके सपनों के भारत सब एक-दूसरे के साथ अच्छे संबंध बनाये। दूसरे देशों के साथ अपनी पहचान पराये। भारत के हर घर मे सपनों का दीप जलता है। उन्हीं सपनों को भी गांधी जी ने सजाया है। आज़ादी के बाद भी हमारे देश मे अभी भी कई स्थान स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर सके है। स्वतंत्रता का मतलब अंग्रेजी शासन से आज़ादी नहीं बल्कि बुराईयों से है। अगर हम समाजिक बुराईयों से दूर रहेंगे तो अच्छी बातें अच्छी शिक्षा की प्राप्ती कर सकते है। हमेशा सच्चाई के राह पर चलना चाहिए। सबको अपने अनुसार जीने का हक दिया जायेगा। ना हम शोषण करेंगे और ना किसी को अपना शोषण करने देंगे। सब के विचारों को सुनना चाहिए। भारत को स्वतंत्रता दिलाने के लिए ना जाने कितने भारत के पुत्रों ने बलिदान दिया है। हमें उस बलिदान को व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिए। महात्मा गांधी जी के सपनों को पूरा करना आज की नई पीढ़ीयों का फर्ज है। हम सब को यह फर्ज निभाना चाहिए। गाँधी जी के सपनों को साकार कर के दिखाना चाहिए। अगर हम सब उनके सपनों को पूरा करेंगे तो हमारा सपना भी पूरा होगा। हम अपने पैरों पर खड़े हो सकते है। जिन्होंने हमें आज़ादी दिलाई है उनके सपनों को अपना सपना मानकर पूरा करना चाहिए।

आओ रूठे सपनों को मनाए
खुद से किये वायदे को
खुद को याद दिलाए
हम हमें गाँधी जी के
सपनों को साकार कर दिखाये

हम गाँधी जी के सपनों को साकार कर दिखाएंगे।

स्वच्छता अभियान के अंतर्गत महात्मा गांधी की 150वी जयंती के उपलक्ष पर राजकीय सीनियर सैकंडरी स्कूल अगाली खुर्द में भाकृअनुप– भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना द्वारा आयोजित की गई हिन्दी निबंध प्रतियोगता में प्रथम पुरस्कृत निबंध

''पत्रिका में प्रकाशन हेतु लेखकों के लिए दिशा-निर्देश''

भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब) द्वारा हिंदी भाषा में वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया गया है जिसमें सभी रचनाएँ जैसे आलेख, कहानियां, कवितायें इत्यादि प्रकाशित की जाती है।

1. पत्रिका में प्रकाशन के लिये लेखकगण कृषि एवं कृषि सम्बंधित -आर्थिक, -सामाजिक, विषयों पर आलेख भेज सकते है।
2. आलेख के लिए निम्नलिखित दिशा निर्देश है:

क. आलेख में सामग्री को इस क्रम में व्यस्थित करें: शीर्षक, लेखकों के नाम व पते, संवादी लेखक का ई-मेल, परिचय, परिचर्चा, निष्कर्ष/सारांश, आभार (यदि आवश्यक हो तो), एवं सन्दर्भ।

ख. परिचय: परिचय में लगभग 250-300 शब्द होने चाहिये तथा इसमें विषय की सामान्य जानकारी के साथ इसके महत्त्व तथा उपयोग के बारे में लिखें।

ग. परिचर्चा: इस भाग में लगभग 1500-2000 शब्द होने चाहिये, जिसमें सारणी, ग्राफ इत्यादि सम्मिलित है।

घ. निष्कर्ष: इस भाग में लगभग 100-150 शब्द होने चाहिए, तथा साथ ही विषय-वस्तु का भावी परिपेक्ष भी सम्मिलित हो।

ङ. सन्दर्भ: इस सूची में किसी भी सन्दर्भ का अनुवाद करके ना लिखें, अर्थात संदर्भो को उनकी मूल भाषा में ही रहने दें। यदि सन्दर्भ हिंदी व अंग्रेजी दोनों भाषाओँ के हो तो पहले हिंदी वाले सन्दर्भ लिखें तथा इन्हें हिंदी वर्णमाला के अनुसार, तथा बाद में अंग्रेजी वाले सन्दर्भ अंग्रेजी वर्णमाला के अनुसार सूचीबद्ध करें।

च. सारणी तथा चित्र: सारणियों तथा चित्रों को उनके शीर्षक के साथ आलेख में क्रमांकित करके यथास्थान पर सम्मिलित करें तथा पाठ्य में उल्लिखित करें।

3. आलेख किसी अन्य स्रोत द्वारा पहले प्रकाशित नहीं होना चाहिए तथा ना ही अन्य भाषा में प्रकाशित आलेख का अनुवाद होना चाहिये।
4. इस पत्रिका में प्रकाशन के लिए लघु नोट, कवितायें तथा कहानियां भी भेज सकते है, बशर्ते ये रचनायें स्वयं द्वारा रचित होनी चाहिये।
5. आपकी रचनायें यूनिकोड फान्ट या मंगल फान्ट में टाइप करके भेजें, ताकि वो आसानी से किसी भी कंप्यूटर में पढी जा सके व सम्पादित की जा सके।
6. संपादन व सुधार का अंतिम अधिकार संपादकगण के पास सुरक्षित है।
7. प्रकाशन के लिए भेजी गयी रचनाओं पर अंतिम निर्णय प्रकाशक यानी निदेशक, भाकृअनुप- भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब) का रहेगा।
8. आलेखों में चित्र, ग्राफ, तथ्यों की सत्यता या नकल/असल, एवं कहानियों व कविताओं इत्यादि रचनाओं के लिए लेखक स्वयं जिम्मेदार होंगे।
9. लेखकगण अपनी रचनाएँ, krishichetna.iimr@gmail.com पर ईमेल द्वारा भेज सकते है।
10. पत्र व्यवहार के लिए पता।

निदेशक

भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान
पंजाब कृषि विश्वविद्यालय परिसर

लुधियाना- 141004 (पंजाब)

भाकृअनुप –भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना द्वारा आयोजित किसान प्रशिक्षण कार्यक्रम

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
Agrisearch with a human touch

बेटी बचाओ
बेटी पढ़ाओ

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर